संस्कृतप्रबोधः

सं: जिज्ञासूनाम् उपकाराय

शर्मणा

हिन्दीभाषया संकलितः

द्वितीयं संस्करणम्

मूल्य ॥)

हिन्दी प्रेस, प्रयाग

में

पं० रामजीलाल शर्मा के प्रबन्ध से मुद्रित

समर्पण

प्रिय विद्यार्थियो !

संसार का यह नियम है कि प्रियवस्तु प्रियव्यक्ति को भेंट की जाती है। मेरे लिए इससे अधिक प्रियवस्तु क्या हो सकती है कि जिसको मैंने वर्षों के परिश्रम से संपादन किया है और आप से अधिक प्रियव्यक्ति कौनसी है कि जिनकी ओर मेरी ही नहीं किन्तु सारे देश की आँखें लगी हुई हैं।

प्यारे विद्यार्थियो ! आपही मातृभाषा को सबसे उच्चासन पर बैठानेवाले और भारत के भविष्य भाग्य के विधाता हो। इस लिए यह प्रेमोपहार मैं सादर आपकी ही सेवा में समर्पित करता हूँ। आशा है कि आप इस तुच्छ भेंट को अपना कर मुझे कृतार्थ करेंगे।

आपका शुभचिन्तक

बद्रीदत्त शर्मा

द्वितीय संस्करण की भूमिका

मैंने इस पुस्तक की रचना कतिपय मित्रों की प्रेरणा से उन विद्यार्थियों और मातृभाषा के प्रेमियों के हितार्थ की थी कि जो अष्टाध्यायी वा कौमुदी आदि ग्रन्थों को नहीं पढ़ सकते और इस लिए संस्कृत भाषा से अनुराग रखते हुवे भी वे संस्कृत-व्याकरण के मर्म को नहीं समझ सकते। मुझे यह आशा न थी कि मेरे क्षुद्र परिश्रम का हिन्दी-भाषा-भाषियों में इतना आदर होगा कि मुझे स्वल्प काल में ही इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ेगा। हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध प्रसिद्ध समाचार-पत्रों ने भी इस क्षुद्र पुस्तक की समालोचना में जिस उदारता और गुण-ग्राहकता का परिचय दिया है उसके लिए मैं उनका अतीव कृतज्ञ हूँ। भारत के सौभाग्य से अब वह समय आगया है कि इसके सुपुत्र अपनी मातृभाषा के जीर्णोद्धार में सयत्न होने लगे हैं और उसके लिए की हुई तुच्छ से तुच्छ सेवा को भी प्रेम और आदर की दृष्टि से देखने लगे हैं। इसी उत्साह से प्रेरित होकर आवश्यक संशोधन के पश्चात् "संस्कृत-प्रबोध" का यह दूसरा संस्करण मातृभाषा-प्रेमियों की सेवा में सादर समर्पित किया जाता है। आशा है कि हिन्दी-भाषी सज्जन इस प्रेमोपहार को प्रेमपूर्वक ही स्वीकार कर ग्रन्थकर्त्ता के उत्साह को बढ़ावेंगे।

रचयिता

विषयानुक्रम ।

उपक्रम

संस्कृत-व्याकरण का विषय महान् है। उसको बतलाने के लिये संस्कृत में अनेक ग्रन्थ एक से एक उत्तम और विशद विद्यमान हैं, परन्तु दैवदुर्विपाक से वा समय के प्रभाव से संस्कृत का प्रचार लुप्त हो जाने से सर्वसाधारण उनसे यथेष्ट लाभ नहीं उठा सकते। हिन्दी भाषा में भी, जिसका प्रचार आजकल हमारे देशमें सर्वत्र अधिकता से है, संस्कृत व्याकरण के विषय में आज तक कई पुस्तक बन चुके हैं, जिनमें से अधिकतर तो सन्धि और विभक्ति तक ही समाप्त हो जाते हैं। यदि किसी ने साहस करके समास, आख्यात, तद्धित और कृदन्त जैसे व्याकरण के गम्भीर विषयों पर कुछ लिखा भी तो वह क्षुधित को चूर्ण के समान होता है, जिससे उसकी भूख और भी प्रचण्ड हो जाती है। किसी किसी ने अष्टाध्यायी और कौमुदी आदि ग्रन्थों के अनुवाद भी किये हैं, परन्तु उनके क्लिष्ट एवं भाषा-प्रणाली के प्रतिकूल होने से भाषा जानने वालों के लिये व्याकरण का मार्ग वैसा ही दुर्बोध रहता है, जैसा कि उनके लिये संस्कृत में होने से था।

निदान हिन्दी भाषा में आजतक ऐसा कोई सर्वाङ्गसम्पन्न व्याकरण का पुस्तक नहीं छपा कि जिससे एक हिन्दी-भाषा का जानने वाला संस्कृत-व्याकरण के प्रायः सब ही उपयोगी विषयों में क्रमशः आवश्यकतानुसार विज्ञता प्राप्त कर लेवे। बस इसी अभाव को दूर करने के लिये कतिपय सज्जनों की प्रेरणा से मैं इस पुस्तक को प्रकाशित करता हूँ। इस पुस्तक में वर्णोपदेश से लेकर तद्धित पर्य्यन्त व्याकरण के संपूर्ण विषय क्रमशः उदाहरण और उपपत्ति पूर्वक इस रीति पर समझाये गये हैं कि जिनको मननपूर्वक अवलोकन करने से संस्कृतभाषा के जिज्ञासु बहुत कुछ लाभ उठा सकेंगे। अष्टाध्यायी को द्वितीयावृत्ति वा कौमुदी पढ़ने वाले इस पुस्तक से बहुत कुछ

सहायता प्राप्त कर सकते हैं। केवल हिन्दी जाननेवाले भी इसके द्वारा व्याकरण का बहुत कुछ रहस्य समझ सकते हैं। यद्यपि वर्णविकार, लोप और आगम स्पष्ट रूप से उनकी समझ में न आवें, तथापि किस प्रक्रिया में प्रकृति से कौनसा प्रत्यय होता है और उसका सिद्ध रूप क्या बनता है और फिर उसके सादृश्य से अन्य शब्दों की बनावट सुगमता से विदित हो सकेगी। विस्तरभय से हमने इस पुस्तक में साधनिका नहीं दी है क्योंकि एक एक सूत्र अनेक विषयों में और अनेक प्रक्रियाओं में कार्य्य विधान करता है। सर्वत्र बार बार उसका उल्लेख करना असम्भव था। संस्कृत के कौमुदी आदि ग्रन्थों में भी एक विषय में एक सूत्र को देकर पुनः दूसरे विषय में जहाँ उसका काम पड़ा है, कहीं पर तो उसका स्मरण दिला दिया है, पर प्रायः स्थलों में केवल सिद्ध रूप देकर ही सन्तोष किया गया है और रूप भी वही दिये गये हैं जिनमें कार्य्य विशेष होता है। ऐसी दशा में हमारा साधनिका से उपराम करना पाठकों को अवश्य क्षन्तव्य होगा।

हमने यथासाध्य व्याकरण के गहन विषयों को ऐसी रीति पर समझाने का यत्न किया है कि जिससे जिज्ञासुओं को थोड़े परिश्रम से बहुत लाभ हो और उनको संस्कृत-साहित्य के समझने की योग्यता प्राप्त हो जावे। आशा है कि मातृभाषा के प्रेमी इस उपहार को सादर स्वीकार करेंगे।

दूसरी प्रार्थना गुणग्राहक पाठकों की सेवा में यह है कि यदि इसमें मुद्रणादि के दोष से अथवा लेखक की ही भूल से कहीं पर कोई त्रुटि रह गई हो, या क्रमव्यतिक्रम हो गया हो तो विद्वजन क्षमापूर्वक मुझे उसकी सूचना देंगे। मैं उनको सम्मति ग्राह्य होने पर यथासम्भव आगामी संस्करण में उसका संशोधन करूँगा और विज्ञापक का कृतज्ञ हूँगा। बदरीदत्त शर्म्मा

* ओ३म् *

संस्कृतप्रबोध

प्रणम्य परमात्मानं वाग्देवीं च गुरूंस्तथा ।
प्राकृते संस्कृतस्यायं प्रबोधः क्रियते मया ॥

वर्णोपदेश

भाषा उसे कहते हैं जिसके द्वारा मनुष्य अपने मन के भावों को दूसरों पर प्रकट करता है ।

भाषा वाक्यों से बनती है, वाक्य पदों से और पद अक्षरों से बनाये जाते हैं ।

यद्यपि व्याकरण का मुख्य विषय शब्दानुशासन है तथापि बिना वर्णज्ञान के शब्दरचना असम्भव है, अतएव प्रथम वर्णों का उपदेश किया जाता है ।

वर्ण, शब्द के उस खण्ड का नाम है जिसका विभाग नहीं हो सकता । उसी को अक्षर भी कहते हैं । उसके समझने के लिए बुद्धिमानों ने प्रत्येक भाषा में कुछ सङ्केत नियत कर दिये हैं और उन्हीं को वर्ण या अक्षर के नाम से व्यवहृत करते हैं ।

संस्कृत भाषा में सब मिलाकर ४२ वर्ण हैं जो सामान्य रीति पर दो भागों में विभक्त हैं।

(१) अच् वा स्वर (२) हल् वा व्यञ्जन।

जो विना किसी सहायता के स्वयं बोले जाते हैं वे स्वर और जिनका उच्चारण स्वरों की सहायता से होता है वे व्यञ्जन कहलाते हैं।

स्वर वा अच्

एकाक्षर	अ,	इ,	उ,	ऋ,	लृ.
सन्ध्यक्षर	ए,	ऐ,	ओ,	औ.	

व्यञ्जन वा हल्

कवर्ग	क,	ख,	ग,	घ,	ङ,
चवर्ग	च,	छ,	ज,	झ,	ञ.
टवर्ग	ट,	ठ,	ड,	ढ,	ण.
तवर्ग	त,	थ,	द,	ध,	न.
पवर्ग	प,	फ,	ब,	भ,	म.
अन्तःस्थ	य,	र,	ल,	व.	
ऊष्म	श,	ष,	स,	ह.	

उक्त वर्णों में अ से लेकर औ तक ९ वर्ण स्वर वा अच् और क से लेकर ह पर्यन्त ३३ वर्ण व्यञ्जन वा हल् कहलाते हैं।

उक्त ९ स्वरों में पहले ५ एकाक्षर और पिछले ४ सन्ध्यक्षर कहलाते हैं। क्योंकि अ—इ मिलकर 'ए' और अ—ए मिलकर 'ऐ' तथा अ—उ मिलकर 'ओ' और अ—ओ मिलकर 'औ' बनते हैं।

स्वरों के तीन भेद हैं, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। फिर इनमें से प्रत्येक के तीन तीन भेद होते हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

जो शीघ्र बोले जावें वे ह्रस्व, जो ह्रस्व से दुगुने काल में बोले जावें वे दीर्घ और जो ह्रस्व से तिगुने काल में बोले जावें वे प्लुत कहाते हैं।

ऊँचे स्वर से उदात्त, नीचे स्वर से अनुदात्त और मध्यम स्वर से स्वरित बोला जाता है।

(क) उक्त रीति से एक एक स्वर नौ नौ प्रकार का होता है। यथा—

१ ह्रस्वोदात्त	४ दीर्घोदात्त	७ प्लुतोदात्त
२ ह्रस्वानुदात्त	५ दीर्घानुदात्त	८ प्लुतानुदात्त
३ ह्रस्वस्वरित	६ दीर्घस्वरित	९ प्लुतस्वरित

(ख) फिर अनुनासिक और अननुनासिक भेद से एक एक स्वर अठारह अठारह प्रकार का हो जाता है अर्थात् ९ भेद अनुनासिक के और ९ अननुनासिक के।

(ग) इस रीति पर अ, इ, उ, ऋ, इन चार स्वरों के अठारह अठारह भेद होते हैं। ऌ के दीर्घ न होने से बारह ही भेद होते हैं और ए, ऐ, ओ, औ, ये चारों भी ह्रस्व के न होने से बारह बारह प्रकार के ही हैं।

वर्णों के उच्चारण-स्थान

मुख के जिस भाग से किसी वर्ण का उच्चारण होता है वह उसका स्थान कहलाता है।

१—अ, कवर्ग, ह और विसर्ग इनका कण्ठ स्थान है।
२—इ, चवर्ग, य और श इनका तालु स्थान है।
३—ऋ, टवर्ग, र और ष इनका मूर्द्धा स्थान है।
४—लृ, तवर्ग, ल और स इनका दन्त स्थान है।
५—उ, पवर्ग और उपध्मानीय इनका ओष्ठ स्थान है।
६—जिह्वामूलीय का जिह्वामूल स्थान है।
७—ए, ऐ, इन दोनों का कण्ठतालु स्थान है।
८—ओ, औ, इन दोनों का कण्ठोष्ठ स्थान है।
९—वकार का दन्तोष्ठ स्थान है।
१०—ङ, ञ, ण, न, म, इनका स्ववर्गीय स्थानों के अतिरिक्त नासिका स्थान भी है।
११—अनुस्वार का केवल नासिका स्थान है।
अनुस्वार और विसर्ग सदा अच् से परे आते हैं। जैसे—मंस्यते। यशः।

यदि क, ख, से पूर्व विसर्ग हों तो वे जिह्वामूलीय और प, फ, से पूर्व हों तो उपध्मानीय हो जाते हैं। यथा—य ≍ करोति। य ≍ पठति।

'क' से लेकर 'म' पर्यन्त पाँचों वर्गों के वर्ण स्पर्श कहलाते हैं। जहाँ दो वा दो से अधिक हलों में अच् नहीं रहता वहाँ उन की संयोग संज्ञा है अर्थात् वे अन्त के अच् में मिल जाते हैं। जैसे—"अग्निः" में ग् न् का, "इन्द्रः" में न् द् र् का और, "कार्त्स्न्यम्" में र् त् स् न् य् का संयोग है।

संयोग से पूर्व वर्ण यदि ह्रस्व भी हो तो वह गुरु बोला जाता है जैसे—"अग्निः" में 'अ', "इन्द्रः" में 'इ' और "उग्रः" में 'उ' की गुरु संज्ञा है।

जो वर्ण मुख और नासिका से बोले जाते हैं उनको 'अनुनासिक' कहते हैं जैसे—ङ, ञ, ण, न, म, और अनुस्वार।

जिन वर्णों के स्थान और प्रयत्न समान हों वे परस्पर 'सवर्ण' कहलाते हैं जैसे क—ह, य-श इत्यादि।

अच् और हल तुल्य स्थानीय होने पर भी परस्पर सवर्ण नहीं होते जैसे अ—ह, इ—श इत्यादि।

ऋ और ऌ भिन्नस्थानीय होने पर भी परस्पर सवर्ण हैं।
सुबन्त (संज्ञा) तिङन्त (क्रिया) इन दोनों की 'पद' संज्ञा है।

पदों को मिलाकर प्रयोग करने का नाम 'संहिता' है। यथा – विद्ययाऽर्थमवाप्यते।

पदों का विग्रह करके पृथक् पृथक् जो उच्चारण किया जाता है उसको "अवसान" कहते हैं। यथा विद्यया-अर्थम्-अव-आप्यते।

अन्त्य के वर्ण से पूर्व वर्ण की, 'उपधा' संज्ञा है, यथा— 'देवस्' शब्द में 'व' का 'अ' उपधा संज्ञक है।

जिस शब्द से जो प्रत्यय किया जाता है उस प्रत्यय के पूर्व शब्दराशि की 'अङ्ग' संज्ञा है। जैसे देव शब्द से 'सु' प्रत्यय करने पर 'देव' की अङ्ग संज्ञा है।
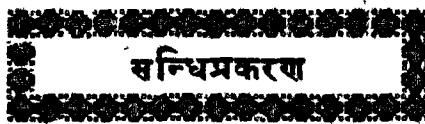
सन्धिप्रकरण

सन्धि के पढ़नेवाले निम्नलिखित परिभाषाओं पर ध्यान रक्खें। दो वर्णों के परस्पर मिलाप का नाम सन्धि है। संयोग और सन्धि में इतना भेद है कि जहाँ वर्ण अपने स्वरूप से बिना किसी विकार के मिलते हैं, उसे संयोग और जहाँ विकृत होकर अर्थात् उनके स्थान में कोई और आदेश होकर मिलते हैं उसे सन्धि

कहते हैं। जैसे 'इन्द्रः' में न, द्, र, बिना किसी विकार या परिवर्त्तन के अन्त्य 'अ' से मिले हैं, यह संयोग है। और जैसे "दृध्यशनम्" में 'दधि' की 'इ' 'य' के रूप में परिवर्तित होकर 'अशनम्' 'के' अ' से मिली है यह सन्धि है।

स्थानी उसे कहते हैं जो पहिले हो और पीछे न रहे अर्थात् जिसके स्थान में कोई आदेश होता है और उसका निर्देश व्याकरण शास्त्र में षष्ठी विभक्ति से किया जाता है।

आदेश उसको कहते हैं, जो पहिले न हो और पीछे हो जावे अर्थात् स्थानी को मिटा कर जो उसकी जगह पर अपना अधिकार जमा लेवे और इसी लिये कहा जाता है कि "शत्रुवदादेशः" आदेश शत्रु के समान होता है।

आगम उसको कहते हैं कि जो स्थानी को नहीं मिटाता, किन्तु उसमें संयुक्त होकर उसका अंग बन जाता है। इसी लिये कहा जाता है कि "मित्रवदागमः" आगम मित्र के समान होता है।

आदेश जिसको कहा जाय उसी के स्थान में होता है, परन्तु जहाँ पूर्व पर दोनों को कहा जाय वहाँ दोनों के स्थान में होता है।

आदेश को भी स्थानिवत् मान कर स्थान्याश्रित कार्य किये जाते हैं।

ङित् आदेश वा षष्ठी विभक्ति से जिस आदेश का निर्देश किया जावे वह अन्त्य अक्षर के स्थान में होता है। शित् आदेश वा अनेकाल् आदेश सम्पूर्ण स्थान में होते हैं।

आगम तीन प्रकार के होते हैं टित्, कित् और मित् । टकार जिनका इत् गया हो वे टित्, जैसे सुट्, धुट् इत्यादि । ककार जिनका इत् गया हो, वे कित्, जैसे तुक्, धुक् इत्यादि । मकार जिनका इत् गया हो, वे मित्, जैसे नुम्, मुम् इत्यादि ।

टित् आगम जिसको कहा जाय, उसकी आदि में, कित् अन्त में और मित् अन्त्य अच् से परे होता है ।

सन्धि तीन प्रकार की है १—अच् सन्धि २—हल् सन्धि ३—विसर्ग सन्धि ।

अचों के साथ अच् का जो संयोग होता है उसे अच् सन्धि कहते हैं ।

अच् वा हल् के साथ जो हलों का संयोग होता है उसे हल् सन्धि कहते हैं ।

अच् संयुक्त हलों के साथ जो विसर्ग का संयोग होता है उसे विसर्ग सन्धि कहते हैं ।

अच्सन्धि ।

अच् सन्धि सात प्रकार की होती है । १, यण् । २, अयादि चतुष्टय । ३, गुण । ४, वृद्धि । ५, सवर्णदीर्घ । ६, पररूप । ७, पूर्वरूप ।

१ यण्

ह्रस्व वा दीर्घ इ, उ, ऋ, से परे कोई भिन्न अच् रहे तो इ, उ, ऋ, को क्रम से, य, व, र, आदेश हो जाते हैं और इसी को यण् सन्धि कहते हैं ।

नीचे के चक्र से इसका भेद विदित होगा ।

पूर्ववर्ण	परवर्ण	आदेश	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
इ	अ	य	दधि – अशनम्	दध्यशनम्
ई	अ	य	देवी – अर्थः	देव्यर्थः
इ	आ	या	अभि – आगतः	अभ्यागतः
ई	आ	या	मही – आलम्बनम्	मह्यालम्बनम्
इ	उ	यु	अति – उत्तमः	अत्युत्तमः
ई	उ	यु	सुधी – उपासनम्	सुध्युपासनम्
इ	ऊ	यू	प्रति – ऊहः	प्रत्यूहः
ई	ऊ	यू	स्त्री – ऊढा	स्त्र्यूढा
इ	ऋ	यृ	अति – ऋणम्	अत्यृणम्
ई	ऋ	यृ	कुमारी – ऋतुमती	कुमार्यृतुमती
इ	ए	ये	प्रति – एकः	प्रत्येकः
ई	ए	ये	कृती – एधते	कृत्येधते
इ	ऐ	यै	अति – ऐश्वर्य्यम्	अत्यैश्वर्य्यम्
ई	ऐ	यै	हस्ती – ऐरावतः	हस्त्यैरावतः
इ	ओ	यो	पचति – ओदनम्	पचत्योदनम्
ई	ओ	यो	सती – ओजः	सत्योजः
इ	औ	यौ	अपि – औदार्यम्	अप्यौदार्यम्
ई	औ	यौ	प्रधी – औ	प्रध्यौ
उ	अ	व	अनु—अर्थम्	अन्वर्थम्
ऊ	अ	व	चमू—अवस्थानम्	चम्ववस्थानम्
उ	आ	वा	सु – आगतः	स्वागतः
ऊ	आ	वा	वधू – आसनम्	वध्वासनम्
उ	इ	वि	ऋतु – इक्	ऋत्विक्

पूर्ववर्ण	परवर्ण	आदेश	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
ऊ	इ	वि	वधू—इच्छा	वध्विच्छा
उ	ई	वी	अनु—ईक्षा	अन्वीक्षा
ऊ	ई	वी	चमू—ईशः	चम्वीशः
उ	ऋ	वृ	वसु—ऋणम्	वस्वृणम्
ऊ	ऋ	वृ	वधू—ऋतुः	वध्वृतुः
उ	ए	वे	अनु—एजनम्	अन्वेजनम्
ऊ	ए	वे	वधू—एका	वध्वेका
ऊ	ऐ	वै	वस्तु—ऐक्यम्	वस्त्वैक्यम्
उ	ऐ	वै	वधू—ऐश्वर्यम्	वध्वैश्वर्यम्
उ	ओ	वो	तनु—ओकः	तन्वोकः
ऊ	ओ	वो	चमू—ओघः	चम्वोघः
उ	औ	वौ	अनु—औषधम्	अन्वौषधम्
ऊ	औ	वौ	पुनर्भू—औरसः	पुनर्भ्वौरसः
ऋ	अ	र	पितृ—अनुमतिः	पित्रनुमतिः
ऋ	आ	रा	मातृ—आज्ञा	मात्राज्ञा
ऋ	इ	रि	स्वसृ—इङ्गितम्	स्वस्रिङ्गितम्
ऋ	ई	री	दुहितृ—ईहा	दुहित्रीहा
ऋ	उ	रु	भर्तृ—उपदेशः	भर्त्रुपदेशः
ऋ	ऊ	रू	भर्तृ—ऊढा	भर्त्रूढा
ऋ	ए	रे	धातृ—एकत्वम्	धात्रेकत्वम्
ऋ	ऐ	रै	भ्रातृ—ऐश्वर्यम्	भ्रात्रैश्वर्यम्
ऋ	ओ	रो	यातृ—ओकः	यात्रोकः
ऋ	औ	रौ	कर्तृ—औत्कण्ठ्यम्	कर्त्रौत्कण्ठ्यम्

२—अयादिचतुष्टय

ए, ओ, ऐ, औ, इन से परे यदि कोई अच् हो तो इनको क्रम से अय् अव् आय् आव् ये आदेश हो जाते हैं या ओ, औ से परे प्रत्यय का यकार हो तो भी इनको अव्, आव् आदेश होते हैं। निम्नलिखित चक्र को देखो।

पूर्ववर्ण	परवर्ण	आदेश	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
ए	अ	अय्	चे—अनम्	चयनम्
ओ	अ	अव्	भो—अनम्	भवनम्
ऐ	अ	आय्	नै—अकः	नायकः
औ	अ	आव	पौ—अकः	पावकः
ए	इ	अय्	ते—इह	तयिह, तइह *
ओ	इ	अव्	पो—इत्रः	पवित्रः
ऐ	इ	आय्	श्रियै—इन्दुः	श्रिया इन्दुः* श्रियायिन्दुः
औ	इ	आव्	भौ—इतः	भावितः
ए	उ	अय्	ते—उद्धृताः	तयुद्धृताः वा तउद्धृताः*
ओ	उ	अव्	बन्धो—उत्तिष्ठ	बन्धवुत्तिष्ठ वा बन्धउत्तिष्ठ*
ऐ	उ	आय्	अस्मै—उद्धर	अस्मायुद्धर वा अस्माउद्धर*
औ	उ	आव्	द्वौ—उपमितौ	द्वावुपमितौ वा द्वा उपमितौ*

पूर्व वर्ण	पर वर्ण	आदेश जो पूर्व वर्ण को होता है	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
ए	ए	अय्	कपे — ए	कपये
ओ	ए	अव्	धेनो — ए	धेनवे
ऐ	ए	आय्	रै — ए	राये
औ	ए	आव्	नौ — ए	नावे
ए	ऐ	अय्	सर्व -ऐतिहासिकाः	सवयैतिहासिका सर्वऐतिहासिकाः
ओ	ऐ	अव्	पटो — ऐः	पटवैः
ऐ	ऐ	आय्	कस्मै — ऐश्वर्यम्	कस्मायैश्वर्यम् वा कस्माऐश्वर्यम्*
औ	ऐ	आव्	द्वौ — ऐतिह्यौ	द्वावैतिह्यौ द्वाऐतिह्यौ
ए	ओ	अय्	विश्वे — ओः	विश्वयोः
ओ	ओ	अव्	गो — ओः	गवोः
ऐ	ओ	आय्	रै — ओः	रायोः
औ	ओ	आव्	नौ — ओः	नावोः
ए	औ	अय्	ते — औरस्याः	तयौरस्याः वा त औरस्याः *
ओ	औ	अव्	गो — औ	गावौ
ऐ	औ	आय्	रै — औ	रायौ
औ	औ	आव्	नौ — औ	नावौ
ओ	य	अव्	गो — यम्	गव्यम्
औ	य	आव्	नौ — यम्	नाव्यम्

* जहाँ २ यह चिह्न है वहाँ २ एक पक्ष में पदान्त के यकार वकार का लोप हो जाता है।

३ गुण

ह्रस्व अथवा दीर्घ अकार से परे ह्रस्व वा दीर्घ इ, उ, ऋ रहें तो अ–इ मिलकर "ए" अ–उ मिलकर "ओ" और अ–ऋ मिल कर "अर्" आदेश होता है और इसी को गुणादेश कहते हैं ॥

पूर्ववर्ण	परवर्ण	एकादेश	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
अ	इ	ए	उप–इन्द्रः	उपेन्द्रः
अ	ई	ए	पर–ईशः	परेशः
आ	इ	ए	यथा–इच्छसि	यथेच्छसि
आ	ई	ए	महा–ईश्वरः	महेश्वरः
अ	उ	ओ	जन्म–उत्सवः	जन्मोत्सवः
अ	ऊ	ओ	नव–ऊढा	नवोढा
आ	उ	ओ	महा–उरस्कः	महोरस्कः
आ	ऊ	ओ	गङ्गा–ऊर्मिः	गङ्गोर्मिः
अ	ऋ	अर्	ब्रह्म–ऋषिः	ब्रह्मर्षिः
आ	ऋ	अर्	महा–ऋषिः	महर्षिः

४ वृद्धि

ह्रस अथवा दीर्घ अकार से परे ए, ओ, ऐ, औ रहे तो अ–ए वा अ–ऐ मिल कर "ऐ" और अ–ओ वा अ–औ मिलकर "औ" आदेश होता है और इस को वृद्धि कहते हैं। कहीं कहीं अ और ऋ मिल कर 'आर्' वृद्धि हो जाती है।

पूर्ववर्ण	पर वर्ण	एकादेश	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
अ	ए	ऐ	उप—एधते	उपैधते
अ	ऐ	ऐ	परम—ऐश्वर्यम्	परमैश्वर्यम्
आ	ए	ऐ	यथा—एव	यथैव
आ	ऐ	ऐ	महा—ऐश्वर्यम्	महैश्वर्यम्
अ	ओ	औ	तिल—ओदनम्	तिलौदनम्
अ	औ	औ	तव—औदार्यम्	तवौदार्यम्
आ	ओ	औ	महा—ओजः	महौजः
आ	औ	औ	विश्वपा—औ	विश्वपौ
अ	ऋ	आर्	प्र—ऋणम्	प्रार्णम्
अ	ऋ	अर्	सुखेन—ऋतः	सुखार्तः *

५ सवर्ण दीर्घ

यदि ह्रस्व वा दीर्घ अ, इ, उ, ऋ से उसका सवर्ण अक्षर परे रहे तो दोनों मिल कर एक दीर्घ आदेश हो जाता है और इसी को सवर्ण दीर्घ कहते हैं।

पूर्व वर्ण	पर वर्ण	एकादेश	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
अ	अ	आ	पुरुष—अर्थः	पुरुषार्थः
अ	आ	आ	मम—आत्मजः	ममात्मजः

* यह तृतीयासमास में वृद्धि हुई है।

पूर्व वर्ण	पर वर्ण	एकादेश	असिद्ध सन्धि	सिद्ध सन्धि
आ	अ	आ	यथा—अर्थः	यथार्थः
आ	आ	आ	विद्या—आलयः	विद्यालयः
इ	इ	ई	अधि–इतः	अधीतः
इ	ई	ई	अधि–ईश्वरः	अधीश्वरः
ई	इ	ई	महती–इच्छा	महतीच्छा
ई	ई	ई	मही–ईशः	महीशः
उ	उ	ऊ	बहु–उन्नतः	बहून्नतः
उ	ऊ	ऊ	लघु–ऊर्मिः	लघूर्मिः
ऊ	उ	ऊ	पूनर्भू–उत्तरः	पुनर्भूत्तरः
ऊ	ऊ	ऊ	वधू–ऊढ़ा	वधूढ़ा
ऋ	ऋ	ऋ	पितृ–ऋणम्	पितॄणम्

६ पूर्वरूप

यदि पदान्त के ए, ओ से परे ह्रस्व अकार रहे तो वह अकार ए और ओ में ही मिल जाता है। उस पूर्व रूप में परिणत हुए अकार को (ऽ) इस चिह्न से बोधित करते हैं।

यथा—मुने–अत्र = मुनेऽत्र। गुरो–अव = गुरोऽव।

७ पररूप

जैसे परवर्ण का पूर्व वर्ण में मिल जाना पूर्वरूप कहलाता है, इसी प्रकार पूर्ववर्ण का परवर्ण में मिल जाना पररूप कहलाता है। पररूप सन्धि का कोई विशेष नियम नहीं है, यह कहीं गुण, कहीं वृद्धि और कहीं सवर्ण दीर्घ के स्थान में भी हो जाया करती है

गुण के स्थान में पररूप । यथा—दृदा—उः = दृदुः । पपा—उः = पपुः । यया—उः = ययुः ।

वृद्धि के स्थान में पररूप । यथा—प्र—एजते = प्रेजते । उप—ओषति = उपोषति । इह—एव = इहेव । का—ओम् = कोम् । अद्य—ऊढा = अद्योढा । स्थूल—ओतुः = स्थूलोतुः । बिम्ब—ओष्ठः = बिम्बोष्ठः ।

सवर्ण दीर्घ के स्थान में पररूप । यथा—शक—अन्धुः = शकन्धुः । कुल—अटा = कुलटा । सीम—अन्तः = सीमन्तः । पच—अन्ति = पचन्ति । यज—अन्ति = यजन्ति ।

८ प्रकृतिभाव

इनके अतिरिक्त प्रायः स्थल ऐसे भी हैं कि जहाँ सन्धि नहीं होती, उसको प्रकृतिभाव कहते हैं । जहाँ पूर्व और पर वर्णों में कोई विकार नहीं होता किन्तु वे अपने स्वरूप से स्थित रहते हैं वहाँ प्रकृतिभाव होता है । यथा-इ-इन्द्रः । मुनी-इमौ । अमी—आसते । अहो—ईशाः । इत्यादि उदाहरणों में इ, मुनी, अमी और अहो इन शब्दों की प्रगृह्य सञ्ज्ञा होने से सवर्णदीर्घ, यण् और अव् आदेश न हुवे किन्तु प्रकृतिभाव हो गया ।

जहां प्लुत से आगे अच् रहे वहां भी सन्धि नहीं होती । जैसे—एहि शिष्य ३, अत्र छात्राः पठन्ति—यहां प्लुतसंज्ञक अकार के होने से सवर्ण दीर्घ आदेश न हुआ किन्तु प्रकृतिभाव हो गया ।

हल्सन्धि

संस्कृत में हल्सन्धि के अनेक भेद हैं जिनमें से कुछ एक नीचे लिखे जाते हैं ।

यदि सकार और तवर्ग को शकार और चवर्ग का योग हो तो उन को क्रम से शकार और चवर्ग ही हो जाते हैं । यथा-कस-

शेते=कश्शेते। कस्-चित्=कश्चित्। उत्-शिष्टः=उच्छिष्टः*
सत्-चित्=सच्चित्। उत्-छिन्नः=उच्छिन्नः। उत्-ज्वलः=
उज्ज्वलः। शत्रून्-जयति-शत्रूञ्जयति।

यदि सकार और तवर्ग को षकार और टवर्ग का योग हो तो उनको क्रम से षकार और टवर्ग ही हो जाते हैं। यथा-कस्-षष्ठः=कष्षष्ठः। वृक्षस्-टीकते=वृक्षष्टीकते। पेष्-ता=पेष्टा। प्रतिष्-था=प्रतिष्ठा। पूष्-नः=पूष्णः। उत्-टङ्कनम्=उट्टङ्कनम्। उत्-डीनः=उड्डीनः।

यदि तवर्ग से लकार परे रहे तो उसको लकार ही आदेश हो जाता है। तत्-लयः=तल्लयः। भवान्-लिखति=भवाँल्लिखति। यहां अनुनासिक न को अनुनासिक ही लँ हुआ।

यदि किसी वर्ग के प्रथम वा तृतीय वर्ण से कोई अनुनासिक वर्ण परे रहे तो पूर्व वर्ण को उसके ही वर्ग का सानुनासिक वर्ण हो जाता है। वाग्-मयम्=वाङ्मयम्। सम्राट्-नयति=सम्राण्नयति। जगत्-नाथः=जगन्नाथः। चित्-मात्रः=चिन्मात्रः। तद्-मयः=तन्मयः।

यदि किसी वर्ग के पहले वर्ण से उसी या अन्य वर्गों के तीसरे चौथे वर्ण अथवा अच् परे रहे तो उसको अपने वर्ग का तीसरा वर्ण हो जाता है। यथा-प्राक्-गमनम्=प्राग्गमनम्। वाक्-दण्डः=वाग्दण्डः। सम्यक्-धृतः=सम्यग्धृतः। उदक्-अयनम्=उदगयनम्। अच्-अन्तः=अजन्तः। उत्-गमनम्=उद्गमनम्। अत्-अन्तः=अदन्तः। उत्-भवनम्=उद्भवनम्। अप्-जः=अब्जः।

यदि किसी वर्ग के पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे वर्ण से हकार परे रहे तो उसको उसी वर्ग का चतुर्थ वर्ण हो जाता

* यहां शकार को छकार हो गया है।

है। तथा — वाग् — हसति = वाग्घसति। अच् — हल् = अज्झल्।
उद् — हरणम् = उद्धरणम्।

वर्ग के पहले और तीसरे वर्ण से शकार परे हो तो उसको छकार हो जावे, यदि उससे परे कोई अच् वा अन्तःस्थ वा अनुनासिक वर्ण हो। वाक् — शरः = वाक्छरः। हल् — शयः = हच्छयः। महत् — श्रृङ्गम् = महच्छृङ्गम्।

यदि वर्ग के तृतीय वर्ण से परे वर्ग के प्रथम, द्वितीय वर्ण रहें तो तृतीय वर्ण को भी प्रथम वर्ण हो जाता है यथा — उद् — थानम् = उत्थानम्। उद् — तम्भनम् = उत्तम्भनम्।

यदि ह्रस्व अच् से परे छकार हो तो वह चकार से संयुक्त हो जावे। यथा — परि — छेदः = परिच्छेदः। अव — छेदः = अवच्छेदः। गृह — छिद्रम् = गृहच्छिद्रम्। तरु — छाया = तरुच्छाया।

यदि अपदान्त अनुस्वार से परे पाँचों वर्गों में से किसी वर्ग का कोई वर्ण हो तो उसे उसी वर्ग का अनुनासिक वर्ण हो जाता है। यथा — अं — कितः = अङ्कितः। वं — चितः = वञ्चितः। कुं — ठितः = कुण्ठितः। नं — दितः = नन्दितः। कं — पितः = कम्पितः। पदान्त में विकल्प से होता है यथा = त्वङ् करोषि। त्वंकरोषि।

पदान्त मकार को यदि उससे कोई हल् परे हो तो अनुस्वार आदेश हो जाता है। यथा — गुरुम् — वन्दे = गुरुं वन्दे। वनम् — यासि = वनं यासि। धनम् — देहि = धनं देहि।

अपदान्त नकार को यदि उससे कोई हल्, अनुनासिक और अन्तःस्थ वर्णों को छोड़ कर परे हो तो उसको भी अनुस्वार आदेश हो जाता है। यथा — पयान् — सि = पयांसि। यशान् — सि = यशांसि। मन् — स्यते = मंस्यते। इत्यादि।

यदि पदान्त के 'न' के आगे (यदि वह ह्रस्व स्वर से परे हो) कोई स्वर आवे तो 'न्' को द्वित्व होता है। यथा — पतन् —

अर्भकः = पतन्नर्भकः । कुर्वन् — आस्ते = कुर्वन्नास्ते । दीर्घ स्वर के परवर्त्ती 'न्' को द्वित्व नहीं होता । यथा — विद्वान् — आगतः = विद्वानागतः ।

यदि पदान्त 'न्' से परे च, छ, ट, ठ, त और थ हों तो 'न' को अनुस्वार होकर च आदि को 'स्' का आगम होता है, यथा — कस्मिन्-चित् = कस्मिंश्चित् । संशयान् — छेत्तुम् = संशयांश्छेत्तुम् । कुर्वन् — टंकारः — कुर्वंष्टंकारः । विद्वान्--ठक्कुरः = विद्वांष्ठक्कुरः । महान् — तड़ागः = महांस्तड़ागः । कुर्वन् — थूत्कारः = कुर्वंस्थूत्कारः ।

विसर्गसन्धि

यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे क, ख, वा प, फ, रहें तो विसर्ग को प्रायः मूर्द्धन्य ष हो जाता है। निः-कण्टकः = निष्कण्टकः । निः — क्रयः = निष्क्रयः । निः-पापः = निष्पापः । निः-फलम् = निष्फलम् । दुः-कर्म = दुष्कर्म । दुः-पीतम् = दुष्पीतम् । दुः — फलम् = दुष्फलम् ।

यदि पदान्त का विसर्ग हो तो विकल्प से 'ष्' होता है 'यथाः' सर्पिः-करोति = सर्पिष्करोति वा सर्पिः करोति । नमः और पुरः शब्दों के विसर्ग को 'स्' होता है। यथा — नमः-करोति = नमस्करोति । पुरः — करोति = पुरस्करोति । तिरः के विसर्ग को विकल्प से 'स' होता है । तिरः — कर्त्ता = तिरस्कर्त्ता वा तिरःकर्त्ता ।

च, छ, परे हों तो विसर्ग को 'श्' और त, परे हो तो 'स्' आदेश हो जाता है । निः — चयः = निश्चयः । निः — चलः = निश्चलः । निः — छलः = निश्छलः । निः — तारः = निस्तारः ।

यदि विसर्ग से वर्ग के तृतीय, चतुर्थ वर्ण या अन्तःस्थ ह और अनुनासिक वर्ण परे हों तो विसर्ग को 'ओ' आदेश हो जाता है । यथा — मनः — गतः = मनोगतः । मनः — जवः =

मनोजवः। यशः—दा=यशोदा। पयः—दः=पयोदः। अश्वः—धावति=अश्वोधावति। मनः—भवः=मनोभवः। नरः—याति=नरोयाति। मनः—रथ=मनोरथः। मनः—लयः=मनोलयः। पवनः—वाति=पवनोवाति। मनः—हरः=मनोहरः। मनः—नीतः=मनोनीतः। तेजः—मयः=तेजोमयः। इत्यादि।

यदि ह्रस्व अकार से परे विसर्ग हों और उससे परे फिर ह्रस्व अकार हो तो विसर्ग को 'ओ' आदेश हो जाता है और पर अकार उसी में मिल जाता है। यथा—मनः—अवधानम्=मनोऽवधानम्। शिष्यः—अत्र=शिष्योऽत्र। शिवः—अर्च्यः=शिवोऽर्च्यः। धर्मः—अनुष्ठेयः=धर्मोऽनुष्ठेयः।

यदि अकार को छोड़ कर अन्य स्वरों से परे विसर्ग हों और उनसे परे वर्ग के तृतीय, चतुर्थ वा ह, य, व, ल, न, म, वा स्वर वर्ण हों तो विसर्ग के स्थान में रेफ आदेश होता है। यथा—निः—गुणः=निर्गुणः। निः—जलम्=निर्जलम्। निः—झरः=निर्झरः। दुः—दान्तः=दुर्दान्तः। निः—धनः—निर्धनः। तरोः—वनम्=तरोर्वनम्। निः—भयः=निर्भयः। निः—हरणम्=निर्हरणम्। निः—यातः=निर्यातः। निः—वचनम्=निर्वचनम्। दुः—गः=दुर्गः। निः—नयः=निर्णयः। निः—मलः=निर्मलः। निः—अर्थ=निरर्थः। निः—आकारः=निराकारः। निः—इच्छ=निरिच्छः। निः—ईहः=निरीहः। निः—उपायः=निरुपायः। निः—औषधम्=निरौषधम्। इत्यादि।

अ, इ, उ, से परे विसर्ग हों और उससे परे रकार हो तो विसर्ग का लोप होकर उससे पूर्व वर्ण को दीर्घ हो जाता है। यथा—पुनः-रक्तम्=पुनारक्तम्। निः-रसः=नीरसः। निः-रुजः=नीरुजः। इन्दुः-राजते=इन्दूराजते।

अ से परे विसर्ग का लोप हो जाता है जब कि उससे परे ह्रस्व 'अ' को छोड़कर कोई स्वर रहे। यथा—कः—आस्ते=क

आस्ते। यः—ईशः=यईशः। सः—उत्सवः=सउत्सवः। वः—ऋषिः=व ऋषिः। सूर्यः—एकः=सूर्य एकः। सः—ऐक्षत=स ऐक्षत=यतः—ओषधिः=यत ओषधिः।

सः और एषः के विसर्ग का, हल् परे हो तो भी, लोप हो जाता है। यथा—सः—गच्छति=सगच्छति। एषः—क्रीडति=एषक्रीडति इत्यादि।

शब्दानुशासन

जो कान से सुनाई देवे उसे शब्द कहते हैं। वह दो प्रकार का है (१) सार्थक (२) निरर्थक। सार्थक शब्द की पद संज्ञा है और उसी का विवेचन व्याकरण शास्त्र में किया गया है।

पद के दो भेद हैं—१ संज्ञा, २ क्रिया।

संज्ञा वस्तु के नाम को कहते हैं और वह लिङ्ग, वचन और कारक से सम्बन्ध रखती है। जैसे—"अश्वत्थः" यह एक वृक्ष विशेष का नाम है। "आम्रम्" यह एक फल विशेष का नाम है। "शुण्ठिः" यह एक ओषधि विशेष का नाम है।

क्रिया का लक्षण यह है कि जिस से कुछ करना पाया जाय और वह काल, पुरुष और वचन से सम्बन्ध रखती है। क्रिया का सविस्तर वर्णन आगे आवेगा।

संज्ञा और क्रिया के सिवाय सार्थक शब्दों में अव्यय की भी गणना है। अव्ययों का वर्णन भी आगे होगा।

संज्ञा

संज्ञा के तीन भेद हैं—रूढ़ि, यौगिक, योगरूढ़ि। रूढ़ि संज्ञा उसे कहते हैं जो किसी वस्तु के लिए नियत हो और उसका

कोई खण्ड सार्थक न हो। जैसे—"निम्बः" यह एक वृक्ष विशेष की संज्ञा है। यदि इसमें से निम् और बः को अलग अलग कर दिया जाय तो इनका कुछ अर्थ न होगा।

यौगिक संज्ञा उसे कहते हैं जो दो शब्दों के योग से अथवा शब्द और प्रत्यय के योग से बनी हो। यथा—प्रियंवदः। मनोरमः। जलचरः। वक्ता। कामुकः। लोलुपः। इत्यादि।

योगरूढ़ि संज्ञा वह कहाती है जो स्वरूप में तो यौगिक के समान हो, पर अर्थ में यौगिक के समान अवयवार्थ को न लेकर संकेतितार्थ का प्रकाश करती हो। जैसे—पंकजम्। जलदः। हिमालयः। वर्षाभूः। इत्यादि।

नोट—यद्यपि पंक से कमल के अतिरिक्त और भी अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं परन्तु पंकज केवल कमल की ही संज्ञा है। एवं जल को नदी, कूप, तड़ागादि भी देते हैं परन्तु "जलद" केवल बादल की ही संज्ञा है। तथा हिम और भी अनेक स्थानों में होता है परन्तु "हिमालय" केवल उसी पर्वत का नाम है जो भारतवर्ष की उत्तरीय सीमा में विद्यमान है। इसी प्रकार वर्षा में अनेक जन्तु उत्पन्न होते हैं परन्तु 'वर्षाभू" केवल मेंडक की ही संज्ञा है।

इन के अतिरिक्त संज्ञा के ५ भेद और भी हैं जिनके नाम ये हैं १—जातिवाचक २—व्यक्तिवाचक ३—गुणवाचक ४ भाव-वाचक ५—सर्वनाम।

जातिवाचक संज्ञा वह है जिससे जातिमात्र (जिन्स भर) का बोध हो अर्थात् उससे सब समानाकृति व्यक्तियाँ जानी जावें। जैसे—मनुष्यः। अश्वः। गौः। वृक्षः। पुस्तकम्। वस्त्रम्। इत्यादि।

व्यक्तिवाचक संज्ञा वह है जिससे व्यक्ति (जाति के एक देश) का ग्रहण हो। जैसे—देवदत्तः। विष्णुमित्रः। इन्द्रप्रस्थः। गंगा। यमुना। आदि।

गुणवाचक संज्ञा वह है जिससे किसी वस्तु का गुण प्रकट हो, अतएव इसको विशेषण भी कहते हैं। यह संज्ञा अकेली नहीं आती किन्तु अपने विशेष्य के साथ में आती है। यथा—नीलोत्पलम्। कृष्णसर्पः। पीतवर्णः। वक्रचन्द्रः। उच्चैःस्वरः। उत्तमपुरुषः। इत्यादि।

भाववाचक संज्ञा वह है जो पदार्थ के धर्म एवं स्वभाव को बतलावे अथवा उससे किसी व्यापार का बोध हो। यथा—गौरवम्। लाघवम्। जाड्यम्। पाण्डित्यम्। मानुष्यम्। इत्यादि।

सर्वनाम संज्ञा उसे कहते हैं जो और संज्ञाओं के बदले में कही जावे जैसे—तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, युष्मद्, अस्मद्, अन्य, अन्यतर, इतर, कतर, कतम, किम्, एक, द्वि, इत्यादि।

नोट—सर्वनाम संज्ञा का प्रयोजन यह है कि इस से वाक्य में लाघव और लालित्य आजाता है और पुनरुक्ति नहीं होती अर्थात् एक ही शब्द का वार वार प्रयोग नहीं करना पड़ता। यथा—"देवदत्त आगतः स च स्वकीयं पुस्तकं गृहीत्वा गतः" देवदत्त आया था और वह अपना पुस्तक लेकर गया। यहां उत्तर वाक्य में पुनः देवदत्त शब्द का प्रयोग नहीं करना पड़ा किन्तु "तद्" सर्वनाम से उसका परामर्श होगया।

सर्वनाम शब्दों में लिङ्ग नियत नहीं होता किन्तु जिन के स्थान में ये आते हैं उनका जो लिङ्ग होता है वही सर्वनाम का भी। यथा—एषा शाटी। एषोऽश्वः। एतत् पुस्तकम्।

तीनों पुरुष जिनका क्रिया में काम पड़ेगा इन्हीं सर्वनामों से निर्देश किये जाते हैं। यथा—'अस्मद्' से उत्तम पुरुष, 'युस्मद्' से मध्यम पुरुष और अस्मद् युष्मद् से भिन्न और किसी सर्वनाम से प्रथम वा अन्य पुरुष का निर्देश किया जाता है।

लिङ्ग

संस्कृत भाषा में तीन लिङ्ग होते हैं जिन के नाम ये हैं—पुंलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग।

पुरुष के लिये पुंलिङ्ग, स्त्री के लिये स्त्रीलिंग और दोनों से विलक्षण व्यक्ति वा द्रव्य के लिये प्रायः नपुंसक लिंग का प्रयोग किया जाता है। यथा—गुरुः। विद्या। सूत्रम्।

संस्कृत में प्रायः शब्द नियतलिंग होते हैं, जिनका विशेष परिचय लिंगानुशासन के अवलोकन से होगा, जोकि इस पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है।

वचन

संस्कृत में लिंग के ही समान वचन भी तीन होते हैं, एकवचन, द्विवचन और बहुवचन।

जिस के कहने से एक व्यक्ति वा वस्तु का बोध हो वह एकवचन, जो दो पदार्थों को जनावे वह द्विवचन और जो दो से अधिक वस्तुओं के लिए प्रयुक्त होता है वह बहुवचन कहलाता है। यथा—वृक्षः। वृक्षौ। वृक्षाः।

जाति के अभिधान में एकवचन को बहुवचन भी हो जाता है। यथा—मनुष्यः=मनुष्याः। अश्वः=अश्वाः।

युष्मद् और अस्मद् शब्द के एकवचन और द्विवचन को भी पक्ष में बहुवचन होजाता है। यथा—अहं ब्रवीमि=वयं ब्रूमः। आवां ब्रूवः=वयं ब्रूमः। त्वं गच्छसि=यूयं गच्छथ। युवां गच्छथः=यूयं गच्छथ॥

आदरार्थ में भी एकवचन को बहुवचन हो जाता है। यथा-गुरुरभिवादनीयः=गुरवोऽभिवादनीयाः।

धातु प्रत्यय से वर्जित केवल अर्थवान् शब्द को प्रातिपदिक कहते हैं और उसी की रूढ़ि संज्ञा होती है। यथा—"कुण्डम्" यह किसी द्रव्य का नाम है। 'पिंगलः' यह किसी गुण का वाचक है।

कृदन्त, तद्धितान्त और समासान्त की भी प्रातिपदिक संज्ञा है। कृदन्त – शिष्यः। स्तुत्यः। इत्यादि। तद्धितान्त – औपगवः। आदित्यः। इत्यादि। समासान्त – राजपुरुषः। विचित्रवीर्यः। इत्यादि।

प्रातिपदिक (संज्ञा) से विभक्तिसूचक स्वादि २१ प्रत्यय होते हैं। विभक्तियां सात हैं। प्रत्येक विभक्ति के तीन तीन वचन होते हैं जिनके प्रत्यय २१ हैं।

विभक्तिसूचक स्वादि २१ प्रत्यय

विभक्तयः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथमा	सु = स्	औ	जस् = अस्
द्वितीया	अम्	औ	शस् = अस
तृतीया	टा = आ	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे = ए	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	ङस् = अस्	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	ङस् = अस्	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि = इ	ओस्	सुप् = सु

प्रथमा के एकवचन "सु" से लेकर सप्तमी के बहुवचन "सुप्" तक २१ प्रत्यय होते हैं। इनके समाहार को सुप् प्रत्याहार कहते हैं। ये जिनके अन्त में हों उसको सुबन्त कहते हैं और उसको पद संज्ञा भी है।

इन २१ विभक्तियों में औ, जस्, अम्, औ, शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि और ओस् ये १३ प्रत्यय अजादि विभक्ति कहलाते हैं और शेष ८ प्रत्यय हलादि विभक्ति।

विस्तरभय से हमने केवल विभक्तियों के सिद्ध रूप दिये हैं इनकी सिद्धि में जो जो सूत्र लगते हैं उनको अष्टाध्यायी वा कौमुदी में देखना चाहिये।

अब हम अजन्तादि क्रम से सुप् प्रत्याहार का (प्रातिपदिक) संज्ञा शब्दों के साथ योग होने से जो परिणाम होता है उसे ८ भागों में विभक्त करके दिखलावेंगे।

अजन्त पुँल्लिङ्ग अकारान्त 'देव' शब्द

विभक्तयः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्	कारकाणि
प्रथमा	देवः	देवौ	देवाः	कर्त्ता
द्वितीया	देवम्	देवौ	देवान्	कर्म
तृतीया	देवेन	देवाभ्याम्	देवैः	करणम्
चतुर्थी	देवाय	देवाभ्याम्	देवेभ्यः	सम्प्रदानम्
पञ्चमी	देवात्	देवाभ्याम्	देवेभ्यः	अपादानम्
षष्ठी	देवस्य	देवयोः	देवानाम्	शेषः
सप्तमी	देवे	देवयोः	देवेषु	अधिकरणम्
प्रथमा	हे देव !	हे देवौ !	हे देवाः !	सम्बोधनम्

प्रायः सब अकारान्त शब्द देव के ही समान विभक्तियों में परिणत होते हैं, किन्तु निर्जर, पाद, दन्त, मास और यूष शब्दों में कुछ भेद है। एक पक्ष में तो इनके रूप 'देव' शब्द के ही तुल्य होते हैं दूसरे पक्ष में निर्जर को निजरस् और मास को मास् आदेश होकर सकारान्तों के समान पाद को पत् और दन्त को दत् आदेश होकर तकारान्तों के सदृश और यूष को यूषन् आदेश होकर नकारान्तों के तुल्य रूप होते हैं।

आकारान्त 'हाहा' शब्द

प्रथमा	हाहाः	हाहौ	हाहाः
द्वितीया	हाहाम्	हाहौ	हाहान्
तृतीया	हाहा	हाहाभ्याम्	हाहाभिः
चतुर्थी	हाहै	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः

पञ्चमी	हाहाः	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
षष्ठी	हाहाः	हाहौ	हाहानाम्
सप्तमी	हाहे	हाहौ	हाहासु
सम्बोधन	हे हाहाः	हे हाहौ	हे हाहाः

हाहा के ही समान अन्य सब आकारान्त शब्दों के रूप होते हैं, किन्तु 'विश्वपा' आदि धातु से बने हुए आकारान्त शब्दों में द्वितीया के बहुवचन से लेकर सप्तमी के बहुवचन तक केवल अजादि विभक्तियों के परे आकार का लोप होकर हलन्त शब्दों के समान रूप हो जाते हैं। यथा—विश्वपः। विश्वपा। विश्वपे। विश्वपः २। विश्वपोः। विश्वपाम्। विश्वपि। विश्वपोः। आकारान्त धातु के योग से बने हुए सब शब्दों के रूप 'विश्वापा' के ही समान होते हैं।

ह्रस्व इकारान्त 'अग्नि' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अग्निः	अग्नी	अग्नयः
द्वितीया	अग्निम्	अग्नी	अग्नीन्
तृतीया	अग्निना	अग्निभ्याम्	अग्निभिः
चतुर्थी	अग्नये	अग्निभ्याम्	अग्निभ्यः
पञ्चमी	अग्नेः	,,	,,
षष्ठी	अग्नेः	अग्न्योः	अग्नीनाम्
सप्तमी	अग्नौ	अग्न्योः	अग्निषु
सम्बोधन	हे अग्ने !	हे अग्नी !	हे अग्नयः !

प्रायः ह्रस्व इकारान्त शब्दों के रूप 'अग्नि' शब्द के ही तुल्य होते हैं किन्तु सखि और पति शब्दों में कुछ भेद है।

सखि शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
द्वितीया	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृतीया	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पञ्चमी	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	सख्योः	सखिषु
सम्बोधन	हे सखे !	हे सखायौ !	हे सखायः

'पति' शब्द में इतना भेद है कि उसके तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी के एकवचन में 'सखि' शब्द के समान और शेष सब रूप 'अग्नि' शब्द के तुल्य होते हैं। यदि 'पति' शब्द का किसी अन्य शब्द के साथ समास हो जैसे भूपति, श्रीपति, गृहपति आदि शब्द, तो इनके सब रूप 'अग्नि' शब्द के ही समान होंगे।

दीर्घ ईकारान्त 'सुधी' शब्द

प्रथमा	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
द्वितीया	सुधियम्	सुधियौ	सुधियः
तृतीया	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
चतुर्थी	सुधिये	,,	सुधीभ्यः
पञ्चमी	सुधियः	,,	,,
षष्ठी	,,	सुधियोः	सुधियाम्
सप्तमी	सुधियि	,,	सुधीषु
संबो०	हे सुधीः !	हे सुधियौ !	हे सुधियः

धातु से बने हुए प्रायः ईकारान्त शब्दों के रूप 'सुधी' शब्द के समान ही होते हैं। 'सेनानी' शब्द में कुछ भेद है।

'सेनानी' शब्द

प्रथमा	सेनानीः	सेनान्यौ	सेनान्यः
द्वितीया	सेनान्यम्	,,	,,
तृतीया	सेनान्या	सेनानीभ्याम्	सेनानीभिः
चतुर्थी	सेनान्ये	,,	सेनानीभ्यः
पञ्चमी	सेनान्यः	,,	,,
षष्ठी	सेनान्यः	सेनान्योः	सेनान्याम्
सप्तमी	सेनान्याम्	,,	सेनानीषु
सम्बोधन	हे सेनानीः!	हे सेनान्यौ!	हे सेनान्यः!

अग्रणी और ग्रामणी आदि शब्दों के रूप भी इसी के समान होते हैं। सुखी शब्द में कुछ विशेष है।

'सुखी' शब्द

प्रथमा	सुखीः	सुख्यौ	सुख्यः
द्वितीया	सुख्यम	,,	,,
तृतीया	सुख्या	सुखीभ्याम्	सुखीभिः
चतुर्थी	सुख्ये	,,	सुखीभ्यः
पंचमी	सुख्युः	,,	,,
षष्ठी	,,	सुख्योः	सुख्याम्
सप्तमी	सुख्यि	सुख्योः	सुखीषु
सम्बोधन	हे सुखीः!	हे सुख्यौ!	हे सुख्यः!

इसी के समान 'सुती' और 'प्रधी' आदि शब्दों के रूप होते हैं।

ह्रस्व उकारान्त 'वायु' शब्द

प्रथमा	वायुः	वायू	वायवः
द्वितीया	वायुम्	वायू	वायून्
तृतीया	वायुना	वायुभ्याम्	वायुभिः
चतुर्थी	वायवे	,,	वायुभ्यः
पंचमी	वायोः	,,	,,
षष्ठी	,,	वाय्वोः	वायूनाम्
सप्तमी	वायौ	,,	वायुषु
सम्बो०	हे वायो !	हे वायू !	हे वायवः !

वायु के ही समान शम्भु, विष्णु, भानु, आदि उकारान्त शब्दों के रूप होते हैं किन्तु 'क्रोष्टु' शब्द को किन्हीं २ विभक्तियों में 'क्रोष्टृ' आदेश होकर ऋकारान्तों के समान उसके रूप हो जाते हैं।

'क्रोष्टु' शब्द

प्र०	क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः
द्वि०	क्रोष्टारम्	,,	क्रोष्टून्
तृ०	क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः
च०	क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
पं०	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
ष०	,, ,,	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टूनाम्
स०	क्रोष्टरि, क्रोष्टौ	,, ,,	क्रोष्टुषु
सं०	हे क्रोष्टो !	हे क्रोष्टारौ !	हे क्रोष्टारः !

दीर्घ ऊकारान्त 'पुनर्भू' शब्द

प्र०	पुनर्भूः	पुनर्भ्वौ	पुनर्भ्वः
द्वि०	पुनर्भ्वम्	,,	,,

तृ०	पुनर्भ्वा	पुनर्भूभ्याम्	पुनर्भूभिः
च०	पुनर्भ्वे	,,	पुनर्भूभ्यः
प०	पुनर्भ्वः	,,	,,
ष०	,,	पुनर्भ्वोः	पुनर्भ्वाम्
स०	पुनर्भ्वि	,,	पुनर्भूषु
सं०	हे पुनर्भूः !	हे पुनर्भ्वौ !	हे पुनर्भ्वः !

इसी के समान वर्षाभू, खलपू आदि धातु से बने हुए शब्दों के रूप होते हैं। 'स्वयम्भू' शब्द में कुछ विशेष है।

प्र०	स्वयम्भूः	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुवः
द्वि०	स्वयम्भुवम्	,,	,,
तृ०	स्वयम्भुवा	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभिः
च०	स्वयम्भुवे	,,	स्वयम्भूभ्यः
प०	स्वयम्भुवः	,,	,,
ष०	,,	स्वयंभुवोः	स्वयम्भुवाम्
स०	स्वयम्भुवि	,,	स्वयम्भूषु
सं०	हे स्वयम्भूः !	हे स्वयम्भुवौ !	हे स्वयम्भुवः !

ऋकारान्त 'धातृ' शब्द

प्र०	धाता	धातारौ	धातारः
द्वि०	धातारम्	,,	धातॄन्
तृ०	धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः
च०	धात्रे	,,	धातृभ्यः
प०	धातुः	,,	,,
ष०	धातुः	धात्रोः	धातॄणाम्
स०	धातरि	,,	धातृषु
सं०	हे धातः !	हे धातारौ !	हे धातारः !

धातृ शब्द के ही समान नप्तृ, त्वष्टृ क्षत्तृ, होतृ, पोतृ, प्रशास्तृ और उद्गातृ आदि ऋकारान्त शब्दों के रूप होते हैं, परन्तु पितृ, भ्रातृ, देवृ, जामातृ, और नृ शब्दों की उपधा को प्रथमा के द्विवचन से लेकर द्वितीया के द्विवचन तक दीर्घ नहीं होता। यथा—पितरौ। पितरः। पितरम्। पितरौ। इत्यादि। 'नृ' शब्द को षष्ठी के बहुवचन में 'नृणाम्' 'नॄणाम्' ये दो रूप होते हैं। शेष सब रूप धातृ शब्द के तुल्य होते हैं।

दीर्घ ऋकारान्त 'कॄ' शब्द

प्र०	कॄः	क्रौ	क्रः
द्वि०	क्रम्	,,	कॄन्
तृ०	क्रा	कॄभ्याम्	कॄभिः
च०	क्रे	,,	कॄभ्यः
पं०	क्रः	,,	कॄभ्यः
ष०	,,	क्रोः	क्राम
स०	क्रि	,,	कॄषु
सं०	हे कॄः !	हे क्रौ !	हे क्रः !

इसी के समान सब दीर्घ ऋकारान्त शब्दों के रूप होते हैं।

ऌकारान्त 'गम्ऌ' शब्द

प्र०	गमा	गमलौ	गमलः
द्वि०	गमलम्	,,	गमॄन्
तृ०	गम्ला	गम्ऌभ्याम्	गम्ऌभिः
च०	गम्ले	,,	गम्ऌभ्यः
पं०	गमुल्	,,	ऌगस्भ्यः

ष०	गमुल्	गम्लोः	गम्लृणाम्
स०	गमलि	,,	गम्लृषु
सं०	हे गमल्!	हे गमलौ !	हे गमलः !

इसी के समान 'शक्लृ' आदि लृकारान्तों के रूप होते हैं। ऋ और लृ का परस्पर सावर्ण्य होने से ऋकारान्तों के ही समान लृकारान्तों के भी कार्य होते हैं।

एकारान्त 'से' शब्द

प्रथमा	सेः	सयौ	सयः
द्वितीया	सयम्	सयौ	सयः
तृतीया	सया	सेभ्याम्	सेभिः
चतुर्थी	सये	सेभ्याम्	सेभ्यः
पञ्चमी	सेः	सेभ्याम्	सेभ्यः
षष्ठी	सेः	सयोः	सयाम्
सप्तमी	सयि	सयोः	सेषु
सम्बोधन	हे से !	हे सयौ !	हे सयः !

सब एकारान्त शब्दों के रूप इसी के समान होते हैं।

ऐकारान्त 'कै' शब्द

प्र०	कैः	कायौ	कायः
द्वि०	कायम्	कायौ	कायः
तृ०	काया	कैभ्याम्	कैभिः
च०	काये	कैभ्याम्	कैभ्यः
पं०	कायः	कैभ्याम्	कैभ्यः
ष०	कायः	कायोः	कायाम्
स०	कायि	कायोः	कैषु
सं०	हे कैः !	हे कायौ !	हे कायः !

इसी के समान ऐकारान्त 'रै' शब्द के भी रूप होते हैं, परन्तु हलादि विभक्तियों के परे उसके 'ऐ' को 'आ' आदेश हो जाता है। यथा—राः। राभ्याम्। राभिः इत्यादि।

ओकारान्त 'गो' शब्द

प्र०	गौः	गावौ	गावः
द्वि०	गाम्	गावौ	गाः
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
च०	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पं०	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
ष०	गोः	गवोः	गवाम्
स०	गवि	गवोः	गोषु
सं०	हे गौः !	हे गावौ !	हे गावः !

सब ओकारान्त शब्दों के रूप 'गो' शब्द के तुल्यही होते हैं।

औकारान्त 'ग्लौ' शब्द

प्र०	ग्लौ	ग्लावौ	ग्लावः
द्वि०	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लावः
तृ०	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभिः
च०	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
पं०	ग्लावोः	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
ष०	ग्लावः	ग्लावोः	ग्लावाम्
स०	ग्लावि	ग्लावोः	ग्लौषु
सं०	हे ग्लौः !	हे ग्लावौ !	हे ग्लावः !

सब औकारान्त शब्दों के रूप इसी के समान होते हैं।

अजन्त स्त्रीलिङ्ग

आकारान्त "विद्या" शब्द

प्र०	विद्या	विद्ये	विद्याः	कर्त्ता
द्वि०	विद्याम्	विद्ये	विद्याः	कर्म
तृ०	विद्यया	विद्याभ्याम्	विद्याभिः	करणम्
च०	विद्यायै	,,	विद्याभ्यः	सम्प्रदानम्
पं०	विद्यायाः	,,	,,	अपादानम्
ष०	,,	विद्ययोः	विद्यानाम्	सम्बन्धः
स०	विद्यायाम्	विद्ययोः	विद्यासु	अधिकरणम्
सं०	हे विद्ये !	हे विद्ये !	हे विद्याः !	सम्बोधनम्

विद्या के ही समान प्रायः अन्य आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं, केवल अम्बा शब्द के सम्बोधन में हे अम्ब ! होता है । जरा शब्द में कुछ विशेष है ।

प्र०	जरा	जरसौ, जरे	जरसः, जराः
द्वि०	जरसम्, जराम्	,, ,,	,, ,,
तृ०	जरसा, जरया	जराभ्याम्	जराभिः
च०	जरसे जरायै	,,	जराभ्यः
पं०	जरसः जरायाः	,,	,,
ष०	,, ,,	जरसोः, जरयोः	जरसाम्, जराणाम्
स०	जरसि, जरायाम्	,, ,,	जरासु
सं०	हे जरे !	हे जरसौ हे जरे !	हे जरसः हे जराः !

आकारान्त "निशा" शब्द

प्र०	निशा	निशे	निशाः
द्वि०	निशाम्	निशे	निशः, निशाः
तृ०	निशा, निशया	निड्भ्याम्, निशाभ्याम्	निड्भिः, निशाभिः
च०	निशे, निशायै	,, ,,	निड्भ्यः निशाभ्यः
पं०	निशः, निशायाः	,, ,,	,, ,,
ष०	निशः, निशायाः	निशोः, निशयोः	निशाम्; निशानाम्
स०	निशि, निशायाम्	,, ,,	निट्सु, निट्त्सु, निशासु
सं०	हे निशे !	हे निशे !	हे निशाः !

गोपा, विश्वपा और निधिपा आदि आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द पुँलिङ्ग "विश्वपा" के ही सदृश हैं ।

इकारान्त "श्रुति" शब्द

प्रथमा	श्रुतिः	श्रुती	श्रुतयः
द्वितीया	श्रुतिम्	श्रुती	श्रुतीः
तृतीया	श्रुत्या	श्रुतिभ्याम्	श्रुतिभिः
चतुर्थी	श्रुत्यै, श्रुतये	,,	श्रुतिभ्यः
पञ्चमी	श्रुत्याः, श्रुतेः	,,	,,
षष्ठी	श्रुत्याः श्रुतेः	श्रुत्योः	श्रुतीनाम्
सप्तमी	श्रुत्याम्, श्रुतौ	,,	श्रुतिषु
सम्बोधन	हे श्रुते !	हे श्रुती !	हे श्रुतयः

श्रुति के ही समान प्रायः अन्य सब ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं ।

ईकारान्त "नदी" शब्द

प्र०	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वि०	नदीम्	नद्यौ	नदीः

तृ०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
च०	नद्यै	,,	नदीभ्यः
प०	नद्याः	,,	,,
ष०	,,	नद्योः	नदीनाम्
स०	नद्याम्	,,	नदीषु
सं०	हे नदि !	हे नद्यौ !	हे नद्यः !

नदी के समान प्रायः अन्य ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं। लक्ष्मी, तरी, तन्त्री आदि में इतना भेद है कि इन के प्रथमा के एकवचन में विसर्ग का लोप नहीं होता—लक्ष्मीः। तरीः। तन्त्रीः। शेष सब रूप नदी के समान। "स्त्री" शब्द की द्वितीया विभक्ति के एकवचन और बहुवचन में दो दो रूप होते हैं—स्त्रियम्, स्त्रीम्। स्त्रियः, स्त्रीः। शेष सब नदीवत्। 'श्री' शब्द के द्वितीया के एकवचन में 'श्रियम्' बहुवचन में "श्रियः" चतुर्थी के एकवचन में 'श्रियै' 'श्रिये' पञ्चमी और षष्ठी के एक वचन में "श्रियाः" "श्रियः" षष्ठी के बहुवचन में 'श्रीणाम्' 'श्रियाम्' और सप्तमी के एकवचन में 'श्रियि' 'श्रियाम्' ये दो दो रूप होते हैं। शेष सब लक्ष्मीवत्।

उकारान्त "धेनु" शब्द

प्र०	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वि०	धेनुम्	धेनू	धेनूः
तृ०	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
च०	धेन्वै, धेनवे	,,	धेनुभ्यः
पं०	धेन्वाः, धेनोः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
ष०	,, ,,	धेन्वोः	धेनूनाम्
स०	धेन्वाम्, धेनौ	,,	धेनुषु
सं०	हे धेनो !	हे धेनू !	हे धेनवः !

इसीके समान उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं।

दीर्घ ऊकारान्त "चमू" शब्द

प्रथमा	चमूः	चम्वौ	चम्वः
द्वितीया	चमूम्	चम्वौ	चमूः
तृतीया	चम्वा	चमूभ्याम्	चमूभिः
चतुर्थी	चम्वै	चमूभ्याम्	चमूभ्यः
पञ्चमी	चम्वाः	चमूभ्याम्	चमूभ्यः
षष्ठी	चम्वाः	चम्वोः	चमूनाम्
सप्तमी	चम्वाम्	चम्वोः	चमूषु
सम्बोधन	हे चमू !	हे चम्वौ !	हे चम्वः !

"चमू" के ही समान वधू, सरयू आदि ऊकारान्त शब्दों के रूप भी होते हैं।

"स्वयम्भू" "पुनर्भू" आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग में भी पुँलिङ्ग के ही समान होते हैं।

ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग "स्वसृ" शब्द पुँलिङ्ग 'धातृ' शब्द के समान है। केवल द्वितीया के बहुवचन में "स्वसृः" होता है। "मातृ" शब्द 'पितृ' के तुल्य है केवल द्वितीया के बहुवचन में "मातृः।" होता है। मातृ के ही सदृश दुहितृ, यातृ और ननान्दृ शब्द भी हैं।

ओकारान्त "द्यो' शब्द "गो' के तुल्य है। 'रै' शब्द यहां भी पुँलिङ्ग के समान है और 'नौ" शब्द 'ग्लौ' के तुल्य है।

अजन्त नपुंसकलिङ्ग

नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप प्रायः पुँलिङ्ग के सदृश होते हैं, केवल प्रथमा और द्वितीया में भेद होता है।

अकारान्त "फल" शब्द

१—फलम् । फले । फलानि । २—फलम् । फले फलानि ।

शेष सब कारकों के सब वचनों में पुंलिङ्ग देव शब्द के समान रूप होते हैं। इसी के सदृश सब अकारान्त नपुंसकलिङ्गों के रूप होते हैं।

हृदय और उदक शब्द भी अकारान्त हैं। इनके रूप एक पक्ष में तो 'फल' शब्द के सदृश ही होते हैं, दूसरे पक्ष में जहां इनको 'शस्' आदि विभक्तियों के परे 'हृत्' और 'उदन्' आदेश होते हैं, वहां इनके रूप भिन्न होजाते हैं। दोनों प्रकार के रूप नीचे दिये जाते हैं।

अकारान्त "हृदय" शब्द

प्रथमा	हृदयम्	हृदये	हृदयानि
द्वितीया	हृदयम्	हृदये	हृन्दि
तृतीया	हृदा	हृद्भ्याम्	हृद्भिः
चतुर्थी	हृदे	हृद्भ्याम्	हृद्भ्यः
पञ्चमी	हृदः	हृद्भ्याम्	हृद्भ्यः
षष्ठी	हृदः	हृदोः	हृदाम्
सप्तमी	हृदि	हृदोः	हृत्सु
सम्बोधन	हे हृदय !	हे हृदये !	हे हृदयानि

अकारान्त "उदक" शब्द

प्रथमा	उदकम्	उदके	उदकानि
द्वितीया	उदकम्	उदके	उदानि
तृतीया	उद्ना,	उदभ्याम्,	उदभिः,
चतुर्थी	उद्ने,	उदभ्याम्,	उदभ्यः,
पञ्चमी	उद्नः,	उदभ्याम्,	उदभ्यः,

षष्ठी	उद्नः	उद्नोः	उद्नाम्
सप्तमी	उद्नि, उदनि,	,,	उत्सु,
सम्बोधन	हे उदक!	हे उदके!	हे उदकानि।

नपुंसकलिङ्ग में आकारान्त शब्द भी ह्रस्व होकर अकारान्त के ही समान हो जाते हैं। यथा–मधुपा शब्द। मधुपम्। मधुपे। मधुपानि।

इकारान्त "वारि" शब्द

प्र०	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वि०	वारि	वारिणी	वारीणि
तृ०	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
च०	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पं०	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
ष०	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
स०	वारिणि	वारिणोः	वारिषु
सं०	हे वारि, हे वारे!	हे वारिणी!	हे वारीणि!

प्रायः इकारान्त नपुंसकलिंग वारि शब्द के समान होते हैं। परन्तु अक्षि, दधि, सक्थि और अस्थि शब्दों में कुछ भेद है–तृ० १ अस्थ्ना। च० १ अस्थ्ने। पं० १ अस्थ्नः। ष० १ अस्थ्नः। ष० २ अस्थ्नोः। ष० ब० अस्थ्नाम्। स० १ अस्थ्नि, अस्थनि। स० २ अस्थ्नोः। शेष सब रूप वारि शब्द के तुल्य हैं। दधि, सक्थि औरअक्षि शब्दों में भी अस्थि के ही समान परिवर्तन होता है। सुधी और प्रधी शब्द नपुँसक लिङ्ग में ह्रस्वान्त होकर तृतीया विभक्ति से आगे एक पक्ष में तो वारि शब्द के समान होते हैं और दूसरे पक्ष में पुँलिङ्ग सुधी और प्रधी शब्द के समान। यथा—सुधिना। सुधिया। प्रधिना। प्रध्या। इत्यादि।

उकारान्त "मधु" शब्द

प्र०	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वि०	मधु	मधुनी	मधूनि
तृ०	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
च०	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
पं०	मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
ष०	,,	मधुनोः	मधूनाम्
स०	मधुनि	मधुनोः	मधुषु
सं०	हे मधु ! हे मधो ! इत्यादि ।		

इसी के समान समस्त उकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं। दीर्घ ऊकारान्त शब्द भी ह्रस्व होकर ह्रस्व उकारान्त शब्दों के समान हो जाते हैं। यथा-"सुलू" शब्द=सुलु। सुलूनी। सुलूनि। इत्यादि।

ऋकारान्त "धातृ" शब्द ।

१-धातृ। धातृणी। धातृणि २—धातृ। धातृणी। धातृणि।

शेष विभक्तियों में एक पक्ष में वारि शब्द के समान और दूसरे पक्ष में पुँल्लिङ्ग धातृ शब्द के समान रूप होंगे। यथा—धातृणा। धात्रा। इत्यादि। इसी के समान अन्य ऋकारान्त शब्दों के भी रूप होंगे।

एकारान्त और ऐकारान्त नपुंसक शब्द ह्रस्व होकर इकारान्त के समान और ओकारान्त और औकारान्त शब्द ह्रस्व होकर उकारान्त के समान हो जाते हैं।

हलन्तपुंल्लिङ्ग

हकारान्त "मधुलिह्" शब्द

प्र०	मधुलिट्, मधुलिड्	मधुलिहौ	मधुलिहः
द्वि०	मधुलिहम्	मधुलिहौ	मधुलिहः
तृ०	मधुलिहा	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भिः
च०	मधुलिहे	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
पं०	मधुलिहः	,,	,,
ष०	,,	मधुलिहोः	मधुलिहाम्
स०	मधुलिहि	,,	मधुलिट्सु
सं०	हे मधुलिट् ! हे मधुलिड् ! इत्यादि ।		

इसी के समान तुरासाह्, गोदुह, मित्रदुह् और तत्त्वभुह् आदि शब्दों के रूप होते हैं । 'अनडुह्' और 'विश्ववाह्' शब्दों में कुछ भेद है । यथा—

प्र०	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
द्वि०	अनड्वाहम्	अनड्वाहौ	अनडुहः
तृ०	अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
च०	अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
पं०	अनडुहः	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
ष०	अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
स०	अनडुहि	अनडुहोः	अनडुत्सु
सं०	हे अनड्वन् !	हे अनड्वाहौ !	हे अनड्वाहः !

प्र०	विश्ववाट्, ड्	विश्ववाहौ	विश्ववाहः
द्वि०	विश्ववाहम्	विश्ववाहौ	विश्वौहः
तृ०	विश्वौहा	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भिः
च०	विश्वौहे	,,	विश्ववाड्भ्यः
पं०	विश्वौहः	,,	विश्ववाड्भ्यः
ष०	,,	विश्वौहोः	विश्वौहाम्
स०	विश्वौहि	,,	विश्ववाट्सु
सं०	हे विश्ववाट्!	इत्यादि।	

विश्ववाह के ही समान भारवाह् आदि शब्दों के रूप भी होते हैं।

वकारान्त "सुदिव्" शब्द

प्र०	सुद्यौः	सुदिवौ	सुदिवः
द्वि०	सुदिवम्	,,	,,
तृ०	सुदिवा	सुद्युभ्याम्	सुद्युभिः
च०	सुदिवे	,,	सुद्युभ्यः
पं०	सुदिवः	सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः
ष०	,,	सुदिवोः	सुदिवाम्
स०	सुदिवि	,,	सुद्युषु
सं०	हे सुद्यौः! इत्यादि।		

नकारान्त "राजन्" शब्द

प्र०	राजा	राजानौ	राजानः
द्वि०	राजानम्	,,	राज्ञः
तृ०	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
च०	राज्ञे	,,	राजभ्यः
पं०	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः

ष०	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
स०	राज्ञि, राजनि	,,	राजसु
सं०	हे राजन्! इत्यादि।		

'यज्वन्' शब्द में इतना भेद है कि उसके द्वितीया के बहुवचन से लेकर सप्तमी के बहुवचन तक हलादि विभक्तियों को छोड़ कर उपधा के अकार का लोप नहीं होता। यथा—यज्वनः। यज्वना। यज्वने। यज्वनः २ यज्वनोः २। यज्वनाम्। यज्वनि। पूषन्, अर्य्यमन् और वृत्रहन् शब्द राजन् शब्द के समान हैं परन्तु ब्रह्मन् और आत्मन् शब्द 'यज्वन्' शब्द के सदृश हैं। अर्वन् शब्द में कुछ विशेष है।

प्र०	अर्वा	अर्वन्तौ	अर्वन्तः
द्वि०	अर्वन्तम्	,,	अर्वतः
तृ०	अर्वता	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भिः
च०	अर्वते	,,	अर्वद्भ्यः
पं०	अर्वतः	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भ्यः
ष०	,,	अर्वतोः	अर्वताम्
स०	अर्वति	,,	अर्वत्सु
सं०	हे अर्वन्! इत्यादि।		

'मघवन्' शब्द एक पक्ष में तो 'राजन्' शब्द के तुल्य है। मघवा। मघवानौ। मघवानः। २ मघवानम्। मघवानौ। मघोनः। इत्यादि। द्वितीय पक्ष में 'अर्वन्' शब्द के सदृश है। केवल प्रथमा के एक वचन में 'मघवान्' ऐसा रूप होता है।

"युवन्" शब्द

प्र०	युवा	युवानौ	युवानः
द्वि०	युवानम्	,,	यूनः

च०	यूने	युवभ्याम्	युवभ्यः
पं०	यूनः	युवभ्याम्	युवभ्यः
ष०	,,	यूनोः	यूनाम्
स०	यूनि	,,	युवसु
सं०	हे युवन्! इत्यादि।		

"श्वन्" शब्द

प्र०	श्वा	श्वानौ	श्वानः
द्वि०	श्वानम्	श्वानौ	शुनः
तृ०	शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
च०	शुने	,,	श्वभ्यः
पं०	शुनः	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
ष०	शुनः	शुनोः	शुनाम्
स०	शुनि	शुनोः	श्वसु
सं०	हे श्वन्!	हे श्वानौ!	हे श्वानः

"वाग्मिन्" शब्द

प्र०	वाग्मी	वाग्मिनौ	वाग्मिनः
द्वि०	वाग्मिनम्	वाग्मिनौ	वाग्मिनः
तृ०	वाग्मिना	वाग्मिभ्याम्	वाग्मिभिः
च०	वाग्मिने	वाग्मिभ्याम्	वाग्मिभ्यः
पं०	वाग्मिनः	वाग्मिभ्याम्	,,
ष०	वाग्मिनः	वाग्मिनोः	वाग्मिनाम्
स०	वाग्मिनि	वाग्मिनोः	वाग्मिषु
सं०	हे वाग्मिन्!	हे वाग्मिनौ!	हे वाग्मिनः

इसी के सदृश दण्डिन्, शार्ङ्गिन्, यशस्विन् आदि सब इन्नन्त शब्दों के रूप होंगे।

"पथिन्" शब्द

प्र०	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
द्वि०	पन्थानम्	पन्थानौ	पथः
तृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
च०	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पं०	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
ष०	,,	पथोः	पथाम्
स०	पथि	पथोः	पथिषु
सं०	हे पन्थाः ! इत्यादि ।		

'पथिन्' के तुल्य ही 'मथिन्' और 'ऋभुक्षिन्, शब्दों के भी रूप होते हैं ।

जकारान्त "सम्राज्" शब्द

प्र०	सम्राट्,ड्	सम्राजौ	सम्राजः
द्वि०	सम्राजम्	सम्राजौ	सम्राजः
तृ०	सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भिः
च०	सम्राजे	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भ्यः
प०	सम्राजः	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भ्यः
ष०	सम्राजः	सम्राजोः	सम्राजाम्
स०	सम्राजि	सम्राजोः	सम्राट्सु
सं०	हे सम्राट् ! हे सम्राड् ! इत्यादि ।		

'सम्राज्' के ही समान विभ्राज्, परिव्राज् और विश्वसृज् आदि शब्दों के रूप भी होते हैं परन्तु 'विश्वराज्' शब्द में इतना भेद है कि हलादि विभक्तियों में 'विश्व' शब्द के अकार को दीर्घ होजाता है यथा-विश्वाराट् । विश्वाराड् । विश्वाराड्भ्याम् । इत्यादि । शेष विभक्तियों में 'सम्राज्' के तुल्य है ।

दकारान्त "द्विपाद्" शब्द

प्र०	द्विपात्, द्विपाद्	द्विपादौ	द्विपादः
द्वि०	द्विपादम्	द्विपादौ	द्विपदः
तृ०	द्विपदा	द्विपाद्भ्याम्	द्विपाद्भिः
च०	द्विपदे	द्विपाद्भ्याम्	द्विपाद्भ्यः
पं०	द्विपदः	द्विपाद्भ्याम्	द्विपाद्भ्यः
ष०	द्विपदः	द्विपदोः	द्विपदाम्
स०	द्विपदि	द्विपदोः	द्विपात्सु
सं०	हे द्विपात् ! इत्यादि ।		

चकारान्त "जलमुच्" शब्द

प्र०	जलमुक्,ग्	जलमुचौ	जलमुचः
द्वि०	जलमुचम्	जलमुचौ	जलमुचः
तृ०	जलमुचा	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भिः
च०	जलमुचे	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्यः
पं०	जलमुचः	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्यः
ष०	जलमुचः	जलमुचोः	जलमुचाम्
स०	जलमुचि	जलमुचोः	जलमुक्षु
सं०	हे जलमुक् । इत्यादि ।		

चकारान्त सब शब्दों के रूप जलमुच् के ही समान होते हैं परन्तु प्राच्, प्रत्यच् और उदच् आदि शब्दों में कुछ भेद है ।

"प्राच्" शब्द

प्र०	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
द्वि०	प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राचः

तृ०	प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः
च०	प्राचे	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः
पं०	प्राचः	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः
ष०	प्राचः	प्राचोः	प्राचाम् ।
स०	प्राचि	प्राचोः	प्राक्षु
सं०	हे प्राङ् !	हे प्राञ्चौ !	हे प्राञ्चः !

'प्रत्यच्' शब्द

प्र०	प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्चः
द्वि०	प्रत्यञ्चम्	प्रत्यञ्चौ	प्रतीचः
तृ०	प्रतीचा	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भिः
च०	प्रतीचे	,,	प्रत्यग्भ्यः
पं०	प्रतीचः	,,	,,
ष०	,,	प्रतीचोः	प्रतीचाम्
स०	प्रतीचि	प्रतीचोः	प्रत्यक्षु
सं०	हे प्रत्यङ् !	हे प्रत्यञ्चौ !	हे प्रत्यञ्चः !

'प्रत्यच्' शब्द के ही समान उदच्, सम्यच् और सध्र्यच् शब्दों के रूप भी होते हैं। तिर्यच् शब्द में कुछ भेद है।

"तिर्यच्" शब्द

प्र०	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः
द्वि०	तिर्यञ्चम्	,,	तिरश्च
तृ०	तिरश्चा	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भिः
च०	तिरश्चे	,,	तिर्यग्भ्यः
पं०	तिरश्चः	,,	,,
ष०	,,	तिरश्चोः	तिरश्चाम्
स०	तिरश्चि	तिरश्चोः	तिर्यक्षु
सं०	हे तिर्यङ् !	हे तिर्यञ्चौ !	हे तिर्यञ्चः !

तकारान्त "महत्" शब्द

प्र०	महान्	महान्तौ	महान्तः
द्वि०	महान्तम्	महान्तौ	महतः
तृ०	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः
च०	महते	,,	महद्भ्यः
प०	महतः	,,	,,
ष०	महतः	महतोः	महताम्
स०	महति	महतोः	महत्सु
सं०	हे महन् इत्यादि ।		

'महत्' शब्द के ही समान 'भवत्' शब्द भी है परन्तु इसके प्रथमा के द्विवचन से लेकर द्वितीया के द्विवचन तक उपधा को दीर्घ नहीं होता । यथा—भवन्तौ । भवन्तः । भवन्तम् । भवन्तौ। शेष रूप 'महत् ' शब्द के समान हैं । गोमत् और धनवत् आदि शब्द 'भवत्' शब्द के समान हैं । शत्रन्त 'ददत्' शब्द में इतना भेद है कि इसको प्रथमा और द्वितीया विभक्ति में 'नुम्' का आगम नहीं होता । यथा–ददत् । ददतौ । ददतः । ददतम् । ददतौ शेष सब 'भवत्' के समान । 'ददत्' शब्द के ही तुल्य जक्षत्, जाग्रत्, दरिद्रत्, शासत् और चकासत् शब्दों के रूप भी होते हैं ।

पकारान्त "गुप्" शब्द

प्र०	गुप्, गुब्	गुपौ	गुपः
द्वि०	गुपम्	गुपौ	गुपः
तृ०	गुपा	गुब्भ्याम्	गुब्भिः
च०	गुपे	,,	गुब्भ्यः
पं०	गुपः	,,	गुब्भ्यः
ष०	गुपः	गुपोः	गुपाम्

स०	गुपि	गुपोः	गुप्सु
प्र०	हे गुप् इत्यादि ।		

इसी के समान 'तृप्' 'दृप्' आदि पकारान्त शब्दों के रूप होते हैं।

शकारान्त "तादृश्" शब्द

प्र०	तादृक्, ग्	तादृशौ	तादृशः
द्वि०	तादृशम्	तादृशौ	तादृशः
तृ०	तदृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः
च०	तादृशे	,,	तादृग्भ्यः
पं०	तादृशः	,,	,,
ष०	तादृशः	तादृशोः	तादृशाम्
स०	तादृशि	तादृशोः	तादृक्षु
सं०	हे तादृक् ! इत्यादि ।		

'तादृश्' के ही समान यादृश्, ईदृश्, कीदृश् और स्पृश् शब्दों के भी रूप होते हैं। 'विश्' शब्द में इतना भेद है कि उसको हलादि विभक्तियों में ट् और ड् होते हैं । यथा—विट्, विड् । विड्भ्याम् । विड्भिः । इत्यादि 'नश्' शब्द एक पक्ष में तो 'तादृश्' के ही समान है, द्वितीय पक्ष में 'विश्' के समान। यथा—नक्, नग्, नट्, नड् । नग्भ्याम्, नड्भ्याम् । इत्यादि। 'दधृष्' शब्द षकारान्त है पर रूप 'तादृश्' के ही तुल्य होते हैं। 'रत्नमुष्' शब्द भी षकारान्त है, पर रूप 'विश्' के समान होते हैं।

षकारान्त 'चिकीर्ष्' शब्द

प्र०	चिकीः	चिकीर्षौ	चिकीर्षः
द्वि०	चिकीर्षम्	शिकीर्षौ	चिकीर्षः
तृ०	चिकीर्षा	चिकीर्भ्याम्	चिकीर्भिः
च०	चिकीर्षे	चिकीर्भ्याम्	चिकीर्भ्यः

पं०	चिकीर्षः	चिकीर्भ्याम्	चिकीर्भ्यः
ष०	,,	चिकीर्षोः	चिकीर्षाम्
सं०	चिकीर्षि	चिकीर्षोः	चिकीर्षु

हे चिकीः ! इत्यादि।

'पिपठिष्' शब्द भी 'चिकीर्ष्' के समान है। केवल सप्तमी के बहुवचन में 'पिपिठीष्षु' होता है।

सकारान्त 'उशनस्' शब्द

प्र०	उशना	उशनसौ	उशनसः
द्वि०	उशनसम्	उशनसौ	उशनसः
तृ०	उशनसा	उशनोभ्याम्	उशनोभिः
च०	उशनसे	उशनोभ्याम्	उशनोभ्यः
पं०	उशनसः	उशनोभ्याम्	उशनोभ्यः
ष०	उशनसः	उशनसोः	उशनसाम्
स०	उशनसि	उशनसोः	उशनस्सु
सं०	हे उशनः ! हे उशन ! हे उशनन् ! इत्यादि		

इसी के समान 'अनेहस्' और पुरुदंशस् आदि सकारान्त शब्दों के रूप भी होते हैं। केवल सम्बोधन में हे अनेहः ! हे पुरुदंशः ! एक २ ही रूप होता है। "वेधस्" शब्द भी "उशनस्" के हो तुल्य है, केवल प्रथमा के एक वचन में "वेधाः" यह विसर्गान्त रूप होता है। चन्द्रमस्, वृद्धश्रवस्, जातवेदस्, विडौजस्, सुमनस्, सुप्रजस् और सुमेधस् आदि शब्द भी 'वेधस्' के ही समान हैं। विद्वस् और पुंस् शब्दों में कुछ भेद है सो दिखलाते हैं।

'विद्वस्' शब्द

प्र०	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
द्वि०	विद्वांसम्	,,	विदुषः

तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
च०	विदुषे	"	विद्वद्भ्यः
पं०	विदुषः	"	"
ष०	"	विदुषोः	विदुषाम्
स०	विदुषि	"	विद्वत्सु
सं०	हे विद्वन् ! इत्यादि ।		

'पुंस्' शब्द

प्र०	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः
द्वि०	पुमांसम्	"	पुंसः
तृ०	पुंसा	पुम्भ्याम्	पुम्भिः
च०	पुंसे	"	पुम्भ्यः
पं०	पुंसः	"	"
ष०	"	पुंसोः	पुंसाम्
स०	पुंसि	"	पुंसु
सं०	हे पुमन् ! इत्यादि ।		

विद्वस् के ही समान "शुश्रुवस्" और "अग्निवस्" आदि शब्दों के रूप होते हैं ।

हलन्तस्त्रीलिङ्ग

हकारान्त "उपानह्" शब्द

प्र०	उपानत्, द्	उपानहौ	उपानहः
द्वि०	उपानहम्	"	"
तृ०	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
च०	उपानहे	"	उपानद्भ्यः

पं०	उपानहः	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
ष०	"	उपानहोः	उपानहाम्
स०	उपानहि	उपानहोः	उपानत्सु
सं०	हे उपानत् ! इत्यादि ।		

"उष्णिह्" शब्द भी "उपानह्" के समान है केवल हलादि विभक्तियों में कुछ भेद है । यथा—उष्णिक्, उष्णिग् । उष्णिग्भ्याम् उष्णिग्भिः । उष्णिक्षु । इत्यादि । वकारान्त 'दिव्' शब्द पुँलिङ्ग 'सुदिव्' शब्द के समान है ।

रेफान्त " गिर् " शब्द

प्र०	गीः	गिरौ	गिरः
द्वि०	गिरम्	गिरौ	गिरः
तृ०	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
च०	गिरे	"	गीर्भ्यः
पं०	गिरः	"	"
ष०	गिरः	गिरोः	गिराम्
स०	गिरि	"	गीर्षु
सं०	हे गीः !	हे गिरौ !	हे गिरः !

इसी के समान पुर् और धुर् शब्दों के भी रूप होते हैं । यथा—पूः पुरौ पुरः । धूः धुरौ धुरः । इत्यादि ।

जकारान्त "स्रज्" शब्द के रूप पुँलिङ्ग "ऋत्विज्" शब्द के समान होते हैं । यथा—स्रक्, स्रग् । स्रजौ । स्रग्भ्याम् । स्रक्षु । इत्यादि ।

चकारान्त "वाच्" शब्द के रूप भी "स्रज्" शब्द के समान ही होते हैं । यथा—वाक् । वाग्, वाचौ । वाचः । वाचा । वाग्भ्याम् । इत्यादि । इसी के तुल्य ऋच् और त्वच् शब्द भी हैं । तकारान्त 'सरित्' शब्द के रूप पुँलिङ्ग 'ददत्' शब्द के समान

होते हैं। यथा—सरित्। सरितौ। सरितः इत्यादि। इसी के समान सब तकारान्त और धकारान्त शब्दों के रूप स्त्रीलिङ्ग में होते हैं।

नकारान्त सीमन्, पामन् आदि शब्दों के रूप पुंलिङ्ग 'राजन्' शब्द के सदृश होते हैं।

शकारान्त दृश् और दिश् शब्दों के रूप पुंलिङ्ग 'तादृश्' शब्द के सदृश होते हैं। यथा—दृक्, दृग्। दिक्, दिग्। दृशौ। दिशौ। दृग्भ्याम्। दिग्भ्याम् इत्यादि।

षकारान्त "त्विष्" शब्द के रूप पुंलिङ्ग 'रत्नमुष्' शब्द के समान होते हैं। यथा-त्विट्, त्विड्। त्विषौ। त्विषः। त्विषा। त्विड्भ्याम्। इत्यादि।

सजुष् और आशिष शब्द पुंलिङ्ग "पिपठिष्" शब्द के समान हैं। यथा-सजूः। सजुषौ। सजुषः। सजुषा। सजूर्भ्याम्। इत्यादि आशीः। आशिषौ। आशिषा। आशीर्भ्याम् इत्यादि।

पकारान्त "अप्" शब्द केवल बहुवचनान्त है। यथा-१ आपः, २ अपः, ३ अद्भिः, ४ अद्भ्यः, ५ अद्भ्यः ६ अपाम् ७,अप्सु।

हलन्तनपुंसकलिङ्ग

हलन्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप भी प्रायः पुंलिङ्ग के समान ही होते हैं। केवल प्रथमा और द्वितीया में भेद होता है।

हकारान्त 'स्वनडुह्' शब्द

प्र०	स्वनडुत्, स्वनडुद्	स्वनडुही	स्वनड्वांहि
द्वि०	स्वनडुत्, स्वनडुद्	स्वनडुही	स्वनड्वांहि

शेष सब रूप पुंलिङ्ग "अनडुह् शब्द के समान हैं।

रेफान्त 'वार्' शब्द

प्र०	वाः	वारी	वारि
द्वि०	वाः	वारी	वारि

शेष सब रूप स्त्रीलिङ्ग 'गिर्' शब्द के समान हैं यथा—वारा। वार्भ्याम्। इत्यादि।

नकारान्त 'नामन्' शब्द

प्र०	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
द्वि०	नाम	नाम्नी नामनी	नामानि
तृ०	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः
च०	नाम्ने	नामभ्याम्	नामभ्यः
पं०	नाम्नः	नामभ्याम्	नामभ्यः
ष०	नाम्नः	नाम्नोः	नाम्नाम्
स०	नाम्नि	नाम्नोः	नामसु
सं०	हेनाम ! हेनामन्। इत्यादि।		

इसी के समान सामन्, दामन्, और व्योमन् आदि शब्दों के रूप होते हैं।

नकारान्त 'अहन्' शब्द

प्र०	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
द्वि०	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
तृ०	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
च०	अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
पं०	अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
ष०	अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
स०	अह्नि, अहनि	"	अहःसु
सं०	हे अहः ! इत्यादि।		

ब्रह्मन् शब्द-ब्रह्म। ब्रह्मणी। ब्रह्माणि। पुनरपि। ब्रह्म। ब्रह्मणी। ब्रह्माणि। आगे पुँल्लिङ्ग 'ब्रह्मन्' शब्द के तुल्य है।

'वाग्मिन्' शब्द

वाग्मि। वाग्मिनी। वाग्मीनि। वाग्मि। वाग्मिनी। वाग्मीनि।

आगे पुँल्लिङ्ग के तुल्य है इसी के समान स्रग्विन् और दण्डिन् आदि शब्दों के रूप भी होते हैं। 'सुपथिन्' शब्द में कुछ विशेष है यथा-सुपथि। सुपथी। सुपन्थानि। पुनः सुपथि। सुपथी। सुपन्थानि। शेष पुँल्लिङ्ग 'पथिन्' शब्द के समान।

तकारान्त 'शकृत्' शब्द-शकृत्। शकृती। शकृन्ति पुनरपि-शकृत्। शकृती। शकृन्ति। आगे पुँल्लिङ्ग 'महत्' शब्द के तुल्य है।

'ददत्' शब्द के प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में दो २ रूप होते हैं। यथा-ददति। ददन्ति। शेष सब 'शकृत्' के समान हैं। 'ददत्' के ही तुल्य शासत्, चकासत्, जाग्रत्, जक्षत् और दरिद्रत् के रूप भी जानो।

'तुदत्' शब्द के प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में दो दो रूप होते हैं। यथा-तुदती। तुदन्ती। शेष सब 'शकृत्' के तुल्य। 'पचत्' शब्द का उक्त विभक्तियों में एक एक रूप ही होता है। यथा-पचन्ती। शेष 'शकृत्' के समान। 'पचत्' के समान ही 'दीव्यत्' को भी जानो। 'यकृत्' में कुछ विशेष है।

प्र०	यकृत्	यकृती	यकृन्ति
द्वि०	यकृत्	यकृती	यकानि, यकृन्ति
तृ०	यक्ना, यकृता	यकभ्याम्, यकृद्भ्याम्	यकभिः, यकृद्भिः
च०	यक्ने, यकृते	,, ,,	यकभ्यः, यकृद्भ्यः
पं०	यक्नः, यकृतः	,, ,,	,, ,,
ष०	यक्नः, ,,	यक्नोः, यकृतोः	यक्नाम्, यकृताम्
स०	यक्नि, यक्नि, यकृति	यक्नोः, यकृतोः	यकसु, यकृत्सु

षकारान्त 'धनुष्' शब्द

प्र०	धनुः	धनुषी	धनूंषि
द्वि०	धनुः	धनुषी	धनूंषि
तृ०	धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
च०	धनुषे	,,	धनुर्भ्यः
पं०	धनुषः	,,	,,
ष०	,,	धनुषोः	धनुषाम्
स०	धनुषि	धनुषोः	धनुष्षु
सं०	हे धनुः ! इत्यादि ।		

'धनुष्' के ही समान यजुष्, वपुष्, चक्षुष् और हविष् आदि षकारान्त शब्दों के रूप होते हैं ।

सकारान्त 'पयस्' शब्द

प्र०	पयः	पयसी	पयांसि
द्वि०	पयः	पयसी	पयांसि
तृ०	पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः
च०	पयसे	,,	पयोभ्यः
पं०	पयसः	,,	पयोभ्यः
ष०	पयसः	पयसोः	पयसाम्
स०	पयसि	पयसोः	पयस्सु
सं०	हे पयः ! इत्यादि ।		

'पयस्' के ही सदृश वासस्, ओजस्, मनस्, सरस्, यशस् और तपस् आदि सकारान्त शब्दों के रूप भी होते हैं ।

सर्वनाम

कुल सर्वनाम ३५ हैं । उनके नाम ये हैं—

सर्व, विश्व, उभ, उभय, कतर, कतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम, पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व, अन्तर, त्यद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत् और किम् ।

अकारान्त सर्वनाम

पुलिंग 'सर्व' शब्द

प्र०	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वि०	सर्वम्	,,	सर्वान्
तृ०	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
च०	सर्वस्मै	,,	सर्वेभ्यः
पं०	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
ष०	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
स०	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
सं०	हे सर्व !	सर्वौ !	सर्वे !

स्त्रीलिङ्ग 'सर्वा' शब्द

प्र०	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वि०	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृ०	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
च०	सर्वस्यै	,,	सर्वाभ्यः

पं०	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
ष०	,,	सर्वयोः	सर्वासाम्
स०	सर्वस्याम्	,,	सर्वासु
सं०	हे सर्वे !	सर्वे !	सर्वाः,

स्त्रीलिङ्ग में सब अकारान्त सर्वनाम आकारान्त हो जाते हैं और उनके रूप 'सर्वा' के ही तुल्य होते हैं।

नपुंसक लिङ्ग 'सर्वम्' शब्द

प्र०	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वि०	,,	सर्वे	सर्वाणि
सं०	हे सर्वे !	सर्वे !	सर्वाणि

शेष विभक्तियों के रूप पुँल्लिङ्ग 'सर्व' शब्द के तुल्य। 'सर्व' के ही समान विश्व, उभय, कतर, कतम्, अन्य, अन्यतर, इतर और एक शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में होते हैं। पर इतर, अन्य, अन्यतर, कतर और कतम इन पाँच शब्दों के रूप केवल नपुंसक लिङ्ग की प्रथमा और द्वितीया के एकवचन में इतरत् अन्यत्, अन्यतरत्, कतरत् और कतमत् होते हैं। शेष सब सर्व के तुल्य।

'पूर्व' शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में 'सर्व' शब्द के सदृश होते हैं पर पुँल्लिङ्ग की जस्, ङसि और ङि विभक्तियों में सर्व-नाम संज्ञा विकल्प से होती है, इसलिए दो दो रूप होते हैं एक 'सर्व' शब्दवत् दूसरे 'देव' शब्दवत्। यथा—पूर्वे, पूर्वाः। पूर्वस्मात्, पूर्वात्। पूर्वस्मिन्, पूर्वे ।

पर, अपर, अवर, अधर, उत्तर, दक्षिण, स्व और अन्तर शब्दों के रूप 'पूर्व' शब्द के तुल्य होते हैं।

प्रथम, चरम, अल्प, अर्द्ध, नेम, कतिपय, द्वितय और त्रितय शब्दों के रूप पुँल्लिङ्ग में 'देव' शब्दवत् होते हैं। केवल 'जस्' विभक्ति में इनकी सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है। प्रथमे,

प्रथमाः इत्यादि। स्त्रीलिङ्ग में इनके रूप 'विद्या' के समान और नपुंसक लिंग में 'फल' शब्दवत् होते हैं।

पुँल्लिङ्ग द्वितीय और तृतीय शब्दों की ङे, ङसि और ङि विभक्तियों में सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है। अतएव इनमें इनके रूप एक बार 'सर्व' शब्द के तुल्य दूसरी बार देव शब्द के सदृश होते हैं। यथा—द्वितीयस्मै, द्वितीयाय। द्वितीयस्मात्, द्वितीयात्। द्वितीयस्मिन्, द्वितीये। नपुंसकलिंग में भी यही रूप होते हैं। स्त्रीलिंग में एक बार 'सर्वा' के सदृश और दूसरी बार 'विद्या' की भाँति। यथा—द्वितीयस्यै, द्वितीयायै। द्वितीयस्याः, द्वितीयायाः। द्वितीयस्याम्, द्वितीयायाम्।

पुँल्लिंग 'तद्' शब्द

प्र०	सः	तौ	ते
द्वि०	तम्	तौ	तान्
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तैः
च०	तस्मै	,,	तेभ्यः
प०	तस्मात्	,,	तेभ्यः
ष०	तस्य	तयोः	तेषाम्
स०	तस्मिन्	तयोः	तेषु

तद् से लेकर किम् पर्यन्त सर्वनामों का संबोधन नहीं होता।

स्त्रीलिंग 'तद्' शब्द

प्र०	सा	ते	ताः
द्वि०	ताम्	ते	ताः
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभिः
च०	तस्यै	,,	ताभ्यः
पं०	तस्याः	,,	ताभ्यः

ष०	तस्याः	तयोः	तासाम्
स०	तस्याम्	तयोः	तासु

नपुंसकलिङ्ग में—प्र०-तत्, ते, तानि । द्वि०—तत्, ते तानि । शेष पुल्लिङ्गवत् । 'त्यद्' शब्द के रूप भी इसी के समान होते हैं ।

पुँल्लिङ्ग 'एतद्' शब्द

प्र०	एषः	एतौ	एते
द्वि०	एतम्, एनम् १	एतौ, एनौ १	एतान्, एनान् १
तृ०	एतेन, एनेन १	एताभ्याम्	एतैः
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पं०	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
ष०	एतस्य	एतयोः, एनयोः १	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयोः, एनयोः १	एतेषु

स्त्रीलिङ्ग 'एतद्' शब्द

प्र०	एषा	एते	एताः
द्वि०	एताम्, एनाम् १	एते, एने १	एताः, एनाः १
तृ०	एतया, एनया १	एताभ्याम्	एताभिः
च०	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
प०	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
ष०	एतस्याः	एतयोः, एनयोः १	एतासाम्
	एतस्याम्	एनयोः, एतयोः १	एतासु

नपुंसकलिङ्ग में प्र०—एतत्, एते, एतानि द्वि०—एतत्, एनत् १ । एते एने १, एतानि, एनानि १ । शेष पुल्लिङ्गवत् ।

पुँल्लिंग 'इदम्' शब्द

प्र०	अयम्	इमौ	इमे
द्वि०	इमम्, एनम् १	इमौ एनौ १	इमान्, एनान् १
तृ०	अनेन, एनेन १	आभ्याम्	एभिः
च०	अस्मै	"	एभ्यः
पं०	अस्मात्	"	एभ्यः
ष०	अस्य	अनयो, एनयोः १	एषाम्
स०	अस्मिन्	अनयोः, एनयोः १	एषु

स्त्रीलिंग 'इदम्' शब्द

प्र०	इयम्	इमे	इमाः
द्वि०	इमाम्, एनाम् १	इमे, एने १	इमाः, एनाः १
तृ०	अनया, एनया १	आभ्याम्	आभिः
च०	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
पं०	अस्याः	"	"
ष०	अस्याः	अनयोः, एनयोः १	आसाम्
स०	अस्याम्	अनयोः, एनयोः १	आसु

---

१ किसी विशेष्य का एकबार वर्णन करके पुनः उसका निर्देश करना 'अन्वादेश' कहलाता है । इस अन्वादेश में वर्त्तमान 'एतद्' और 'इदम्' शब्द के द्वितीया के तीनों वचन, तृतीया का एकवचन और षष्ठी तथा सप्तमी के द्विवचन में 'एन' आदेश हो जाता है यथा—अनेन वा एतेन छात्रेण व्याकरणमधीतम् अथो एनं छन्दोऽध्यापय = इस छात्र ने व्याकरण पढ़ लिया, अब इसको छन्द पढ़ाओ । अनयोः वा एतयोः छात्रयोः श्रेष्ठं कुलम् अथो एनयोः शोभनं शीलञ्च = इन दोनों छात्रों का कुल उत्तम है और इनका स्वभाव भी अच्छा है । पूर्व वाक्य में जो विशेष्य है उसी का निर्देश उत्तर वाक्य में भी किया गया है ।

नपुंसकलिङ्ग में—प्र०-इदम्, इमे, इमानि । द्वि०—इदम्, एनत् १ इमे, एने २, इमानि, एनानि १ शेष पुंलिङ्गवत् ।

'यद्' सर्वनाम के रूप तीनों लिंगों में 'तद्' शब्द के समान होते हैं ।

'किम्' सर्वनाम को नपुंसकलिङ्ग की 'सु' और 'अम्' विभक्ति को छोड़कर सब विभक्तियों में 'क' आदेश होकर यद् के ही समान रूप होते हैं ।

यथा—पुँलिङ्ग में कः, कौ, के । स्त्रीलिङ्ग में का, के, काः । नपुंसकलिङ्ग में किम्, के, कानि । इत्यादि ।

पुँल्लिङ्ग 'अदस्' शब्द

प्र०	असौ	अमू	अमी
द्वि०	अमुम्	अमू	अमून्
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
च०	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पं०	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
ष०	अनुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

स्त्रील्लिंग 'अदस्' शब्द

प्र०	असौ	अमू	अमूः
द्वि०	अमुम्	अमू	अमूः
तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
च०	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
पं०	अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
ष०	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
स०	अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु

न० लि० में प्र०—अदः, अमू, अमूनि। द्वि०-अदः, अमू, अमूनि। शेष पुंलिङ्गवत्।

'युष्मद्' शब्द

प्र०	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वि०	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, वः
तृ०	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
च०	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वाम्	युष्मभ्यम्, वः
पं०	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
ष०	तव, ते	युवयोः, वाम्	युष्माकम्, वः
स०	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

'अस्मद्' शब्द

प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वि०	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, नः
तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
च०	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, नः
पं०	मत्	आवाभ्याम्	अस्मद्
ष०	मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम्, नः
स०	मयि	आवयोः	अस्मासु

युष्मद् और अस्मद् शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में एक से होते हैं।

'युष्मद्' शब्द के त्वा, ते, वाम्, वः और 'अस्मद्' शब्द के मा, मे, नौ और नः आदेश कभी किसी वाक्य के आदि में नहीं आते और न इनके पीछे च, वा, एव आदि अव्यय आते हैं।
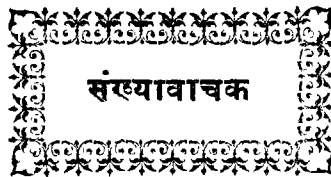
संख्यावाचक

'एक' शब्द एक वचन में आता है, परन्तु यदि उसके अनेक (कई) अभिधेय हों तो बहुवचन में भी आता है। दोनों वचनों और तीनों लिङ्गों में इसके रूप 'सर्व' शब्द के सदृश होते हैं।

'अनेक' शब्द केवल बहुवचन में आता है। इसके रूप भी सब लिंगों में 'सर्व' के समान होते हैं।

'द्वि' शब्द केवल द्विवचन में आता है। जब उसमें विभक्ति लगाते हैं तब वह अकारान्त हो जाता है।

पुँल्लिंग में—द्वौ २ द्वाभ्याम् ३ द्वयोः २। नपुंकलिङ्ग व स्त्री-लिंग में—द्वे २ शेष पुँल्लिंगवत्।

'त्रि' से 'नवदशन्' पर्यन्त सब शब्द केवल बहुवचन में आते हैं।

पुँल्लिङ्ग में—त्रयः। त्रीन्। त्रिभिः। त्रिभ्यः। त्रिभ्यः। त्रयाणाम्। त्रिषु। नपुंसक लिङ्ग में—त्रीणि। त्रीणि। शेष पुँल्लिङ्गवत्।

स्त्रीलिङ्ग में—तिस्रः। तिस्रः। तिसृभिः। तिसृभ्यः। तिसृभ्यः। तिसृणाम्। तिसृषु।

स्त्रीलिंग में 'त्रि' शब्द को 'तिसृ' और 'चतुर्' को 'चतसृ' आदेश हो जाते हैं।

'चतुर्' शब्द

पुँल्लिङ्ग में—चत्वारः। चतुरः। चतुर्भिः। चतुर्भ्यः। चतुर्भ्यः। चतुर्णाम्। चतुर्षु। नपुं० लि० में—चत्वारि। चत्वारि। शेष पुँल्लिङ्गवत्।

स्त्रीलिङ्ग में—चतस्रः। चतस्रः। चतसृभिः। चतसृभ्यः। चतसृभ्यः। चतसृणाम्। चतसृषु।

'पञ्चन्' से 'नवदशन्' तक सब शब्दों के रूप तीनों लिंगों में समान होते हैं।

नकारान्त 'पंचन्' शब्द

प्र० पञ्च। द्वि० पञ्च। तृ० पंचभिः। च० पंचभ्यः। पं० पंचभ्यः। ष० पचानाम्। स० पंचसु।

सप्तन्, नवन्, दशन् आदि शब्दों के रूप ऐसे ही होते हैं। केवल अष्टन् में कुछ भेद है।

षकारान्त 'षष्' शब्द

प्र० षट्। द्वि० षट्। तृ० षड्भिः। च० षड्भ्यः। पं० षड्भ्यः। ष० षण्णाम्। स० षट्सु।

अष्टन् शब्द

प्रथमा / द्वितीया	अष्टौ, अष्ट
तृतीया	अष्टाभिः, अष्टभिः
चतुर्थी / पंचमी	अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः
षष्ठी	अष्टानाम्, अष्टनाम्
सप्तमी	अष्टासु, अष्टसु

ऊनविंशति से आगे सब संख्यावाचक शब्द यदि विशेषण हों तो केवल एकवचन में आते हैं। यथा—विंशतिः पुत्राः। पंचविंशतिः पुत्र्यः। त्रिंशत् पुस्तकानि। पर जब विशेष्य हों तब तीनों वचनों में आते हैं यथा—एकं शतम्। द्वे शते। त्रीणि शतानि।

विंशति, षष्ठि, सप्तति, अशीति, नवति आदि शब्द स्त्री लिङ्ग हैं। इनके रूप श्रुति शब्द के सदृश होते हैं।

त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पंचाशत् आदि शब्द भी स्त्रीलिंग हैं। इनके रूप 'सरित्' शब्द के समान होते हैं।

शत, सहस्र आदि शब्द नपुंसक लिङ्ग हैं और इनके रूप 'फल' शब्द के समान हैं। कोटी शब्द स्त्रीलिंग है और उसके रूप नदी शब्दवत् जानने चाहिएँ।

'कति' शब्द केवल बहुवचनान्त है और इसके रूप तीनों लिंगों में एक से होते है। यथा-कति २। कतिभिः। कतिभ्यः २। कतीनाम्। कतिषु। इसी के समान 'यति' शब्द के भी रूप होते हैं।
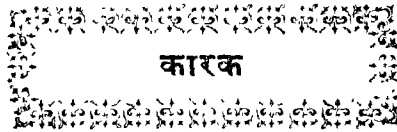
कारक

क्रिया के हेतु को कारक कहते हैं। या यों कहना चाहिये कि जिसके द्वारा क्रिया और संज्ञा का सम्बन्ध विदित होता है उसे कारक कहते हैं।

कारकों के सात भेद हैं जिनके नाम ये हैं—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, शेष* और अधिकरण।

१—कर्ता

कर्ता उसे कहते हैं जो स्वतन्त्रता से क्रिया को सम्पादन करे और जो प्रेरणा करके दूसरे से क्रिया करावे उसकी भी कर्तृ-संज्ञा है। ऐसे प्रयोजक कर्त्ता को हेतु भी कहते हैं।

---

* वैयाकरणों ने शेष को कारक नहीं माना है किन्तु ६ कारकों से जो अवशिष्ट रह जाता है उसको शेष माना है। चाहे शेष को कारक न मानो, परन्तु इसका विषय सब कारकों से बढ़ा हुआ है क्योंकि अन्य कारकों से जो कुछ शेष रहता है वह सब इसी के पेट में समाता है।

कर्तृ कारक में यदि क्रिया का फल कर्ता ही में रहे तो प्रथमा विभक्ति होती है। यथा-शिष्यः पठति। गुरुः पाठयति।

यदि क्रिया का फल कर्म में जावे तो कर्म में भी प्रथमा विभक्ति होती है। यथा—क्रियते कटः। भ्रियते भारः। ह्रियते कालः।

यदि संज्ञा का अर्थ वा लिंग वा वचन वा परिमाण मात्र ही कहना हो तो प्रथमा विभक्ति होती है। यथा—अर्थमात्र-विवेकः। स्मृतिः। ज्ञानम्। लिङ्गमात्र—तटः। तटी। तटम्। वचनमात्र-एकः। द्वौ। बहवः। परिमाण-द्रोणः। खारी। आढकम्। "अपदं न प्रयुञ्जीत" इसके अनुसार संस्कृत में वस्तु का निर्देश भी बिना विभक्ति के नहीं होता।

(सम्बोधन) किसी को चिताकर अपने अभिमुख करने में भी प्रथमा विभक्ति होती है। हे शिष्य! भो गुरो!

२—कर्म

कर्म उसे कहते हैं जो कर्ता का इष्टतम हो अर्थात् क्रिया के द्वारा कर्ता जिसको सिद्ध करना चाहे वा करे। वह यदि अनुक्त हो अर्थात् क्रियाफल से रहित हो तो उसमें द्वितीया विभक्ति होती है यथा—विद्यां पठति। धनमिच्छति। कहीं कहीं अनिष्ट को भी, जिसको कर्ता नहीं चाहता, कर्म संज्ञा होती है। यथा-चौरान् पश्यति। कण्टकानुल्लङ्घयति। इनके अतिरिक्त जहाँ पर और कोई कारक नहीं कहा गया वहाँ भी कर्म कारक होता है। यथा—माणवकं पन्थानं पृच्छति। शिष्यं धर्ममनुशास्ति। यहाँ माणवक और शिष्य शब्दों में अन्य कारक अनुक्त हैं इसलिए इन दोनों में भी कर्मकारक होगया।

काल और मार्ग के अत्यन्त संयोग में भी द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—मासमधीतोऽनुवाकः।

कोशं कुटिला नदी ।

अन्तरा और अन्तरेण शब्द के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है । त्वां मां चान्तरा अन्तरेण वा पुस्तकम् । अन्तरेण पुरुषाकारं न किञ्चिल्लभ्यते ।

उभयतः, सर्वतः, अभितः, परितः, समया, निकषा, धिक्, हा और प्रति इन शब्दों के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है । उभयतः ग्रामम् । धिक् जाल्मम् । हा दरिद्रम् । बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चिद् ।

कर्मप्रवचनीय शब्दों के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है । यथा नदीमन्ववसिता सेना । अन्वर्जुनं योद्धारः । वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् । साधुस्त्वं मातरं प्रति । इत्यादि ।

मार्गवाचक शब्दों को छोड़कर गत्यर्थक धातुओं के कर्म कारक में द्वितीया और चतुर्थी दोनों विभक्तियाँ होती हैं यथा—ग्रामं गच्छति । ग्रामाय गच्छति । ग्रामं व्रजति । ग्रामाय व्रजति । ग्रामं याति । ग्रामाय याति । मार्गवाचकों में तो द्वितीया ही होगी । यथा—मार्गं गच्छति । पन्थानं गच्छति । अध्वानं याति । इत्यादि ।

३—करण

करणकारक उसे कहते हैं जिसके द्वारा कर्ता क्रिया को सिद्ध करे । अर्थात् जो क्रियासिद्धि का साधन हो । इस कारक में सदा तृतीया विभक्ति होती है यथा—हस्तेन गृह्णाति । पादेन गच्छति । वस्त्रेणाच्छादयति ।

कर्तृकारक में भी यदि क्रिया का फल कर्ता में न जावे किन्तु कर्म में रहे तो तृतीया विभक्ति होती है । यथा-शिष्येण पठ्यते पुस्तकम् । पान्थेन गम्यते पन्थाः । आचार्येणोपदिश्यते धर्मः । इत्यादि ।

जहाँ क्रिया की समाप्ति हुई हो वहाँ काल और मार्ग के अत्यन्त संयोग में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—मासेनानुवाकोऽधीतः। योजनेनाध्यायोऽधीतः। जहां क्रिया की समाप्ति न हुई हो वहाँ द्वितीया होती है। मासमधीतो नायातः।

सह शब्द या उसके पर्यायवाचक शब्दों का योग हो तो अप्रधान में तृतीया विभक्ति होती है। पुत्रेण सहागतः पिता। शिष्येण साकं गत आचार्यः।

जिस विकृत अङ्ग से अंगी का विकार लक्षित होता हो उससे तृतीया विभक्ति होती है। यथा—अक्ष्णा काणः। शिरसा खल्वाटः। पाणिना कुण्ठः। इत्यादि।

जिस लक्षण से जो पहचाना जावे उससे भी तृतीया विभक्ति होती है। यथा—जटाभिस्तापसः। यज्ञोपवीतेन द्विजः। वेदाध्ययनेन ब्राह्मणः। युद्धेन क्षत्रियः। व्यापारेण वैश्यः। सेवया शूद्रः।

जिसके होने में जो कारण हो उसे हेतु कहते हैं। हेतुवाचक शब्दों से भी तृतीया होती है। यथा—विद्यया यशः। धर्मेण सुखम्। धनेन कुलम्।

यदि कोई गुण हेतु हो तो उससे तृतीया और पञ्चमी दोनों विभक्तियाँ होती हैं। स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर। यथा ज्ञानेन मुक्तिः, ज्ञानान्मुक्तिः। अज्ञानेन बन्धः, अज्ञानाद्बन्धः। यहाँ ज्ञान और अज्ञान मुक्ति और बन्ध के हेतु हैं। स्त्रीलिङ्ग में तो तृतीया ही होती है यथा—प्रज्ञया मुक्तः। अविद्यया बद्धः।

इनके सिवाय प्रकृति आदि शब्दों के योग में भी तृतीया विभक्ति होती है। यथा—प्रकृत्या दर्शनीयः। प्रायेण वैयाकरणः। गोत्रेण गार्ग्यः। नाम्ना यज्ञदत्तः। सुखेन वसति। दुःखेन गच्छति। समेन मार्गेण धावति। विषमेण पथा याति। इत्यादि।

४—सम्प्रदान

जिसके लिये कर्त्ता कर्म द्वारा क्रिया करे अर्थात् कर्म से जिसका उपकार या उपयोग किया जाय उसे सम्प्रदान कारक कहते हैं और इसमें सदा चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—विप्राय धनं ददाति। दीनेभ्योऽन्नं दीयते। केवल क्रिया से भी जिसका उपयोग किया जाय उसकी भी सम्प्रदान संज्ञा है। यथा-युद्धाय सन्नह्यते। अध्ययनाय यतते। कहीं कहीं पर कर्म की करण संज्ञा और सम्प्रदान की कर्म संज्ञा भी हो जाती है। यथा हविषा देवान् यजते—हविः देवेभ्यो ददातीत्यर्थः।

जो पदार्थ जिस प्रयोजन के लिये है यदि उससे वही प्रयोजन सिद्ध होता हो तो उसको तादर्थ्य कहते हैं। उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा-यूपाय दारु। कुण्डलाय हिरण्यम्। रन्धनाय स्थाली। मुक्तये ज्ञानम्। इत्यादि। क्लृपि धातु और उसके पर्यायवाचक धातुओं के प्रयोग में भी चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—मूत्राय कल्पते यवागूः। धर्माय संपद्यते सुकृतम्। अधर्माय जायते दुष्कृतम्। हित शब्द के योग में भी चतुर्थी होती है। ब्राह्मणेभ्यो हितम्। प्रजायै हितम्। उत्पात की सूचना में भी चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी। पीता वर्षाय विज्ञेया दुर्भिक्षाय सिता भवेत्।

रुच्यर्थक धातुओं के प्रयोग में प्रीयमाण (प्रसन्न होनेवाला) जो अर्थ है उसकी भी सम्प्रदान संज्ञा है। यथा—बालकाय रोचते मोदकः। ब्राह्मणाय स्वदते पायसम्।

स्पृह धातु के प्रयोग में ईप्सित (चाहा हुआ) जो अर्थ है। उसकी भी सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा-पुष्पेभ्यः स्पृहयति। क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्या और असूयार्थक धातुओं के प्रयोग में जिसके, प्रति कोप किया जावे उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा—

छात्राय क्रुध्यति। शत्रवे द्रुह्यति। सम्पन्नाय ईर्ष्यति। दुष्टाय असूयति।

यदि क्रियार्था क्रिया उपपद हो तो तुमुन् प्रत्यय के कर्मकारक में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—फलेभ्यो याति। फलान्याहर्तुं यातीत्यर्थः। यहाँ "आहर्तुम्" क्रियार्था क्रिया और "याति" सामान्य क्रिया है।

भाववचनान्त शब्दों से भी पूर्व अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—यागाय याति। यष्टुं यातीत्यर्थः। अध्ययनाय गच्छति। अध्येतुं गच्छतीत्यर्थः।

नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् और वषट् इन अव्ययों के योग में भी चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—देवेभ्यो नमः। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। वषडिन्द्राय। अलं नकुलः सर्पाय। अलं सिंहो नागाय।

प्राणिवर्जित मन धातु के कर्मकारक में यदि अनादर सूचित होता हो तो विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है। पक्ष में द्वितीया भी होती है। यथा—अहं त्वां तृणं मन्ये। अहं त्वां तृणाय मन्ये। प्राणी कर्म हो तो द्वितीया ही होगी। अहं त्वां शृगालं मन्ये। जहाँ अनादर न हो वहाँ भी द्वितीया ही होगी। यथा—अश्मानं दृषदं मन्ये मन्ये काष्ठमुलूखलम्।

५—अपादान

जो पृथक् करनेवाला कारक है उसे अपादान कहते हैं। अपादान में सदा पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—पर्वतादवतरति। वृक्षात्पर्णानि पतन्ति। यहां पर्वत और वृक्ष से कर्ता अलग होता है इस लिये इनकी अपादान संज्ञा हुई। जुगुप्सा, विराम और प्रमाद अर्थ में भी अपादान कारक होता है यथा—पापाज्जुगुप्सते। श्रमाद्विरमति। धर्मात्प्रमाद्यति।

भय और रक्षार्थक धातुओं के प्रयोग में जो भय का हेतु हो उसकी अपादान संज्ञा है। यथा—चौराद्बिभेति। व्याघ्रादुद्विजते। चौरेभ्यस्त्रायते। हिंसकाद्रक्षति।

परापूर्वक 'जि' धातु के प्रयोग में असह्य जो अर्थ है उसकी अपादान संज्ञा होती है। यथा—अध्ययनात्पराजयते। पौरुषात्पराजयते। सह्य अर्थ में कर्म संज्ञा होगी। शत्रून्पराजयते।

निवारणार्थक धातुओं के प्रयोग में ईप्सित (चाहा हुवा) जो अर्थ है उसकी भी अपादान संज्ञा होती है। यथा—क्षेत्रात् गां वारयति। पाकालयात् श्वानं निवर्त्तयति।

नियमपूर्वक विद्या ग्रहण करने में व्याख्याता की अपादान संज्ञा होती है। यथा—उपाध्यायादधीते। वक्तुः शृणोति।

जनी धातु के कर्त्ता का जो कारण है उसको भी अपादान संज्ञा है। यथा—शृङ्गाच्छरो जायते। गोमयाद्वृश्चिको जायते। भू धातु के कर्त्ता का जो प्रभव (उत्पत्तिस्थान) है उसकी भी अपादान संज्ञा है। यथा—हिमवतः गङ्गा प्रभवति। आकराद्धिरण्यं प्रभवति।

ल्यब् प्रत्यय का लोप होने पर कर्म और अधिकरण कारक में भी पञ्चमी विभक्ति होती है। कर्म में—प्रासादमारुह्य प्रेक्षते=प्रासादात्प्रेक्षते। अधिकरण में—आसने उपविश्य प्रेक्षते। प्रश्न और उत्तर के प्रसङ्ग में भी पंचमी विभक्ति होती है। यथा—कुतो भवान्?—पाटलिपुत्रात्। जहाँ से मार्ग का परिमाण निर्धारण किया जाय वहां भी पंचमी होती है—

हस्तिनापुरादिन्द्रप्रस्थं पंचदशयोजनपरिमितम्।

अप, आङ् और परि इन कर्मप्रवचनीयों के योग में भी पंचमी विभक्ति होती है। अप और परि वर्जन अर्थ में और आङ् मर्य्यादा अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञक होते हैं। यथा—अप

त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टः। परित्रिगर्तेभ्यो वृष्टः। आपाटलिपुत्रात् वृष्टः। आमुक्तेः संसारः॥

प्रतिनिधि और प्रतिदान अर्थ में प्रति उपसर्ग की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। जिससे प्रतिनिधि और प्रतिदान विधान किये जावें उसकी भी अपादान संज्ञा होती है—प्रतिनिधि—कृष्णः पाण्डवेभ्यः प्रति। प्रतिदान—तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्।

अन्य, आरात्, इतर, ऋते और दिक् शब्दों के योग में भी पञ्चमी होती है। यथा—त्वदन्यः। मद्भिन्नः। यस्मादारात्। तस्मादितरः। ऋते ज्ञानात्। पूर्वो ग्रामात्। उत्तरो ग्रामात्। पूर्वो ग्रीष्माद् वसन्तः। उत्तरो ग्रीष्मो वसन्तात्।

पृथक्, विना और नाना शब्दों के योग में तृतीया और पञ्चमी दोनों होती हैं यथा—पृथग्देवदत्तेन। पृथग्देवदत्तात्। इसी प्रकार विना और नाना में भी समझो।

अद्रव्यवाचक स्तोक, अल्प, कृच्छ्र और कतिपय शब्दों के करण कारक में तृतीया और पञ्चमी दोनों विभक्ति होती हैं। यथा—स्तोकेन मुक्तः। स्तोकान्मुक्तः। द्रव्यवाचकों में तो तृतीया ही होगी। यथा—स्तोकेन विषेण हतः। अल्पेन मधुना मत्तः।

दूर और समीप वाचक शब्दों में पञ्चमी और षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—दूरं ग्रामात्। दूरं ग्रामस्य। समीपं ग्रामात् समीपं ग्रामस्य।

६—शेष

कर्मादि कारकों से भिन्न जो स्वत्व और सम्बन्ध आदि का सूचक हो वह शेष है और उसमें सदा षष्ठी विभक्ति आती है। यथा—राज्ञः पुरुषः। गुरोः शिष्यः। पितुः पुत्रः। हेतु शब्द के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—अन्नस्य हेतोर्वसति।

सर्वनाम के साथ हेतु शब्द के प्रयोग में तृतीया और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती हैं। यथा—केन हेतुना वसति—कस्य हेतोर्वसति।

स्मरणार्थक धातुओं के कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—मातुः स्मरति=मातरं स्मरतीत्यर्थः।

कृञ् धातु के कर्म कारक में यदि उसका संस्कार कर्तव्य हो तो षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—उदकस्योपस्कुरुते=उदकं संस्करोतीत्यर्थः।

ज्वरि और सन्तापि धातु को छोडकर भाववाचक रोगार्थक धातुओं के कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—अपथ्याशिनः रुजति रोगः=अपथ्याशिनं रोगः रुजतीत्यर्थः। ज्वरि और सन्तापि धातु के प्रयोग में तो द्वितीया ही होगी। यथा निर्बलं ज्वरयति ज्वरः। अविमृश्यकारिणं सन्तापयति तापः।

व्यवहृ, पण और दिव् धातु यदि समानार्थक हों तो इनके कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति होती है। द्यूत और क्रय विक्रय व्यवहार में इनकी समानार्थता होती है। शतस्य व्यवहरति। शतस्य पणते। शतस्य दीव्यति।

कृत्वोर्थ प्रत्ययों के प्रयोग में काल अधिकरण हो तो उसमें षष्ठी विभक्ति हो जाती है। यथा—द्विरह्नो भुङ्क्ते=पंचकृत्वोऽह्नोऽधीते।

कृत् प्रत्ययों के योग में कर्ता और कर्म दोनों कारकों में षष्ठी विभक्ति होती है। कर्ता में—पाणिनेःकृतिः। गायकस्य गीतिः। कर्म मे—अपां स्रष्टा। पुरां भेत्ता।

जिस कृत् प्रत्यय के प्रयोग में कर्ता और कर्म दोनों की प्राप्ति हो वहाँ केवल कर्म में ही षष्ठी हो, कर्ता में नहीं। यथा—रोचते मे ओदनस्य भोजनं देवदत्तेन। यहाँ देवदत्त कर्ता में तृतीया ही रही परन्तु ओदन कर्म में षष्ठी होगई।

वर्त्तमान काल में विहित जो 'क्त' प्रत्यय है उसके योग में षष्ठी विभक्ति होती है यथा—राज्ञां मतः। विदुषां बुद्धः। भूतकाल में द्वितीया होगी। ग्रामं गतः। नपुंसकलिङ्ग में भावविहित 'क्त' प्रत्यय के योग में षष्ठी होती है। यथा—छात्रस्य हसितम्। मयूरस्य नृत्तम्। कर्ता की विवक्षा में तृतीया भी होगी—छात्रेण हसितम्। मयूरेण नृत्तम्।

अधिकरण वाचक 'क्त' के योग में भी षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—विप्राणां भुक्तम्। सतां गतम्। बालस्य चेष्टितम्।

कृत्यसंज्ञक प्रत्ययों के प्रयोग में कर्ता में षष्ठी विकल्प से होती है। पक्ष में तृतीया होती है—त्वया करणीयम्। तव करणीयम्।

तुल्यार्थवाचक शब्दों के योग में तृतीया और षष्ठी विभक्ति होती है, तुला और उपमा शब्दों को छोड़ कर। यथा—तेन तुल्यः=तस्य तुल्यः। केन सदृशः=कस्य सदृशः। तुला और उपमा शब्दों के योग में केवल षष्ठी ही होगी। यथा—ईश्वरस्य तुला नास्ति। तस्योपमापि न विद्यते।

आशीर्वाद अर्थ हो तो आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ और हित इन शब्दों के योग में चतुर्थी और षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—आयुष्यं ते भूयात्, आयुष्यन्तव भूयात्। भद्रं ते भूयात्, भद्रं तव भूयात्। इत्यादि।

७—अधिकरण

जिसमें जाकर क्रिया ठहरे अर्थात् क्रिया के आधार को अधिकरण कहते हैं और इसमें सदा सप्तमी विभक्ति होती है। अधिकरण तीन प्रकार का है—१ औपश्लेषिक—शकटे आस्ते। कटे शेते। स्थाल्यां पचति इत्यादि। यहाँ गाड़ी और चटाई में कर्ता

का और बटलोई में कर्म का श्लेष मात्र है। २—वैषयिक—व्याकरणे निपुणः। सदसि वक्ता। धर्मेऽभि—निवेशः इत्यादि। यहाँ व्याकरण, सभा और धर्म विषय मात्र हैं ३—अभिव्यापक—तिलेषु तैलम्। दधनि घृतम्। सर्वस्मिन्नात्मा इत्यादि। यहाँ तिलों में तेल, दही में घृत और सबमें आत्मा व्यापक है।

निमित्त (हेतु) से कर्म का संयोग होने पर भी सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्। केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः। यहाँ हेतु में तृतीया को रोक कर सप्तमी हुई।

जिसकी क्रिया से क्रियान्तर लक्षित हो उससे सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—गोषु दुह्यमानासु गतः। दुग्धास्वागतः। अग्निषु हूयमानेषु गतः। हुतेष्वागतः।

अनादर सूचित होता हो तो जिसकी क्रिया से क्रियान्तर लक्षित हो उससे षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियाँ होती हैं। यथा—रुदतः प्राव्राजीत्। रुदति प्राव्राजीत्।

स्वामिन्, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षिन्, प्रतिभू, और प्रसूत इन सात शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियाँ होती हैं। यथा—गवां स्वामी। गोषु स्वामी। इत्यादि।

जिससे निर्धारण किया जाय उससे षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियाँ होती हैं। जाति, गुण और क्रियाद्वारा समुदाय से एक देश का पृथक् करना निर्धारण कहलाता है। जाति—मनुष्याणां मनुष्येषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठतमः। गुण—गवां गोषु वा कृष्णा सम्पन्नक्षीरतमा। क्रिया—अध्वगानाम् अध्वगेषु वा धावन्तः शीघ्रतमाः। परन्तु जहाँ निर्धारण में विभाग हो वहाँ पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—पाञ्चालाः पाटलिपुत्रेभ्यो दृढतराः। वाङ्गाः पाञ्चालेभ्यः सुकुमारतराः।

दो कारकों के बीच में यदि काल और मार्गवाचक शब्द हों तो उनसे पंचमी और सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—अद्य भुक्त्वाऽयं द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्ता। यहाँ दो कारकों के बीच में काल है। धनुर्मुक्तोऽयमिष्वासः क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्यति। यहां दो कारकों के बीच में मार्ग है।

कर्मप्रवचनीय संज्ञक उप और अधि उपसर्गों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। अधिकार्थ में उप की और स्वाम्यर्थ में अधि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा—उप निष्के कार्षापणम्। अधि भारतीषु हरिवर्षीयाः।

लिङ्गानुशासन

संस्कृत भाषा में तीन लिङ्ग हैं, जिनका निदर्शन पहले कर चुके हैं।

अब जो शब्द संस्कृत में नियत लिङ्ग हैं, उनका अनुशासन किया जाता है।

पुँल्लिङ्ग

जिन शब्दों के अन्त में घञ्, अप्, घ और अच् प्रत्यय हुए हों वे सब पुँल्लिङ्ग होते हैं। यथा—घञन्त—पादः। रोगः। पाकः। रागः। आहारः। अध्यायः इत्यादि। अबन्त—करः। शरः। यवः। ग्रहः। मदः। निश्चयः। संग्रहः इत्यादि। घान्त—छदः। घटः। पटः। गोचरः। सञ्चरः। आपणः। इत्यादि। अजन्त—चयः। जयः। क्षयः। इत्यादि।

जिन शब्दों के अन्त में 'नङ्' प्रत्यय हुवा हो वे याच्ञा को छोड़ कर पुँल्लिङ्ग होते हैं—यज्ञः। यत्नः। विश्नः। प्रश्नः। रक्ष्णः। इत्यादि।

'कि' प्रत्यय जिनके अन्त में हो ऐसे 'घु' संज्ञक शब्द भी पुँल्लिङ्ग होते हैं—प्रधिः। अन्तर्द्धिः। आधिः। निधिः। उदधिः। विधिः। इत्यादि। 'इषुधि' शब्द स्त्री पुं० दोनों में है।

देव, असुर, स्वर्ग, गिरि, समुद्र, नख, केश, दन्त, स्तन, भुज, कण्ठ, खड्ग, शर और पङ्क ये सब शब्द और इनके पर्याय-वाचक भी प्रायः पुँल्लिङ्ग होते हैं।

नकारान्त शब्द प्रायः पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा—आत्मन्। राजन्। तक्षन्। यज्वन्। ब्रह्मन्। वृत्रहन्। अर्यमन्। पूषन्। मघवन्। युवन्। श्वन्। अर्वन्। पथिन्। इत्यादि।

क्रतु, पुरुष कपोल, गुल्फ और मेघ शब्द और इनके पर्यायवाचक भी प्रायः पुंलिङ्ग होते हैं, केवल 'अभ्र' मेघ का पर्याय नपुंसक है।

इकारान्त शब्दों में मणि, ऋषि, राशि, दृति, ग्रन्थि, क्रमि, ध्वनि, बलि, कौलि, मौलि, रवि, कवि, कपि, मुनि, सारथि, अतिथि, कुक्षि, वस्ति, पाणि और अञ्जलि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

उकारान्त शब्दों में धेनु, रज्जु, कुहु, सरयु, तनु, रेणु, और प्रियंगु इन स्त्रीलिङ्गों को और श्मश्रु, जानु, वसु, स्वादु, अश्रु, जतु, त्रपु और तालु इन नपुंसकलिङ्गों को और मद्गु, मधु, सीधु, शीधु, सानु और कमण्डलु, इन पुन्नपुंसक लिङ्गों को छोड़ कर शेष सब पुंल्लिङ्ग हैं।

रु और तु जिनके अन्त में हों ऐसे सब शब्द सिवाय दारु, कसेरु, जतु, वस्तु और मस्तु के (जोकि नियत नपुंसकलिङ्ग हैं) पुंल्लिङ्ग होते हैं। केवल 'सक्तु' शब्द पुंन्नपुंसक दोनों में है।

ककार जिनकी उपधा में हो ऐसे अकारान्त शब्द सिवाय चिबुक, शालूक, प्रातिपदिक, अंशुक और उलुक शब्दों के (कि जो नियत नपुंसकलिङ्ग हैं) पुंलिङ्ग होते हैं। परन्तु कण्टक, अनीक, सरक, मोदक, चषक, मस्तक, पुस्तक, तडाक, निष्क, शुष्क, वर्चस्क, पिनाक भाण्डक, पिण्डक, कटक, शण्डक, पिटक, तालक, फलक और पुलाक ये शब्द पुन्नपुंसक दोनों में हैं।

जकारोपधों में ध्वज, गज, मुञ्ज और पुञ्ज शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

अकारान्त टकारोपध शब्दों में सिवाय किरीट, मुकुट, ललाट, वट, वीट, शृङ्गाट, कराट और लोष्ट शब्दों के (कि जो

नियत नपुंसकलिङ्ग हैं) पुंलिङ्ग होते हैं। परन्तु कुट, कूट, कपट, कवाट, कर्पट, नट, निकट, कीट और कट शब्द पुन्नपुंसक दोनों में हैं।

डकारोपधों में षण्ड, मण्ड, करण्ड, भरण्ड, वरण्ड, तुण्ड, गण्ड, मुण्ड, पाषण्ड और शिखण्ड शब्द पुंल्लिंग हैं।

णकारोपधों में सिवाय ऋण, लवण, पर्ण, तोरण, रण और उष्ण शब्दों के (कि जो नियत नपुंसकलिङ्ग हैं) शेष पुंलिङ्ग होते हैं। परन्तु कार्षापण, स्वर्ण, सुवर्ण, व्रण, चरण, वृषण, विषाण, चूर्ण और तृण शब्द पुन्नपुंसक दोनों में हैं।

तकारोपधों में हस्त, कुन्त, अन्त, व्रात, वात, दूत, धूर्त्त, सूत, चूत और मुहूर्त्त शब्द पुंलिङ्ग हैं।

थकारोपधों में सिवाय काष्ठ, पृष्ठ, सिक्थ और उक्थ शब्दों के (कि जो नियत नपुंसकलिङ्ग हैं) और काष्ठा के (कि जो नियत स्त्रीलिङ्ग है) शेष प्रायः पुंलिङ्ग होते हैं। परन्तु तीर्थ, प्रोथ, यूथ और गाथ शब्द पुन्नपुंसक दोनों में हैं।

दकारोपधों में ह्रद, कन्द, कुन्द, बुद्बुद और शब्द ये पाँच पुंलिङ्ग हैं।

अकारान्त नकारोपध शब्द सिवाय जघन, अजिन, तुहिन, कानन, वन, वृजिन, विपिन, वेतन, शासन, सोपान, मिथुन, श्मशान, रत्न, निम्न और चिह्न शब्दों के (कि जो नियत नपुंसक लिङ्ग हैं) पुंलिङ्ग होते हैं। परन्तु मान, यान, अभिधान, नलिन, पुलिन, उद्यान, शयन, आसन, स्थान, चन्दन, आलान, समान, भवन, वसन, सम्भावन, विभावन और विमान ये शब्द पुन्नपुंसक दोनों में हैं।

पकारोपध शब्दों में सिवाय पाप, रूप, उडुप, तल्प, शिल्प, पुष्प, शष्प, समीप और अन्तरीप शब्दों के (कि जो नियत नपुं-

सकलिङ्ग हैं) प्रायः पुंल्लिंग होते हैं। परन्तु शूर्प, कुतप, कुणप, द्वीप और विटप ये पाँच शब्द पुन्नपुंसक दोनों में हैं।

भकारोपधों में सिवाय तलभ शब्द के (कि जो नियत नपुंसकलिङ्ग है) शेष सब पुंलिङ्ग हैं। परन्तु जृम्भ शब्द पुन्नपुंसक दोनों में है।

मकारोपध शब्द सिवाय रुक्म, निधम, युग्म, इध्म, गुल्म, अध्यात्म और कुङ्कुम शब्दों के (कि जो नियत नपुंसकलिङ्ग हैं) पुंलिङ्ग होते हैं परन्तु संग्राम, दाड़िम, कुसुम, आश्रम, क्षेम, क्षौम, होम और उद्दाम ये शब्द पुन्नपुंसक दोनों में हैं।

यकारोपधों में सिवाय किसलय, हृदय, इन्द्रिय और उत्तरीय शब्दों के (कि जो नियत नपुंसकलिङ्ग हैं) शेष सब पुंलिङ्ग होते हैं। परन्तु गोमय, कषाय, मलय, अन्वय और अव्यय शब्द पुन्नपुंसक दोनों में हैं।

अकारान्त रकारोपध शब्द सिवाय द्वार, अग्रस्फार, तक्र, वक्र, वप्र, क्षिप्र, क्षुद्र, नार, तोर, दूर, कृच्छ्र, रन्ध्र, अश्र, श्वभ्र, भीर, गभीर, क्रूर, विचित्र, केयूर, केदार, उदर, अजस्र, शरीर, कन्दर, मन्दार, पञ्जर, अजर, जठर, अजिर, वैर, चामर, पुष्कर, गह्वर, कुहर, कुटीर, कुलीर, चत्वर, काश्मीर, नीर, अम्बर, शिशिर, तन्त्र, यन्त्र, क्षेत्र, मित्र, कलत्र, चित्र, मूत्र, सूत्र, वक्त्र, नेत्र, गोत्र, अंगुलित्र, भलत्र, शस्त्र, शास्त्र, वस्त्र, पत्र, पात्र और छत्र शब्दों के (कि जो नियत नपुंसक लिङ्ग हैं) शेष पुंलिङ्ग हैं। परन्तु चक्र, वज्र, अन्धकार, सार, अवार, हार, क्षीर, तोमर, शृंगार, मन्दार, उशीर, तिमिर और शिशिर शब्द पुन्नपुंसक दोनों में हैं।

शकारोपधों में वंश, अंश और पुरोडाश ये तीन शब्द पुंल्लिंग हैं।

षकारोपध शब्द सिवाय शिरीष, शीर्ष, अम्बरीष, पीयूष, पुरीष, किल्बिष और कल्माष शब्दों के (कि जो नियत नपुंसक

लिङ्ग हैं) शेष पुंलिङ्ग हैं। परन्तु यूष, करीष, मिष, विष और वर्ष शब्द पुन्नपुंसक दोनों में हैं।

सकारोपध शब्द सिवाय पनस, बिस, बुस, और साहस शब्दों के (कि जो नियत नपुंसक हैं) शेष पुंलिङ्ग हैं परन्तु चमस, अंस, रस, निर्यास, उपवास, कार्पास, वास, भास, कास, कांस और मांस शब्द पुन्नपुंसक दोनों में हैं।

किरण के पर्यायवाचक सिवाय "दीधिति" शब्द के कि जो स्त्रीलिङ्ग है और सब पुंलिङ्ग हैं।

दिवस के पर्याय सिवाय दिन और अहन् शब्दों के कि जो नपुंसकलिङ्ग हैं और सब पुंलिङ्ग होते हैं।

मान तौल के पर्याय जितने शब्द हैं वे सब सिवाय द्रोण और आढ़क के कि जो नपुंसक हैं, पुंलिङ्ग होते हैं। केवल खारी शब्द स्त्रीलिङ्ग है।

अर्घ, स्तम्ब, नितम्ब, पूग, पल्लव, पल्वल, कफ, रेफ, कटाह, निर्व्यूह, मठ, तरङ्ग, तुरङ्ग, मृदङ्ग, सङ्ग, गन्ध, स्कन्ध और पुङ्ख ये शब्द भी पुंलिङ्ग हैं।

अक्षत, दारा, लाजा और सूना ये शब्द पुंलिङ्ग और बहुवचनान्त भी हैं।

नपुंसकलिङ्ग

भाव अर्थ में जिन शब्दों से ल्युट्, क्त, त्व, और ष्यञ् प्रत्यय होते हैं, वे नपुंसकलिङ्ग होते हैं—

ल्युट्—हसनम्। भवनम्। शयनम्। आसनम्। इत्यादि

क्त—हसितम्। जल्पितम्। शयितम्। आसितम्। भुक्तम्।

त्व—ब्राह्मणत्वम्। शुक्लत्वम्। पटुत्वम्। महत्त्वम्। लघुत्वम्।

ष्यञ्—शौक्ल्यम्। दार्ढ्यम्। माधुर्यम्। लावण्यम्। कार्त्स्न्यम्।

भाव और कर्म अर्थों में जिन शब्दों से ष्यञ्, यत्, य, ढक्, यक्, अञ्, अण्, वुञ् और छ प्रत्यय होते हैं वे सब नपुंसक-लिङ्ग होते हैं—

ष्यञ् – जाड्यम्। मानुष्यम्। आलस्यम्।

यत् – स्तेयम्। चेयम्। गेयम्। नेयम्।

य – सख्यम्। दूत्यम्।

ढक् – कापेयम्। ज्ञातेयम्।

यक् – आधिपत्यम्। गार्हपत्यम्। राज्यम्। बाल्यम्।

अञ् – आश्वम्। औष्ट्रम्। सैंहम्। कौमारम्। कैशोरम्।

अण् – यौवनम्। कौशलम्। चापलम्। मौनम्। शौचम्।

वुञ् – आचार्यकम्। मानोज्ञकम्। बाहुलकम्।

छ – अच्छावाकीयम्। मैत्रावरुणीयम्।

अव्ययीभाव समास भी नपुंसकलिङ्ग होता है। यथा—अधिस्त्रि। उपकुम्भम्। समुद्रम्। अनुरथम्। अनुरूपम्। प्रत्यर्थम्। यथाबलम्। यावच्छक्ति। बहिर्ग्रामम्। आकुमारम्। अभ्यग्नि। अनुवनम्। अनुगङ्गम्। पञ्चनदम्। इत्यादि।

द्वन्द्व और द्विगु समास का एकवचन भी नपुंसकलिङ्ग होता है।

द्वन्द्व – पाणिपादम्। शिरोग्रीवम्। गवाश्वम्। शीतोष्णम्।

द्विगु – पञ्चपात्रम्। चतुर्युगम्। त्रिभुवनम्।

नञ् समास और कर्मधारय को छोड़कर तत्पुरुष समास भी नपुंसकलिङ्ग होता है। यथा – सुकुमारम्। इक्षुच्छायम्। इन-सभम्। रक्षःसभम्। गोशालम् इत्यादि।

इस् और उस् प्रत्यय जिनके अन्त में हों ऐसे हविस् और धनुस् आदि शब्द प्रायः नपुंसकलिङ्ग होते हैं। परंतु 'अर्चिस्' शब्द स्त्री नपुंसक दोनों में है।

मुख, नयन, लोह, वन, मांस, रुधिर, कार्मुक, विवर, जल, हल, धन और अन्न ये शब्द और इनके पर्यायवाचक भी प्रायः नपुंसकलिङ्ग होते हैं। परन्तु वक्त्र, नेत्र, अरण्य और गाण्डीव शब्द पुन्नपुंसक दोनों में हैं। सीर और ओदन ये केवल पुँल्लिङ्ग में हैं और अटवी शब्द केवल स्त्रीलिङ्ग में है।

लकार जिनकी उपधा में है ऐसे अकारान्त शब्द सिवाय तूल, उपल, ताल, कुसूल, तरल, कम्बल, देवल और वृषल शब्दों के कि जो नियत पुंल्लिङ्ग हैं, नपुंसकलिङ्ग होते हैं। परन्तु शील, मूल, मङ्गल, साल, कमल, तल, मुसल, कुण्डल, पलल, मृणाल, बाल, निगल, पलाल, बिडाल, खिल और शूल ये शब्द पुन्नपुंसक दोनों में हैं।

संख्यावाचक शतादि शब्द भी नपुंसक हैं। यथा—शतम्। सहस्रम्। अयुतम्। लक्षम्। प्रयुतम्। अर्बुदम्। इत्यादि, परन्तु इनमें शत, सहस्र, अयुत और प्रयुत ये चार शब्द कहीं पुंल्लिङ्ग में भी पाये जाते हैं और कोटि शब्द तो नित्य स्त्रीलिङ्ग है।

दो अच् वाले मन् प्रत्ययान्त शब्द कर्तृभिन्न अर्थ में प्रायः नपुंसकलिङ्ग होते हैं। वर्मन्, चर्मन्, कर्मन्, ब्रह्मन्। इत्यादि, परन्तु ब्रह्मन् शब्द पुंल्लिङ्ग में भी आता है।

दो अच् वाले अस् प्रत्ययान्त शब्द भी प्रायः नपुंसकलिंग होते हैं—यशस्, पयस्, मनस्, तपस्, वयस्, वासस् इत्यादि। अप्सरस् शब्द स्त्रीलिंग और बहुवचनान्त है।

त्रान्त शब्द प्रायः नपुंसकलिंग होते हैं। यथा-पत्रं, छत्रं, मित्रं, दौहित्रम् इत्यादि। परन्तु यात्रा, मात्रा, भस्त्रा, दंष्ट्रा और वरत्रा ये पांच शब्द सदा स्त्रीलिंग में ही आते हैं। एवं भृत्र, अमित्र, छात्र, पुत्र, मंत्र, वृत्र, मेढ्र और उष्ट्र ये ८ शब्द सदा पुंल्लिंग में ही आते हैं। तथा पत्र, पात्र, पवित्र, सूत्र और छत्र ये पांच शब्द पुन्नपुंसक दोनों में आते हैं।

बल, कुसुम, युद्ध और पत्तन ये शब्द और इनके पर्याय-वाचक प्रायः नपुंसकलिंग होते हैं। परन्तु पद्म, कमल और उत्पल ये तीन शब्द पुन्नपुंसक दोनों में हैं। आहव और संग्राम ये दो शब्द सदा पुंल्लिंग में ही आते हैं। 'आजिः' शब्द सदा स्त्रीलिंग में आता है।

फलजातिवाचक शब्द प्रायः नपुंसकलिंग होते हैं। आम्रम्। आमलकम्। दाड़िमम्। नारिकेलम्। इत्यादि।

तकारोपध शब्दों में नवनीत, अवदात, अमृत, अनृत, निमित्त, वित्त, चित्त, पित्त, व्रत, रजत, वृत्त और पलित शब्द नपुंसक लिंग हैं।

तकारान्तों में विपत्, जगत् सकृत्, पृषत्, शकृत्, यकृत् और उदश्वित् ये शब्द नपुंसकलिंग हैं।

श्राद्ध, कुलिश, दैव, पीठ, कुण्ड, अङ्क, अंग, दधि, सक्थि, अक्षि, आस्पद, आकाश, कण्व, बीज, द्वन्द्व, बर्ह, दुःख, बडिश, पिच्छ, बिम्ब, कुटुम्ब, कवच, वर, शर और वृन्दारक ये सब शब्द नपुंसकलिंग हैं।

यकारोपधों में धान्य, आज्य, आस्य, सस्य, रूप्य, पण्य, वर्ण्य, धृष्य, हव्य, कव्य, काव्य, सत्य, अपत्य, मूल्य, शिक्य, कुड्य, मद्य, हर्म्य, तूर्य और सैन्य ये शब्द भी नपुंसक हैं।

अक्ष शब्द जहाँ इन्द्रिय का वाचक हो वहाँ नपुंसक होता है, अन्यत्र नहीं।

स्त्रीलिङ्ग

भावादि अर्थों में जिन शब्दों से तल्, क्तिन्, क्यप्, श, अ, अङ् और युच् प्रत्यय होते हैं, वे सब स्त्रीलिंग होते हैं। यथा—

तल्—मनुष्यता। पटुता। शुक्लता। जनता। देवता।

क्तिन्—कृतिः। मतिः। गतिः। श्रुतिः। स्तुतिः। इष्टिः। वृष्टिः।

क्यप्—संपत्। विपत्। प्रतिपत्। व्रज्या। इज्या।

श—क्रिया। इच्छा। परिचर्या। मृगया।

अ—चिकीर्षा। जिहीर्षा। समीक्षा। परीक्षा। ईहा। ऊहा।

अङ्—जरा। त्रपा। श्रद्धा। मेधा। पूजा। कथा। चर्चा।

युच्—कारणा। हारणा। आसना। वन्दना। वेदना।

ऊङ् और आप् प्रत्यय जिनके अन्तमें हों, ऐसे सब शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं—

ऊङन्त—कुरू। पङ्गू। श्वश्रू। वामोरू। करभोरू। कद्रू।

आबन्त—अजा। कोकिला। अश्वा। खट्वा। दया। रमा।

दीर्घ ईकारान्त और दीर्घ ऊकारान्त शब्द भी प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं—

ईकारान्त—कर्त्री। हर्त्री। प्राची। शर्वरी। गार्गी। लक्ष्मी

ऊकारान्त—चमू। बधू। यवागू। कर्षू।

अनि प्रत्ययान्त उणादि शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं—
अवनिः। तरणिः। सरणिः। धमनिः। परन्तु अशनि, भरणि और अरणि ये तीन शब्द पुंल्लिङ्ग में भी आते हैं।

मि और नि प्रत्ययान्त उणादि शब्द भी प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं—भूमिः। ग्लानिः। हानिः। इत्यादि, परन्तु वह्नि, वृष्णि, और अग्नि ये तीन शब्द सदा पुंल्लिङ्ग में ही आते हैं। तथा श्रोणि, योनि और उर्मि ये तीन शब्द स्त्रीपुम् दोनों में आते हैं।

ऋकारान्त शब्दों में मातृ, दुहितृ, स्वसृ, पौतृ और ननान्दृ ये पांच शब्द और दो संख्यावाचकों में तिसृ और चतसृ कुल मिलाकर सात शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति और नवति ये संख्यावाचक शब्द भी स्त्रीलिङ्ग हैं।

भूमि, विद्युत्, सरित्, लता और वनिता ये शब्द और इनके पर्याय भी प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं, परन्तु 'यादः' शब्द नदीवाचक भी नपुंसक लिंग है।

भाः, स्रुक, स्रग्, दिग्, उष्णिग्, उपानत्, प्रावृट्, विप्रट्, रुट्, तृट्, विट् और त्विष् ये सब शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

स्थूणा और ऊर्णा शब्द स्त्रीलिङ्ग के अतिरिक्त नपुंसकलिङ्ग में भी आते हैं, वहां इनका रूप स्थूणम् और ऊर्णम् होता है।

दुन्दुभि और नाभि शब्द यदि क्रमशः वाद्यविशेष और जातिविशेष के वाचक न हों तो स्त्रीलिङ्ग होते हैं, अन्यथा पुंल्लिङ्ग।

ह्रस्व इकारान्तों में दवि, विदि, वेदि, खानि, शानि, अस्रि, वेशि, कृष्णौषधि, कटि, अङ्गुलि, तिथि, नाडि, रुचि, वीथि, नालि, धूलि, केलि, छवि, रात्रि, शष्कुलि, राजि, अनि, वर्त्ति, भ्रुकुटि, त्रुटि, वलि और पङ्क्ति शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

तकारान्तों में प्रतिपत्, आपत्, विपत्, सम्पत्, शरत्, संसत्, परिषत्, संवित्, क्षुत्, पुत्, मुत् और समित् शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

ककारान्तों में स्रक्, त्वक्, ज्योक्, वाक्, और स्फिक् ये शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

आशीः, धूः, पूः, गीः, द्वाः और नौ ये शब्द भी स्त्रीलिङ्ग हैं। उषा, तारा, धारा, ज्योत्स्ना, तमिस्रा और शलाका शब्द भी स्त्रीलिङ्ग हैं।

अप्, सुमनस्, समा, सिकता और वर्षा ये शब्द स्त्रीलिङ्ग और बहुवचनान्त भी हैं।

अवशिष्टलिङ्ग ।

षकारान्त और नकारान्त संख्या तथा युष्मद्, अस्मद् और कति शब्द अव्ययवत् होते हैं अर्थात् इनका कोई नियत लिङ्ग

नहीं होता, किन्तु ये तीनों लिङ्गों में एक ही रूप से आते हैं। यथा—षकारान्त संख्या—षट् मातरः। षट्स्वसारः। षट्मित्राणि। नकारान्त संख्या—पञ्चाश्वाः। सप्तधेनवः। दश पुस्तकानि।
युष्मद्—त्वं पुमान्। त्वं स्त्री। त्वं नपुंसकम्।
अस्मद्—अहं पुमान्। अहं स्त्री। अहं नपुंसकम्।
कति—कति पुत्राः। कति दुहितरः। कति मित्राणि।

इनके अतिरिक्त और सर्वनामों का लिङ्ग परवत्, होता है अर्थात् पर शब्द का जो लिङ्ग होता है वही पूर्व का भी होता है। यथा—एकः पुरुषः। एका स्त्री। एकं कुलम्।

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में भी परवल्लिङ्ग होता है।
द्वन्द्व—स्त्रीपुरुषौ कुक्कुटमयूर्यौ। गुणकुले।
तत्पुरुष—विद्यानिधिः। आर्यसभा। ब्राह्मणकुलम्।

गुणवाचक विशेषण का लिङ्ग वही होता है जो विशेष्य का। यथा—शुक्ला शाटी। शुक्लः पटः। शुक्लं वस्त्रम्।

अव्यय

संस्कृतभाषा में संज्ञा और क्रिया के अतिरिक्त कुछ शब्द ऐसे भी हैं कि जिनके स्वरूप में कभी कोई विकार या परिवर्त्तन नहीं होता। उनको अव्यय कहते हैं।

अव्यय का लक्षण यह है कि "सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु। वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्" जो तीनों लिङ्ग सातों विभक्ति और उनके सब वचनों में एक से बने रहें अर्थात् जिनके स्वरूप में कभी कोई विकार न हो, वे अव्यय कहलाते हैं।

अव्ययों के छः विभाग हैं (१) स्वरादिगणपठित (२) अव्ययार्थक निपात (३) उपसर्ग (४) तद्धितान्त (५) कृदन्त (६) अव्ययीभाव समास ।

अब हम क्रमशः अर्थ और उदाहरण सहित इन छहों प्रकार के अव्ययों का निरूपण करते हैं ।

१—स्वरादिगणपठित ।

स्वरादिगण के अन्तर्गत जितने शब्द हैं वे सब इसमें समझने चाहियें, उनके रूप, अर्थ और उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं ।

अव्यय	अर्थ	उदाहरण
स्वः	स्वर्ग	सुकृतिनः स्वर्गमिष्यन्ति
अन्तः	भीतर	चक्षुषोरन्तः प्रविशन्ति मशकाः
अन्तरे, अन्तरा	भीतर	धनुषोन्तरेऽन्तरा वा शरः सन्धीयते
प्रातः	प्रभात	किन्त्वया प्रातः सन्ध्योपासिता ?
भूयः	फिर	भूयोऽपि मां स्मरिष्यसि
पुनः	फिर	पुनरेष्यत्यध्ययनार्थं माणवकः
उच्चैः	ऊँचे से	उच्चैर्गायन्ति गायनाः
नीचैः	नीचे से	नीचैर्न पठन्ति बालकाः
शनैः	धीरे से	शनैर्गमनं शोभनम्
आरात्	दूर	आराच्छत्रोः सदा वसेत्
,,	समीप	सखायं स्थापयेदारात्
ऋते	छोड़कर	ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
अन्तरेण	छोड़कर	त्वामन्तरेण तत्र न गच्छामि
विना	छोड़कर	न विद्यया विना सौख्यम्

अव्यय	अर्थ	उदाहरण
सकृत्	एकबार	सकृत् प्रतिज्ञा क्रियते
युगपत्	एकसाथ	युगपद् गच्छन्ति सैनिकाः
असकृत्	बारबार	छात्रैः सूत्राणामसकृदावृत्तिः क्रियते
अभीक्ष्णम्	बारबार	उद्योगिनः कार्यसिद्धयेऽभीक्ष्णं यतन्ते
मुहुः	बारबार	स्खलन्नपि शिशुः मुहुर्धावते
पृथक्	अलग	कृषकाः बुसं पृथक्कृत्यान्नं रक्षन्ति
सहसा	अकस्मात्	सहसा विदधीत न क्रियाम्
सपदि	अकस्मात्	सपदि मांसं पतन्ति क्रव्यादाः
कर्हिचित्	कभी	न कर्हिचित् कापि कृतस्य हानिः
कदाचित्	कभी	न कदाचिदनीश्वरं जगत्
सत्वरम्	शीघ्र	श्रुत्वैव वाक्यं सहि सत्वरं गतः
आशु	शीघ्र	तदाशुकृतसन्धानप्रतिसंहरसायकम्
झटिति	शीघ्र	वृक्षं झटित्यारुरोह
चिरम्	विलम्ब	चिरं सुखं प्रार्थयते सदा जनः
चिरेण	विलम्ब	चिरेणागतोऽस्मि
चिरात्	विलम्ब	चिराद् दृष्टोऽस्मि
प्रसह्य	हठ से	धृष्टः वर्जितोऽपि प्रसह्य भाषते
हठात्	हठ से	हठादाकृष्टानां कतिपयपदानां रचयिता
साक्षात्	प्रत्यक्ष	साक्षाद् दृष्टो मया हि सः
"	तुल्य	साक्षाल्लक्ष्मीरियं वधूः
पुरः	आगे	कस्यापि पुरो दीनं वचः मा ब्रूहि
ह्यः	गतदिन	ह्यः सखा मे समागच्छत्
श्वः	आगामिदिन	श्वो गन्तास्मि तवान्तिकम्
दिवा	दिनमें	दिवा मा स्वाप्सीः
दोषा	रातमें	दोषा तमसाच्छाद्यते जगत्
नक्तम्	रातमें	नक्तं जाग्रति चौराः कामिनो वा

अव्यय	अर्थ	उदाहरण
सायम्	सूर्यास्तकाल	सायं सूर्योऽस्तं गच्छति
मनाक्	थोड़ा	मितभाषिणो मनाक् भाषन्ते
ईषत्	थोड़ा	अकरणादीषत्करणं वरम्
स्वल्पम्	थोड़ा	स्वल्पमप्यस्यधर्मस्यत्रायतेमहतोभयात्
तूष्णीम्	चुप	विवादे सति तूष्णीं तिष्ठन्ति सज्जनाः
जोषम्	चुप	जोषमास्ते मुनिः
बहिः	बाहर	गृहाद्बहिर्गतो विरक्तः
आविः	प्रकट	विदुषा सूक्ष्मोऽप्यर्थ आविष्क्रियते
प्रादुः	प्रकट	प्रादुर्भवति काले कर्मणो विपाकः
अधः	नीचे	उत्पथगामिनामधः पतनं भवति
स्वयम्	आप	सदाचारस्सर्वैः स्वयमेवानुष्ठेयः
विहायसा	आकाश में	विहायसा उड्डीयन्ते पक्षिणः
सम्प्रति	अब	अध्ययनंतु कृतं सम्प्रति व्यायामः क्रियते
नाम	प्रसिद्धि	हिमालयो नाम नगाधिराजः
नञ्	नहीं	कस्याप्यनिष्टं न चिन्तनीयम्
वत्	तुल्य	वक्रवदर्थान् चिन्तय
सततम्	सदा	वृद्धेषु सतत विनयो विधेयः
अनिशम्	सदा	धर्मएवानिशं सेव्यइहकल्याणमीप्सुभिः
सनातनः	सदा	सकर्तृकायाःसृष्टेस्तुप्रवाहोऽयंसनातनः
तिरः	तिरस्कार	तिरस्क्रियन्ते हितवचनानि दुर्मेधसैः
कम्	जल	पर्वतेषु निर्झरेभ्यः कं निस्सरति
शम्	सुख	शंकरः शं विधास्यति
नाना	अनेक	रुचिभेदान्नाना मतानि जायन्ते
स्वस्ति	कल्याण-आशीर्वाद	प्रजाभ्यः स्वस्ति स्वस्तितेभूयात्
स्वधा	कव्य	पितृभ्यः स्वधा
अलम्	भूषण	विद्ययात्मानमलंकुरुत
”	पर्याप्ति	कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः

अव्यय	अर्थ	उदाहरण
अलम्	वारण	अलं महीपाल! तव श्रमेण
अन्यत्	और	मित्रादन्यत्पातुं कः समर्थः
वृथा	निष्फल	वृथा कृपणस्य संपत्
मुधा	निष्फल	मुधैवाऽसमीक्ष्यकारिणां प्रयासः
मृषा	झूठ	मृषा वदन्ति वञ्चकः
मिथ्या	झूठ	मिथ्यावादिनि न कोऽपि विश्वसिति
प्राक्	पहले	नद्यां प्रवाहात्प्रागेव सेतुर्विधेयः
पुरा	पहले	पुरा कश्चिज्जामदग्न्यो बभूव
मिथो, मिथस्	परस्पर	विवदन्ते मिथो मिथस् वा वैकरणाः
साकम्	साथ	केनापि साकं विवादो न कार्यः
सार्द्धम्	साथ	मया सार्द्धं तत्र गन्तव्यम्
समम्	साथ	शत्रुणापि समं औदार्यमेवावलम्बनीयम्
सत्रा	साथ	सदा सदाचारेण सत्रा स्थातव्यम्
अमा	साथ	राजाऽमात्येनामा मन्त्रं निश्चिनोति
प्रायः	बहुधा	उत्पथगामिनः प्रायआपदं लभन्ते
नमः	नमस्कार	गुरुवे नमः
नितान्तम्	अत्यन्त	शिष्यैःगुरवो नितान्तं सेवनीयाः
भृशम्	अत्यन्त	व्याधिना भृशं पीडितोऽसि
ऊरी	स्वीकार	यत्तेनोक्तं तदूरी कृत मया
उररी	स्वीकार	अपराधिना स्वापराधो नोररीक्रियते

नोट—एक एक अव्यय के अनेक अर्थ होते हैं परन्तु यहाँ हमने सक्षेप के लिए प्रसिद्ध प्रसिद्ध अर्थ और उनके उदाहरण दिये हैं। अन्य अर्थ और उनके उदाहरण संस्कृतव्याकरण का अवगाहन करने से मिलेंगे।

२—अद्रव्यार्थक निपात।

जो किसी द्रव्य के वाचक न हों, ऐसे निपातों की भी अव्यय संज्ञा है, जिनके रूप, अर्थ और उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं।

निपात	अर्थ	उदाहरण
च	और	सदुपदेशं शृणु सद्व्यवहारं च कुरु
,,	भी	पितरं मातरञ्च सेवस्व
वा	या	व्याकरणमध्येषि वा ज्यौतिषम्
ह	अवश्य	तेन ह विचित्ररचना कृता
वै	निश्चय	यज्ञाद्वै स्वर्गो जायते
हि, तु, एव	अवधारण	य हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ! यस्तु विद्याक्रियायुक्तः सएव बलवान्नरः
अ	अभाव	अविद्वानिव भाषसे
आ	वाक्य, स्मरण	आ एवं मन्यसे आ एवं किल तत्।
आः	दुःख क्रोध	आः कथमिदंसञ्जातम्। आः पाप किंविकत्थसे !
इ	अपाकरण	इ इतः यातु दुर्जनः
उ	रोषोक्ति	उ उत्तिष्ठ नराधम !
ओ३म्	प्रणव	तत्ते पदं सङ्ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्
,,	अङ्गीकार	शिष्यःगुरूपदेशं ओमित्युक्त्वा स्वीकरोति
कु	पाप	कुकर्म नाचरणीयम्
,,	कुत्सा	कुमित्रे नास्ति विश्वासः
,,	ईषदर्थ	कवोष्णमुपभुज्यते
किम्	प्रश्न, निन्दा	किन्ते करवाणि ? किं राजा यो न रक्षति ?
अस्तु	स्वीकार	एवमस्तु यत्त्वयोक्तम्
अहोबत	दया, खेद	अहोबत !! महत्पापं कर्त्तुं व्यवसितावयम्

निपात	अर्थ	उदाहरण
अहह	आश्चर्य	अहह ! बुद्धिप्रकर्षः पाश्चात्यानाम्
अहो	आश्चर्य	अहो !बलं सिंहस्य
नूनम्	निश्चय	नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधाः
खलु	वाक्यालङ्कार	धन्यास्त एव ये खलु परार्थमुद्यताः
किल	सम्भावना	जघान द्रोणं किल द्रौपदेयः
इति	प्रकार,समाप्ति	इत्याहपाणिनिः । इत्यष्टमोध्यायः ।
एवम्	ऐसा	एवं मा कुरु
शश्वत्	निरन्तर	शश्वत् धर्म एव सेवनीयः
चेत्	यदि	व्रीडा चेत् किमु भूषणैः
कामम्	यथेच्छ	काम वृष्टिर्भविष्यति
कच्चित्	क्या	कच्चित् गुरून् सेवसे ?
किञ्चिद्	कुछ	किञ्चिद्भोज्यमवशिष्टम् ?
नहि	नहीं	नहि सत्यात्परो धर्मः
न	नहीं	नानृतात्पातकं परम्
नो	नहीं	नो जानीमः किमत्रास्ति
हन्त	दुःख	हन्त ! व्याधिना पीडितोऽसि
बत	दुःख	बत ! शत्रुभिराक्रान्तोऽसि
हा	दुःख	हा ! निर्धनता त्वया जर्जरीकृतोऽस्मि
मा	मत	पापे रतिं मा कृथाः
यावत्	जबतक, जितना	यावद्दत्तं तावद्भुक्तम्
तावत्	तबतक, उतना	तावदध्येयं यावदायुः
स्वाहा	हव्यदान	अग्नये स्वाहा
अथ	अब	अथ शब्दानुशासनम्
सु सुष्ठु	अच्छा	सुभाषितम् । सुष्ठुपठितम्
स्म	भूतकाल	यजतिस्म युधिष्ठिरः

निपात	अर्थ	उदाहरण
अङ्ग, हे, भो	सम्बोधन	अङ्ग सुशर्मन्! हे शिष्य! भो गुरो!
ननु	आक्षेप	नन्वेवं कथमुच्यते
नु	सन्देह	कोनु धर्मः सेवनीयः
इव	तुल्य	भीरुइव कथं वेपसे
वत्	तुल्य	विषमे शूरवत् स्थातव्यम्
यथा, तथा	जैसे, तैसे	यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि
ऋतम्	सत्य	ऋतञ्चर
नोचेत्	नहीं तो	हे शिष्य! विद्यामर्जय नोचेत्तप्स्यसि
जातु	कभी	नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्
कथम्	क्योंकर	वृत्या विना कथं निर्वाहो भविष्यति
स्वित्	प्रश्न	किं स्वित् कुशलमस्ति ?
,,	वितर्क	मोदकं रोचसे स्वित् पायसम्।
आहोस्वित्	अथवा	त्वयाव्याकरणमधीतमाहोस्विच्छन्दः
उत	विकल्प	त्वं तत्रैकाकी वसस्युत सकलत्रम्?
दिष्ट्या	दैवयोगसे	दिष्ट्या कुशली भवान्
सह	साथ	दुर्जनैः सह वासो न कार्यः
अयि	नीच सम्बोधन	अयि दुर्विनीते! भर्त्तारमुल्लङ्घयसि
अरे, रे	नीच सम्बोधन	रे वा अरे मूढ! गुरुवाक्यं नाद्रियसे।
धिक	निन्दा	विश्रब्धे यः पापं समाचरति तं धिक्।
,,	निर्भर्त्सन	धिक् त्वामपराधिनम्।

नोट—एक एक निपात के भी कई कई अर्थ होते हैं, संक्षेप के लिये हमने इनके भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध अर्थ और उनके उदाहरणों पर ही सन्तोष किया है।

३—उपसर्ग

निम्न लिखित २२ उपसर्ग भी अव्यय कहलाते हैं "उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते" इन्हीं उपसर्गों के योग से धातु का

अर्थ कुछ का कुछ हो जाता है, इनके भी एक एक के अनेक अर्थ हैं, परन्तु हम संक्षेप से प्रसिद्ध प्रसिद्ध अर्थ और उनके क्रमशः उदाहरण दिखलाते हैं—

उपसर्ग	अर्थ	उदाहरण
प्र	प्रकर्ष, गमन	प्रभावः। प्रस्थानम्
परा	उत्कर्ष, अवकर्ष,	पराक्रमः। पराभवः।
अप	हरण, अपकर्ष, वर्जन, निर्देश और विकार	अपहरणम्। अपवादः। अपेतः। अपदेशः। अपकारः।
सम्	शोभन, सङ्ग, सुधार,	सम्भाषणम्। संगमम्। संस्कारः
अनु	लक्षण, योग्यता, पश्चात् तुल्यता और क्रम	अनुगमम्। अनुरूपम् अन्वर्जुनम् अनुकरणम्। अनुज्येष्ठम्।
अव	प्रतिबन्ध, निन्दा, स्वच्छता	अवरोधः। अवज्ञा। अवदातः
निस्,	निर् निश्चय और निषेध	निर्णयः। निष्क्रान्तः।
दुस्,	दुर् निन्दा और विषमता,	दुर्जनः। दुरूहः।
वि	श्रेष्ठ अद्भुत, अतीत	विशेष.। विचित्रः। विगतः।
आ	व्याप्ति, अवधि, ईषदर्थ,	आजन्म। आसमुद्रम्। आपिङ्गलः। आहरति।
नि	निन्दा, बन्धन, धातुयोगज, स्वभाव, उपरम, राशि, कौशल और सामीप्य	निकृष्टः। नियमः। निसर्गः। निवृत्तिः। निकरः। निष्णातः। निकटः।
अधि	आधार, ऐश्वर्य,	अधिकरणम् अधिराजः।
अपि	सम्भावना, शङ्का, निन्दा, आज्ञा और प्रश्न	प्रेत्यापि जायते। किमपि न ज्ञायते। तेनापि शाठ्यं कृतम्। त्वमपि तत्र गच्छेः। किमपि जानासि ?

उपसर्ग	अर्थ	उदाहरण
अति	प्रकर्ष, उल्लङ्घन, अत्यन्त और पूजन	अत्युत्तमः । अतिक्रान्तः । अतिवृष्टिः । अत्यादृतः ।
सु	पूजा	सुजनः ।
उद्	उत्कर्ष, प्रकाश, शक्ति, निन्दा, स्वैरिता, उत्पत्ति और उन्नति	उत्तमः । उद्भूतः । उत्साहः । उत्पथः । उच्छृङ्खलः । उत्पन्नः । उद्गतः ।
अभि	लक्षण, आभिमुख्य, कुटिलता	वृक्षमभि, अभ्यग्नि । अभिचारः ।
प्रति	भाग, प्रतिनिधि, पुनर्दान, लक्षण और खण्डन	किञ्चिन्मांप्रति । कृष्णःपाण्डवेभ्यःप्रति । तिलेभ्यःप्रति माषान् देहि । वृक्षंप्रति । प्रत्याख्यानम्
परि	व्याधि, परिणाम, आलिंगन, शोक पूजा, निन्दा और भूषण	परितापः । परिणतिः । परिष्वङ्गः । परिदेवनम् । परिचर्या । परिवादः । परिष्कारः ।
उप	सामीप्य, सादृश्य, गुणाधान, संयोग, पूजा, वृद्धि, आरंभ, दान, शिक्षा, निन्दा और विश्राम	उपगृहम् । उपमानम् । उपस्कारः । उपसृष्टः । उपचारः । उपचयः । उपक्रमः । उपहारः । उपदेशः । उपालम्भः । उपरतः ।

४—तद्धितान्त

जिनसे तसिल् आदि अविभक्तिक तद्धित प्रत्यय उत्पन्न होते हैं वे तद्धितान्त भी अव्यय कहलाते हैं।

तद्धित	अर्थ	उदाहरण
अतः	इसलिये	अतोऽहं ब्रवीमि
इतः	यहाँ से	इतः स गतः
यतः	जहाँ से	यतस्त्वमागतोऽसि
ततः	वहाँ से	ततोऽहमप्यागच्छामि

तद्धित	अर्थ	उदाहरण
कुतः	कहाँ से	कुतस्त्वं प्रत्यावृत्तः
परितः अभितः	चारों ओर से	अरण्ये परितः द्रुमापत्र दृश्यन्ते युद्धेऽभितः शूराणां गर्ज्जनं श्रूयते
सर्वतः	सब ओर से	समुद्रे सर्वतआपः प्लवन्ते
उभयतः	दोनों ओर से	शास्त्रार्थे उभयतः प्रमाणानि दीयन्ते ।
आदितः	आरम्भ से	आदितएव पुस्तकमवलोकनीयम् ।
अग्रतः	आगे से	न गणस्याग्रतो गच्छेत्
पार्श्वतः	पीछे से	त्वंतत्रगच्छपार्श्वतअहमप्यागच्छामि ।
बहुशः प्रायशः	बहुतायत से	कृपणःबहुशः प्रार्थितोऽपि नददाति प्रायशोजनः लोकाचारमाश्रयन्ति
अल्पशः	न्यूनता से	गृहस्थेन अल्पश एव व्ययःकार्यः
क्रमशः	क्रम से	जलबिन्दुनिपातेनक्रमशःपूर्यतेघटः
अत्र, इह	यहाँ पर	स अद्याप्यत्र इह वा नागतः
यत्र	जहाँ पर	यत्र देशे द्रुमो नास्ति
तत्र	वहाँ पर	तत्रैरण्डो द्रुमायते
कुत्र,क्व	कहाँ पर	तत्र गत्वा कुत्र क्व वा वत्स्यसि
सर्वत्र	सब जगह पर	विद्वान् सर्वत्र पूज्यते
एकत्र	एक जगह पर	मूर्खाः कूपमण्डूकवदेकत्रैवावसीदन्ति
बहुत्र	बहुत जगहों पर	विद्वांसस्तु मधुपवद् बहुत्र रमन्ते
यर्हि, यदा	जब	यदा यर्हिवा त्वामाज्ञापयिष्यामि
तर्हि, तदा, तदानीम्	तब	तदा, तर्हि, तदानीं वा त्वया तत्र गन्तव्यम्
कर्हि,कदा	कब	कदा, कर्हि वा त्वमत्रागमिष्यसि ?
एतर्हि, अधुना, इदानीम्	अब	अधुना, इदानीं, एतर्हि वाऽऽगच्छामि
सदा,सर्वदा	सब समय में	त्वया, सदा, सर्वदा धर्मेस्थातव्यम

तद्धित	अर्थ	उदाहरण
एकदा	एक समय में	एकदाऋषयस्सर्वेनैमिषारण्यमास्थिताः
अन्यदा	और समय में	अन्यदाभूषणंपुंसांक्षमालज्जेवयोषितः
यथा-तथा	जैसे तैसे	यथाज्ञापयन्ति गुरवस्तथैवानुष्ठेयम्
सर्वथा	सब प्रकार से	व्यसनानि सर्वथा परिवर्ज्जनीयानि
अन्यथा	झूँठ	अन्यथा वदन्ति साक्षिणः लोभाविष्टाः
इतरथा	और प्रकार से	लोकाचारादितरथाहिशास्त्रस्यगतिः
कथम्	कैसे	धर्मेण विना कथं श्रेयः स्यात् ?
इत्थम्	ऐसे	इत्थ तेनाभिहितम्
समन्तात्	सब ओर से	समन्ताद्वाति मारुतः
पुरस्तात्	आगे से	पुरस्ताद्वायुरागच्छति
अधस्तात्	नीचे से	अधस्ताज्जलमानय
उपरिष्टात्	ऊपर से	उपरिष्टात् फलं पतति
पश्चात्	पीछे से	छायेवाहं तव पश्चाद् गमिष्यामि
एकधा	एक प्रकार से	एकधैव सर्वत्र सतां व्यवहारः
द्विधा, द्वेधा	दो प्रकार से	द्विधा, द्वेधा वा कर्मणां गतिः
त्रिधा, त्रेधा	तीनप्रकार से	त्रिधा, त्रेधा वा प्रकृतेर्गुणाः
चतुर्धा	चारप्रकार से	एकामनुष्यजातिः गुणकर्मभेदेनचतुर्धा
पञ्चधा	पाँचप्रकार से	पञ्चधा भूतानि।
बहुधा	बहुतप्रकारसे	बहुधा कर्मणां गतिः
अद्य	आज	अद्य शीतं वरीवर्त्ति सरीसर्त्ति समीरणः
सद्यः	तत्काल	प्रभोरादेशमवाप्य सद्यस्तत्र गमनीयम्
पूर्वेद्युः	बीतोहुईकलह	पूर्वेद्युरहमिन्द्रप्रस्थ आसम्
उत्तरेद्युः	आनेवालीकलह	किमुत्तरेद्युस्त्वंस्रुघ्नं गमिष्यसि
अपरेद्युः, अन्येद्युः	और दिन	अपरेद्युस्तत्र गमिष्यासि
उभयेद्युः	दोनों दिन	उभयेद्युरोषधिः पीता

५—कृदन्त ।

इनके अतिरिक्त मकारान्त, एजन्त और 'क्त्वा' प्रत्ययान्त कृदन्त भी अव्यय संज्ञक होते हैं ।

कृदन्त	अर्थ	उदाहरण
स्मारंस्मारम	बारबारस्मरणकरके	स्मारंस्मारं पाठमधीते
यावज्जीवम्	जीवनपर्यन्त	यावज्जीवंसत्यमालम्बनीयम्
भोक्तुम्	खानेको	स तत्र भोक्तुं व्रजति
गन्तवे	जाने के लिए	स्वर्देवेषु गन्तवे
सूतवे	जनने के लिए	दशमे मासि सूतवे
दृशे	देखने के लिए	दृशे विश्वाय सूर्यम्
गत्वा	जाकर	तत्र गत्वा स्वकार्यं साधनीयम्

६—अव्ययीभाव ।

अव्ययीभाव समास को भी अव्यय संज्ञा है ।

यथा-अभ्यग्नि । उपगृहम् । अनुरूपम् इत्यादि ।
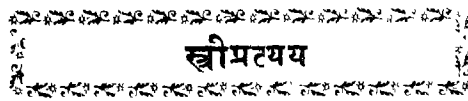
स्त्रीप्रत्यय

अब जिन प्रत्ययों के योग से पुंलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग बनाये जाते हैं, उनका वर्णन करते हैं ।

प्रायः अकारान्त पुंलिङ्ग शब्द स्त्रीलिङ्ग में आकारान्त हो जाते हैं जैसे-प्रिय से प्रिया । कान्त से कान्ता । इसी प्रकार वृद्धा । कृशा । दीना । अबला । सरसा । चपला । निपुणा । कृष्णा । चतुरा । पूर्वा । पश्चिमा । उत्तरा । दक्षिणा । प्रथमा । द्वितीया । तृतीया । मनोहरा । अनुकूला । प्रतिकूला । इत्यादि, परन्तु ककार जिनकी उपधा में हो ऐसे अकारान्त शब्दों के ककार से पूर्व वर्ण को स्त्रीलिङ्ग में ह्रस्व 'इ' आदेश और हो जाता है । जैसे—कारक से कारिका । वाचक से वाचिका । नायक से नायिका । इत्यादि ।

किन्हीं किन्हीं अकारान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में 'ई' प्रत्यय और उनके अकार का लोप भी होता है। यथा गौर से गौरी। नद से नदी। इसी प्रकार काली। नागी। कबरी। बदरी। तटी। नटी। कुमारी। किशोरी। तरुणी। पितामही। मातामही। इत्यादि।

जातिवाचक अकारान्त शब्दों में सिवाय अजा, कोकिला, चटका, क्रुञ्चा, अश्वा, मूषिका, बलाका, मक्षिका, पुत्तिका, वर्त्तिका, बाला, वत्सा, मन्दा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा और शूद्रा शब्दों के (कि जो स्त्रीलिंग में आकारान्त हुवे हैं) शेष सब ईकारान्त होतेहैं। जैसे सिंह से सिंही। व्याघ्री। मृगी। एणी। हरिणी। कुरंगी। हंसी। वकी। काकी। मानुषी। गोपी। राक्षसी। पिशाची। इत्यादि

ऋकारान्त शब्दों में स्वसृ, मातृ, दुहितृ, यातृ, ननान्दृ, तिसृ और चतसृ शब्दों को छोड़कर शेष सब स्त्रीलिंग में ईकारान्त होते हैं। यथा कर्त्तृ से कर्त्री। भर्त्तृ से भर्त्री। एवं धात्री। दात्री। गन्त्री। हन्त्री। अधिष्ठात्री। उपदेष्ट्री। जनयित्री। प्रसवित्री। इत्यादि

नकारान्त शब्दों में पञ्चन्, सप्तन्, अष्टन्, नवन् और दशन् इन संख्यावाचक शब्दों को छोड़कर शेष सब स्त्रीलिंग में ईकारान्त होते हैं। दण्डिन से दण्डिनी। हस्तिन् से हस्तिनी। एवं यामिनी। भामिनी। कामिनी। मानिनी। विलासिनी। तपस्विनी। मायाविनी। मेधाविनी। प्रियवादिनी। मनोहारिणी। इत्यादि

वन् प्रत्ययान्त शब्द भी स्त्रीलिंग में ईकारान्त होते हैं और अन्त के नकार को रकार आदेश भी होता है। यथा—धीवन् से धीवरी। पीवन् से पीवरी। शर्वन् से शर्वरी। इत्यादि

मन् प्रत्ययान्त शब्द तथा बहुब्रीहिसमास में अन् प्रत्ययान्त शब्द भी स्त्रीलिंग में आकारान्त होते हैं।

मन्नन्त—सीमन् से सीमा । दामन् से दामा । पामन् से पामा

अन्नन्त—ब० व्री०—सुपर्वन् से सुपर्वा । सुशर्मन् से सुशर्मा ।

मत्, वत्, तवत्, वस् और ईयस् ये प्रत्यय जिनके अन्त में हुवे हों ऐसे शब्दों से स्त्रीलिंग में (ई) प्रत्यय होता है—बुद्धिमत् से बुद्धिमती । लज्जावत् से लज्जावती । दृष्टवत् से दृष्टवती । विद्वस् से विदुषी । प्रेयस् से प्रेयसी ।

शतृ प्रत्ययान्त शब्द भी स्त्रीलिंग में ईकारान्त होते हैं और उनको 'नुम्' का आगम भी हो जाता है । भवत् से भवन्ती । पचत् से पचन्ती । ददत् से ददन्ती । यजत् से यजन्ती इत्यादि ।

अञ्चु धातु से जो संज्ञाशब्द बनते हैं, वे भी स्त्रीलिंग में ईकारान्त हो जाते हैं-प्राक् से प्राची । प्रत्यक् से प्रतीची । उदक् से उदीची ।

टित्, ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ्, क्वरप्, नञ्, और स्नञ् ये प्रत्यय जिनके अन्त में हुवे हों ये सब शब्द स्त्रीलिंग में ईकारान्त होते हैं—

टित्—कुरुचर से कुरुचरी । ढान्त—वैनतेय से वैनतेयी । अणन्त—औपगव से औपगवी । अञन्त—औत्स से औत्सी । द्वयसजन्त—ऊरुद्वयस से ऊरुद्वयसी । दघ्नजन्त—जानुदघ्न से जानुदघ्नी । मात्रजन्त—कटिमात्र से कटिमात्री । तयबन्त—पञ्चतय से पञ्चतयी । ठगन्त—आक्षिक से आक्षिकी । ठञन्त—लावणिक से लावणिकी । कञन्त—यादृश से यादृशी । क्वरबन्त—नश्वर से नश्वरी । नञन्त—स्त्रैण से स्त्रैणी । स्नञन्त—पौंस्न से पौंस्नी ।

यञ् प्रत्यय जिनके अन्त में हुवा हो, ऐसे शब्द भी स्त्रीलिंग में ईकारान्त होते हैं और उनके यकार का लोप भी हो जाता है—गार्ग्य से गार्गी । वात्स्य से वात्सी । किहीं किन्हीं के मत में

यञन्त से स्त्रीलिंग में पहिले (आयन्) प्रत्यय होकर पुनः उसके अन्त में ईकार होता है—गार्ग्यायणी ।

लोहितादि शब्दों से कत पर्यन्त नित्य (आयन्) प्रत्यय होकर ईकार होता है—लोहित से लोहित्यायनी । कत से कात्यायनी । इत्यादि ।

कौरव्य, माण्डूक और आसुरि शब्दों से भी (आयन्) प्रत्यय होकर ईकार होता है । कौरव्यायणी । माण्डूकायनी । आसुरायणी ।

अकारान्त द्विगु समास स्त्रीलिंग में ईकारान्त होता है त्रिलोकी । चतुश्लोकी । अष्टाध्यायी ।

ऊधस् शब्द जिनके अन्त में हो ऐसे बहुव्रीहि समास से स्त्रीलिंग में (अन्) आदेश होकर अन्त में ईकार होता है। घटोधस् से घटोध्नी । कुण्डोधस् से कुण्डोध्नी ।

दामन् और हायनान्त बहुव्रीहि भी स्त्रीलिंग में ईकारान्त होते हैं। द्विदाम से द्विदाम्नी । द्विहायन से द्विहायनी ।

अन्तर्वत् और पतिवत् इन दो शब्दों से यदि क्रमशः गर्भिणी और पतिवाली स्त्री अभिधेय हों तो स्त्रीलिङ्ग में पहिले 'न्'प्रत्यय होकर अन्त में ईकार होता है अन्तर्वत्नी = गर्भिणी । पतिवत्नी = भर्तृमती । अन्यत्र अन्तर्वती = शाला । पतिमती = पृथिवी । होगा ।

पति शब्द को यज्ञसंयोग में नकारादेश होकर पुनः स्त्रीलिंग में ईकारादेश होता है—पत्नी = अर्द्धाङ्गिनी ।

यदि पति शब्द से पूर्व कोई उपपद हो तो पत्यन्त शब्द से स्त्रीलिंग में नकारादेश और ईकार विकल्प से होते हैं—गृहपतिः, गृहपत्नी । वृषलपतिः, वृषलपत्नी ।

सपत्नी आदि शब्दों को नित्य ही नकारादेश हो कर ईकार होता है । यथा—सपत्नी । एकपत्नी । वीरपत्नी ।

पूतक्रतु, वृषाकपि और अग्नि शब्दों के अन्त्य अच् को स्त्रीलिंग में 'आयी' आदेश होजाता है—पूतक्रतायी। वृषाकपायी। अग्नायी।

मनु शब्द को स्त्रीलिंग में आयी और आवी दोनों आदेश होते हैं मनोः स्त्री = मनायी। मनावी।

गुणवाचक उकारान्त शब्द से स्त्रीलिंग में वैकल्पिक 'ई' प्रत्यय होता है। यथा—मृद्वी, मृदुः। पट्वी, पटुः। लघ्वी, लघुः। गुर्वी, गुरुः। इत्यादि

बह्वादि, गणपठित शब्दों से भी स्त्रीलिंग में पाक्षिक 'ई' प्रत्यय होता है—बह्वी, बहुः। पद्धती, पद्धतिः। यष्टी, यष्टिः। रात्री, रात्रिः। परन्तु 'क्तिन्' प्रत्ययान्तों से नहीं होता—भक्तिः। शक्तिः। व्यक्तिः। जातिः।

पुरुषवाचक शब्दों से स्त्री की आख्या में 'ई' प्रत्यय होता है। जैसे गोप की स्त्री गोपी। दास की स्त्री दासी। इत्यादि, सूर्य शब्द से देवता अभिप्रेय हो तो 'आ' प्रत्यय होगा—सूर्या = सूर्य की शक्ति रूप देवता का नाम है। अन्यत्र सूरी = अर्थात् सूर्यनामक व्यक्ति की स्त्री।

इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र और मृड इन ६ शब्दों से पुंयोग में 'आनी, प्रत्यय होता है। यथा—इन्द्रस्य स्त्री = इन्द्राणी। एवं वरुणानी। भवानी। शर्वाणी। रुद्राणी। मृडानी। हिम और अरण्य शब्द से महत्त्व अर्थ में 'आनी' प्रत्यय होता है—हिमानी वर्फ के ढेर। अरण्यानी = वन के समूह। यव शब्द से दुष्ट और यवन शब्द से लिपि अर्थ में (आनी) प्रत्यय होता है। यवानी = दुष्टयव। यवनानी = यवनों की लिपि।

मातुल और उपाध्याय शब्दों से पुंयोग में (आनी) प्रत्यय विकल्प से होता है, पक्ष में (ई) प्रत्यय होता है—मातुलानी, मातुली = मामा की स्त्री। उपाध्यायानी, उपाध्यायी = उपाध्याय

की स्त्री। और जो आप ही अध्यापिका हो तो (ई) और (आ) प्रत्यय होंगे। उपाध्यायी, उपाध्याया। आचार्य शब्द से पुंयोग में (आनी) और स्वार्थ में (आ) प्रत्यय होता है–आचार्यानी= आचार्यस्य स्त्री। आचार्या=स्वयं व्याख्यात्री।

अर्य और क्षत्रिय शब्दों से स्वार्थ में आनी और आ दोनों प्रत्यय होते हैं–अर्याणी, अर्या=स्वामिनी या वैश्या। क्षत्रियाणी, क्षत्रिया=क्षात्र धर्म से युक्त स्त्री। पुंयोग में केवल (ई) प्रत्यय होगा–अर्यी=स्वामि या वैश्य की स्त्री। क्षत्रियी= क्षत्रिय की स्त्री।

संयोग जिसकी उपधा में न हो ऐसे अंगवाचक अकारान्त से यदि उपसर्जन उसके पूर्व हो तो स्त्रीलिंग में विकल्प से (ई) प्रत्यय होता है–सुकेशी, सुकेशा। चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा। संयोगोपध से केवल (आ) प्रत्यय होता है–सुगुल्फा। उन्नतस्कन्धा। उपसर्जन जिसके पूर्व न हो उससे भी 'आ' ही होता है–शिखा। मज्जा। वसा। जंघा। इत्यादि

नासिका, उदर, ओष्ठ, जंघा, दन्त, कर्ण और शृङ्ग ये शब्द जिनके अन्त में हों उनसे स्त्रीलिंग में ई और आ दोनों प्रत्यय होते हैं–तुङ्गनासिकी, तुङ्गनासिका। कृशोदरी, कृशोदरा। बिम्बोष्ठी, बिम्बोष्ठा। करभजंघी, करभजंघा। शुभ्रदन्ती, शुभ्रदन्ता। लम्बकर्णी, लम्बकर्णा। तीक्ष्णशृङ्गी, तीक्ष्णशृङ्गा।

क्रोडादि शब्द जिनके अन्त में हों तथा अनेकाच् शब्द से भी स्त्रीलिंग में 'ई' प्रत्यय न हो–कल्याणक्रोडा। सुजघना।

सह, नञ् और विद्यमान ये जिसके पूर्व हों ऐसे अङ्गवाचक शब्दों से भी स्त्रीलिङ्ग में 'ई' प्रत्यय न हो–सकेशा। अगुल्फा। विद्यमाननासिका। सह को 'स' और नञ् को 'अ' आदेश हो गया है।

नख और मुख शब्द जिसके अन्त में हों ऐसे प्रातिपदिक से संज्ञा अर्थ में 'ई' प्रत्यय न हो–शूर्पणखा। गौरमुखा।

ये किसी की संज्ञा हैं। संज्ञा से भिन्न अर्थ में रक्तनखी। ताम्रमुखी।

दिग्वाचक शब्द जिसके पूर्वपद में हों ऐसे अङ्गवाचक प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग में (ई) प्रत्यय होता है—प्राङ्मुखी, प्रत्यग्बाहुवी। उदग्पदी।

वाह प्रत्यय जिसके अन्त में हो ऐसे प्रातिपादिक से भी स्त्रीलिंग में 'ई' प्रत्यय होता है—दित्यौही। प्रष्ठौही। इत्यादि

पाद और दन्त शब्द जिनके अन्त में हो, उनसे भी स्त्रोलिंग में 'ई' प्रत्यय होता है—द्विपदी। त्रिपदी। चतुष्पदी। बहुपदी। शतपदी। सुदती। चारुदती। शुभ्रदती। कुन्ददती।

सखा और अशिशु शब्दों से स्त्रीलिंग में 'ई' प्रत्यय होकर सखी और अशिश्वी ये दो निपातन हुवे हैं।

यकार जिनकी उपधा में न हो और वे नियत स्त्रीलिंग भी न हों ऐसे जातिवाचक शब्दों से स्त्रीलिंग में 'ई' प्रत्यय होता है—कुक्कुटी। मयूरी। शूकरी। वृषली। इत्यादि। जातिवाचक से भिन्न—भद्रामुण्डा। यकारोपध से—क्षत्रिया। वैश्या। नियत स्त्रीलिंग से—वलाका। मक्षिका। यकारोपधों में हय, गवय, मुकय, मनुष्य और मत्स्य इन पांच शब्दों को छोड़ देना चाहिये, इनसे तो सदा 'ई' प्रत्यय ही होगा—हयी। गवयी। मुकयी। मनुषी। मत्सी। स्त्रोलिंग में मनुष्य और मत्स्य शब्द के यकार का लोप होजाता है।

पाक, कर्ण, पर्ण, पुष्प, फल, मूल और बाल ये सात शब्द जिनके अन्तमें हो ऐसे जातिवाचक प्रातिपदिकों से नियत स्त्रीलिङ्ग होने पर भी 'ई' प्रत्यय होता है। ओदनपाकी। शङ्कुकर्णी। मुद्गपर्णी। शङ्खपुष्पी। बहुफली। दर्भमूली। गोबाली। ये सब ओषधियों के नाम हैं।

मनुष्यजातिवाचक इकारान्त शब्दों से भी स्त्रीलिङ्ग में 'ई' प्रत्यय होता है- अवन्ती। कुन्ती। दाक्षी। इत्यादि, मनुष्यजाति से भिन्न तित्तिरि आदि में न होगा।

मनुष्यजातिवाचक उकारान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में 'ऊ' प्रत्यय होता है-कुरूः। ब्रह्मबन्धूः। इत्यादि, मनुष्यजाति से भिन्न रज्जु, हनु इत्यादि में न होगा।

बाहु शब्द जिसके अन्त में हो ऐसे प्रातिपदिक से संज्ञा विषय में 'ऊ' प्रत्यय हो—भद्रबाहूः=यह किसी की संज्ञा है। संज्ञा से अन्यत्र=सुबाहुः। यहाँ न हुवा।

पंगु शब्द से भी स्त्रीलिङ्ग में 'ऊ' प्रत्यय होता है—पंगूः। श्वशुर शब्द से स्त्रीलिङ्ग मे 'ऊ' प्रत्यय और उसके उकार एवं अकार का लोप होता है—श्वश्रूः।

ऊरु शब्द जिसके अन्त में हो ऐसे प्रातिपदिक से उपमा अर्थमें 'ऊ' प्रत्यय होता है। करभोरूः। रम्भोरूः।

संहित, शफ, लक्षण, वाम, सहित और सह शब्द जिसके आदि में हों ऐसे ऊरु शब्द से अनुपमार्थ में भी 'ऊ' प्रत्यय होता है-संहितोरूः। शफोरूः। लक्षणोरूः। वामोरूः। सहितोरूः। सहोरूः।

कद्रु और कमण्डलु शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में संज्ञा अभिधेय हो तो 'ऊ' प्रत्यय होता है—कद्रूः। कमण्डलूः। संज्ञा से अन्यत्र कद्रुः। कमण्डलुः।

शार्ङ्गरवादि गणपठित शब्दों से तथा अञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से जाति अर्थ में 'ई' प्रत्यय होता है।

शार्ङ्गरवादि—शार्ङ्गरवी। गौतमी। वात्स्यायनी।

अञन्त—वैदी। काश्यपी। भारद्वाजी। शारद्वती।

युवन् शब्द से स्त्रीलिंग में 'ति' प्रत्यय होता है—युवतिः।

समास

अनेक पदों को एक पद में जोड़कर प्रयोग करना समास कहलाता है, परन्तु वह समर्थ (सापेक्ष) पदों का ही हो सकता है असमर्थ (अनपेक्ष) पदों का नहीं। जैसे—मनुष्याणां—समुदायः= मनुष्यसमुदायः=मनुष्यों का समूह। यहां षष्ठ्यन्त मनुष्य पद प्रथमान्त समुदाय पद के साथ सामर्थ्य (अपेक्षा) रखता है अर्थात् मनुष्यों का समुदाय। इसलिये समास होगया। प्रकृतिः मनुष्याणां समुदायः पशूनाम्=प्रकृति मनुष्यों की और समुदाय पशुओं का। यहां षष्ठ्यन्त मनुष्य शब्द की प्रथमान्त समुदाय शब्द के साथ अपेक्षा नहीं है, इसलिये समास न हुआ।

समास में जितने पद हों उन सबके अन्त में एक विभक्ति रहती है, शेष विभक्तियों का लोप होजाता है जैसे—राज्ञः—पुरुषः=राजपुरुषः। यहां राजन् शब्द की षष्ठी का लोप हो गया। तथा—पुरुषश्च मृगश्च चन्द्रमाश्च=पुरुषमृगचन्द्रमसः। यहां पुरुष और मृग इन दोनों शब्दों की प्रथमा का लोप हो गया।

समास ४ प्रकार का है—(१) अव्ययीभाव (२) तत्पुरुष (३) बहुव्रीहि (४) द्वन्द्व। द्विगु और कर्मधारय तत्पुरुष के ही अवान्तर भेद हैं।

अव्ययीभाव में पूर्वपद का अर्थ प्रधान होता है, जैसे—पञ्च-नदम्। यहां 'पञ्च' शब्द प्रधान है। तत्पुरुष में उत्तरपद प्रधान होता है जैसे—धनपतिः। यहां 'पति' शब्द प्रधान है। बहुव्रीहि में अन्यपदार्थ प्रधान होता है। जैसे—पीताम्बरः। यहाँ पीत

और अम्बर इन दोनों शब्दों से भिन्न वह व्यक्ति जो पीत अम्बर वाली है, प्रधान है । द्वन्द्व में दोनों पद प्रधान रहते हैं । जैसे—शीतोष्णम् । यहां शीत और उष्ण दोनों ही प्रधान हैं ।

१—अव्ययीभाव ।

अव्ययों का सुबन्तों के साथ जो समास होता है उसे अव्ययीभाव कहते हैं । इसमें अव्यय के साथ समास होनेसे सुबन्त भी अव्ययवत् हो जाते हैं, इसीलिये इसकी अव्ययीभाव संज्ञा है ।

अव्ययीभाव समास में सदा अव्यय का सुबन्त से पूर्व प्रयोग होता है । यथ-अनुरूपम् ।

अव्ययीभाव समास में सदा नपुंसकलिंगही होता है, नपुंसकलिंग होने से अन्त्य के अच् को ह्रस्व भी हो जाता है । यथा—अधिस्त्रि ।

अव्ययीभाव समास दो प्रकार का होता है । (१) अव्यय पूर्वपद (२) नामपूर्वपद ।

१—अव्ययपूर्वपद ।

विभक्ति,समीप,समृद्धि, व्यृद्धि, अर्थाभाव, अत्यय, पश्चात्, यथा, आनुपूर्व्य और साकल्य इन अर्थों में वर्त्तमान अव्यय का सुबन्त के साथ समास होकर अव्ययीभाव कहाता है ।

विभक्ति—स्त्रियां-अधि = अधिस्त्रि = स्त्री में । यहां विभक्ति से केवल सप्तम्यन्त का ग्रहण है । इसी प्रकार-अधिगिरि । अधिनदि । अध्यारामम् । अध्यात्मम् इत्यादि ।

समीप—गुरोः समीपम् = उपगुरुम् = गुरु के समीप । यहां (उप) अव्यय समीप अर्थ में है । ऐसेही-उपग्रामम् । उपनगरम् । उपसदनम् । इत्यादि ।

समृद्धि—आर्याणां समृद्धिः = स्वार्यम् = आर्यों की समुन्नति, यहाँ 'सु' अव्यय समृद्धि अर्थ में है। ऐसे ही सुभद्रम्। सुभगम्।

व्यृद्धि—शकानां व्यृद्धिः = दुःशकम् = शकों की अवनति। यहां 'दुः' अव्यय अवनति अर्थ में है, ऐसेही = दुर्यवनम्। दुर्भगम्।

अर्थाभाव—मक्षिकाणाम् अभावः = निर्मक्षिकम् = मक्खियों का अभाव। यहां 'निर्' अव्यय अभाव अर्थ में है। ऐसे ही—निर्मशकम्। निर्हिमम्। इत्यादि

अत्यय—हिमस्य अत्ययः = अतिहिमम् = बर्फ का पिघल-जाना। यहां 'अति' अव्यय अत्यय 'नाश' अर्थ में है, ऐसे ही—अतीतम्। अतिक्रमम्। इत्यादि

पश्चात्—रथस्य—पश्चात् = अनुरथम् = रथ के पीछे। यहां पश्चात् अर्थ में 'अनु' अव्यय है। ऐसेही—अनुयूथम्। अनुहयम्। अनुपदम्। इत्यादि

यथा के चार अर्थ हैं—योग्यता, वीप्सा, अनतिक्रमण और सादृश्य। इन चारों अर्थों में अव्ययीभाव समास होता है।

योग्यता—रूपस्य योग्यम् = अनुरूपम् = रूपके योग्य। यहाँ योग्यता के अर्थ में 'अनु' अव्यय है, ऐसेही—अनुगुणम्। अनुशी-लम्। इत्यादि

वीप्सा—अर्थमर्थम् प्रति = प्रत्यर्थम्। द्विर्वचन का नाम वीप्सा है, यहां वीप्सा में 'प्रति' अव्यय है, ऐसेही—अनुवृक्षम्। परि-नगरम्। इत्यादि

अनतिक्रमण—शक्तिम् अनतिक्रम्य = यथाशक्ति। यहाँ अन-तिक्रमण = अनुसरण अर्थ में 'यथा' अव्यय है। ऐसे ही—यथा-पूर्वम्। यथाशास्त्रम्। इत्यादि

सादृश्य—बन्धोःसादृश्यम् = सबन्धु = बन्धु के समान। यहाँ सादृश्यार्थ में 'सह' अव्यय है, जिसको कि सकारादेश हो गया है। ऐसे ही—सकमलम्। ससागरम्।

आनुपूर्व्य—ज्येष्ठस्य अनुपूर्व्येण = अनुज्येष्ठम् = ज्येष्ठ के क्रम से। यहाँ आनुपूर्व्य (क्रमशः) के अर्थ में 'अनु' अव्यय है। ऐसे ही—अनुवृद्धम्। अनुक्रमम् इत्यादि।

साकल्य—तृणेन सह = सतृणम् = तृणसहित। यहाँ साकल्य (सम्पूर्ण) अर्थ में सह अव्यय है। ऐसे ही—सजलम्। सपरिच्छदम्।

'यथा' अव्यय का असादृश्य अर्थ में ही सुबन्त के साथ समास होता है—यथाबलम् = बल के अनुसार। ऐसे ही—यथावृद्धम्। यथापूर्वम्। इत्यादि, यहाँ असादृश्य अर्थ में ही समास हुवा है। जहाँ सादृश्य होगा वहाँ—यथा गौस्तथा गवयः = जैसी गाय वैसी नील गाय वाक्य होगा, न कि समास।

'यावत्' अव्यय का अवधारण अर्थ में ही सुबन्त के साथ समास होता है—यावद्भोज्यं भुङ्क्ते = जितना भोजन है, खाता है। यहाँ अवधारण अर्थ में समास है। अनवधारण में तो—यावद्दत्तं तावद्भुक्तम् = जितना दिया उतना खाया, वाक्य होगा न कि समास।

अप, परि, बहिस् ये तीन अव्यय और अञ्चु धातु पञ्चम्यन्त पद के साथ समास को प्राप्त होते हैं—अपविचारात् = अपविचारम् = विचार के बिना। परिनगरात् = परिनगरम् = नगर के चारों ओर। बहिः वनात् = बहिर्वनम् = वन के बाहर। प्राक् ग्रामात् = प्राग्ग्रामम् = ग्राम से पूर्व को।

'आ' अव्यय मर्यादा = सीमा और अभिविधि = व्याप्ति अर्थ में पञ्चम्यन्त के साथ समास पाता है। मर्यादा—आ-मरणात् = आमरणं धर्मं सेवेत = मरणपर्यन्त धर्म का सेवन करे। अभि-

विधि—आकुमारेभ्यः=आकुमारं यशः पाणिनेः=कुमारों तक पाणिनि का यश व्याप्त है।

अभि और प्रति अव्यय आभिमुख्य अर्थ में लक्षणवाचक सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होते हैं—अग्निम्—अभि=अभ्यग्नि। अग्निम्—प्रति=प्रत्यग्नि शलभाः पतन्ति=अग्नि के सम्मुख पतङ्ग गिरते हैं।

'अनु' अव्यय समीप अर्थ में सुबन्त के साथ समास पाता है—अनुवनम्=वन के समीप। जिसका आयाम (विस्तार) 'अनु' अव्यय से प्रकाश किया जावे, उस लक्षणवाची सुबन्त के साथ भी 'अनु' का समास होता है—अनु गङ्गायाः=अनुगङ्गम् वाराणसी=गङ्गा के बराबर विस्तारवाली काशी। अनु-परिखायाः=अनुपरिखम्=दुर्गम्=परिखा के बराबर विस्तार वाला दुर्ग।

२—नामपूर्वपद

वंशवाचक शब्दों के साथ संख्यावाचक शब्दों का समास होता है। वंश का क्रम दो प्रकार से चलता है, एक जन्म से, दूसरे विद्या से। जन्म से—द्वौ मुनी वंशस्य कर्तारौ=द्विमुनिवंशम्=जो वश दो मुनियों से चला हो। विद्या से—त्रयःमुनयोऽस्य कर्त्तारः=त्रिमुनि व्याकरणम्=पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि ये तीन मुनि व्याकरण के बनाने वाले हुए हैं, इसलिए 'त्रिमुनि' व्याकरण की संज्ञा है।

नदीवाचक सुबन्त के साथ भी संख्यावाचक शब्दों का समास होता है—सप्तगङ्गम्। पञ्चनदम्। इत्यादि। समाहार में यह समास होता है।

अन्य पदार्थ का वाचक सुबन्त भी नदीवाचक सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है, यदि उस समस्त पद से कोई

संज्ञा बनती हो—उन्मत्तगङ्गम्। लोहितगङ्गम्। ये किसी देश विशेष के नाम हैं। बहुव्रीहि के अर्थ में यह समास होता है।

सप्तम्यन्त पार और मध्य शब्द षष्ठ्यन्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास पाते हैं और विभक्ति का लोप भी नहीं होता, पक्ष में वाक्य भी होता है, पारे—सिन्धोः=पारे सिन्धु अथवा सिन्धोः पारे=समुद्र के पार। मध्ये-मार्गस्य=मध्येमार्गम् या मार्गस्य मध्ये=मार्ग के बीच में।

अव्ययीभाव में समासान्त प्रत्यय

शरत्, विपाश, अनस्, मनस, उपानह्, दिव्, हिमवत्, अनुडुह्, दिश्, दृश्, विश्, चेतस्, चतुर्, त्यद्, तद्, यद्, कियत् और जरस् शब्द जिसके अन्त में हों ऐसा अव्ययीभाव समास अकारान्त हो जाता है। उपशरदम्। अधिमनसम्। अनुदिवम्। अपदिशम्। प्रतिविशम्। आचतुरम् इत्यादि।

प्रति, पर, सम् और अनु इन अव्ययों से परे जो 'अक्षि' शब्द है वह अव्ययीभाव समास में अकारान्त हो जाता है। यथा—प्रति—अक्षि=प्रत्यक्षम्। पर—अक्षि=परोक्षम्। सम्—अक्षि=समक्षम्। अनु—अक्षि=अन्वक्षम्।

अव्ययीभाव समास में अन्नन्त सुबन्त के अन्त का जो नकार है उसका लोप होकर अकारान्त पद हो जाता है—उप-राजन्=उपराजम्। अधि-आत्मन्=अध्यात्मम्।

यदि वह अन्नन्त शब्द नपुंसकलिङ्ग हो तो विकल्प से नकार का लोप और अकारान्त होता है—उपचर्मम्, उपचर्म। अधि-शर्मम्, अधिशर्म।

नदी, पौर्णमासी और आग्रहायणी ये शब्द जिसके अन्त में हों, ऐसा अव्ययीभाव समास भी विकल्प से अकारान्त होता

है। यथा—उपनदम्, उपनदि। उपपौर्णमासम्, उपपौर्णमासि। उपाग्रहायणम्, उपाग्रहायणि।

वर्गों का पहिला, दूसरा, तीसरा और चौथा अक्षर जिसके अन्त में हो, ऐसा अव्ययीभाव समास भी विकल्प से अकारान्त होता है—उपसमिधम्, उपसमित्। अधिवाचम्, अधिवाक्। अतियुधम्, अतियुत्।

गिरि शब्दान्त अव्ययीभाव भी विकल्प से अकारान्त होता है—उपगिरम्, उपगिरि।

तत्पुरुष

तत्पुरुष समास ८ प्रकार का है। यथा [१] प्रथमा तत्पुरुष [२] द्वितीया तत्पुरुष [३] तृतीया तत्पुरुष [४] चतुर्थी तत्पुरुष [५] पञ्चमी तत्पुरुष [६] षष्ठी तत्पुरुष [७] सप्तमी तत्पुरुष और [८] नञ् तत्पुरुष।

तत्पुरुष समास के पूर्वपद में जो विभक्ति होती है उसी के नाम से उसका निर्देश किया जाता है। जैसे ग्रामं गतः = ग्रामगतः। यहाँ पूर्वपद में द्वितीया है इसलिए यह द्वितीयातत्पुरुष हुआ।

प्रथमातत्पुरुष

पूर्व, अपर, अधर और उत्तर ये प्रथमान्त पद अपने अवयवी षष्ठ्यन्त के साथ एकाधिकरण में समास को प्राप्त होते हैं। यथा—पूर्वं कायस्य = पूर्वकायः। अपरकायः। उत्तरग्रामः। अधरवृक्षः। इत्यादि

एकदेश वाचक जितने पद हैं, वे सब कालवाचक षष्ठ्यन्त के साथ समास को प्राप्त होते हैं। यथा—सायम् अह्नः = सायाह्नः। मध्याह्नः। पूर्वाह्णः। अपराह्णः। मध्यरात्रः।

द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और तुरीय ये शब्द भी अपने अवयवी एकाधिकरण षष्ठ्यन्त सुबन्त के साथ विकल्प से समस्त होते हैं। यथा – द्वितीयं – भिक्षायाः = द्वितीयभिक्षा = भिक्षा का दूसरा। पक्ष में (भिक्षाद्वितीयम्) षष्ठीतत्पुरुष होगा। इसी प्रकार – तृतीयं – शालायाः = तृतीयशाला, शालातृतीयं वा। चतुर्थमाला, माला चतुर्थं वा। तुरीयावस्था, अवस्थातुरीयं वा।

प्राप्त और आपन्न शब्द द्वितीयान्त सुबन्त के साथ समस्त होते हैं – प्राप्तः – विद्याम् = प्राप्तविद्यः। आपन्नः – जीविकाम् = आपन्नजीविकः। पक्ष में—विद्याप्राप्तः। जीविकापन्नः द्वितीया-तत्पुरुष भी होगा।

कालवाचक शब्द परिमाणवाची षष्ठ्यन्त पद के साथ समस्त होते हैं। तथा – मासः—जातस्य = मासजातः। संवत्सरजातः। द्व्यहजातः। त्र्यहजातः।

द्वितीयातत्पुरुष

श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न ये शब्द द्वितीयान्त सुबन्त के साथ समस्त होते हैं। यथा—वृक्षं – श्रितः = वृक्षश्रितः। दुःखम् – अतीतः = दुःखातीतः। ऐसे ही – भूमिपतितः। ग्रामगतः। अध्ययनात्यस्तः। यौवनप्राप्तः। शरणापन्नः। इत्यादि।

द्वितीयान्त खट्वा शब्द [क्त] प्रत्ययान्त सुबन्त के साथ समस्त होता है, यदि वाक्य से निन्दा सूचित होती हो। खट्वाम् – आरूढः = खट्वारूढो जाल्मः = खाट में बैठा हुवा कपटी। जहाँ निन्दा न होगी वहाँ समास भी न होगा।

कालवाचक द्वितीयान्त पद सुबन्त के साथ अत्यन्त संयोग में समस्त होते हैं – मुहूर्त्त – सुखम् = मुहूर्त्तसुखम्। मासमधीतम् = मासाधीतम्।

तृतीयातत्पुरुष

तृतीयान्त पद अन्य सुबन्त के साथ समास पाता है। यदि वह सुबन्त तृतीयान्त पदवाच्य वस्तुकृत गुण वा अर्थ से विशिष्ट (युक्त) हो। यथा—मधुना-मत्तः=मधुमत्तः। पङ्केन-लिप्तः=पङ्कलिप्तः। बाणेन-बिद्धः=बाणबिद्धः। जहाँ तृतीयाकृत गुण न होगा वहाँ समास भी न होगा। जैसे-अक्ष्णा काणः। शिरसा खल्वाटः।

पूर्व, सदृश, सम, ऊनार्थ, कलह, निपुण, मिश्र और श्लक्ष्ण इन पदों के साथ तृतीया का समास होता है। मासेन-पूर्वः=मासपूर्वः। मात्रा-सदृशः=मातृसदृशः। पित्रा-समः=पितृसमः। माषेण-ऊनम्=माषोनम्। वाचा-कलहः=वाक्कलहः। आचारेण-निपुणः=आचारनिपुणः। गुडेन-मिश्रः=गुडमिश्रः। स्नेहेन-श्लक्ष्णः=स्नेहश्लक्ष्णः।

कर्त्ता और करण अर्थ में जो तृतीयान्त पद है वह कृदन्त के साथ समास को प्राप्त होता है। कर्त्ता में—मित्रेण त्रातः=मित्रत्रातः। विष्णुना-दत्तः=विष्णुदत्तः। करण में—नखैः-भिन्नः=नख-भिन्नः। खड्गेन-हतः=खड्गहतः इत्यादि, जहाँ तृतीया कर्त्ता और न होगी, वहाँ समास भी न होगा जैसे—"भिक्षाभिरुषितः" यहाँ हेतु में तृतीया होने से समास न हुआ।

कर्त्ता और करण अर्थ में जो तृतीयान्त पद है वह अधिकार्थ-वचन में कृत्यसंज्ञक प्रत्ययों के साथ समास को प्राप्त होता है। स्तुतिनिन्दापूर्वक अर्थवाद जहाँ हो उसे अधिकार्थवचन कहते हैं। कर्त्ता में—काकैः पेया=काकपेया=नदी। इस उदाहरण में नदी का अल्पजला होना स्तुति और मलादिसंसृष्ट होना निन्दा है। करण में—वातेन-छेद्यम्=वातच्छेद्यम्=तृणम्। इस उदाहरण में भी तृण की कोमलता से स्तुति और तुच्छता से निन्दा

दोनों सूचित होते हैं। इसी प्रकार बालगेयं गीतम्। वामनचेयं फलम्। इत्यादि।

व्यञ्जनवाची तृतीयान्त पद अन्नवाचक सुबन्त के साथ समास पाता है। दध्ना-ओदनः=दध्योदनः। सूपेन, ओदनः=सूपौदनः। इत्यादि

ओजस्, सहस्, अम्भस्, तमस् और अञ्जस् शब्दों की तृतीया का समास होने पर भी लोप नहीं होता। तथा—ओजसाधर्षितम्। सहसाकृतम्। अम्भसाऽभिषिक्तम्। तमसाऽऽच्छन्नम्। अञ्जसाचरितम्।

पुंस् और जनुस् शब्द से क्रमशः अनुज और अन्ध शब्द परे हों तो भी तृतीया का लोप नहीं होता। पुंसानुजः। जनुषान्धः।

मनस् शब्द की तृतीया का संज्ञा में लोप नहीं होता—मनसागुप्ता = यह किसी की संज्ञा है, संज्ञा से अन्यत्र—मनोदत्ता। मनोभुक्ता। लोप हो जायगा।

आत्मन् शब्द की तृतीया का भी लोप नहीं होता यदि पूरण प्रत्ययान्त शब्द से उसका समास हो—आत्मनापञ्चमः। आत्मनाषष्ठः।

चतुर्थीतत्पुरुष

कार्यवाचक चतुर्थ्यन्त पद कारणवाचक सुबन्त के साथ समस्त होता है। यथा—यूपाय—दारु=यूपदारु। कुण्डलाय—हिरण्यम्=कुण्डलहिरण्यम्। यहाँ दारु और हिरण्य, यूप और कुण्डल के कारण हैं, इसलिए समास हो गया। रन्धनाय स्थाली। अवहननायोलूखलम्। यहाँ रन्धन और अवहनन, स्थाली और उलूखल की क्रिया हैं न कि कारण, इसलिए समास न हुआ।

चतुर्थ्यन्त पदका अर्थ शब्द के साथ नित्य समास होता है और विशेष्य के अनुसार ही विशेषण का लिङ्ग भी होता है। यथा द्विजाय — अयम् = द्विजार्थः सूपः। द्विजाय-इयम् = द्विजार्था यवागूः। द्विजाय — इदम् = द्विजार्थं पयः। इत्यादि

बलि, हित, सुख और रक्षित पदों के साथ चतुर्थ्यन्त पद का समास होता है — भूतेभ्यो बलिः = भूतबलिः। गवे हितम् = गोहितम्। प्रजायै सुखम् = प्रजासुखम्। बालेभ्यो रक्षितम् = बालरक्षितम्।

इनसे अन्यत्र भी कहीं कहीं चतुर्थी समास देखने में आता है। यथा — दानाय — उद्यतः = दानोद्यतः। धनाय — उत्सुकः = धनोत्सुकः। इत्यादि

यदि व्याकरण की परिभाषा विवक्षित हो तो आत्मन् और पर शब्द की चतुर्थी का समास में लोप नहीं होता — आत्मनेपदम्। आत्मनेभाषा। परस्मैपदम्। परस्मैभाषा। ये व्याकरण की संज्ञा हैं।

पञ्चमीतत्पुरुष

पञ्चम्यन्त सुबन्त भय और उसके पर्याय शब्दों के साथ समास पाता है। चोरात् — भयम् = चोरभयम्। सर्पात्-भीतः = सर्पभीतः। वृकात्-भीतिः = वृकभीतिः।

अपेत, अपोढ, मुक्त, पतित और अपत्रस्त इन शब्दों के साथ कहीं कहीं पर पञ्चमी का समास होता है। सुखात् अपेतः = सुखापेतः। कल्पनाया-अपोढः कल्पनापोढः। चक्रात् मुक्तः = चक्रमुक्तः। स्वर्गात् पतितः = स्वर्गपतितः। तरङ्गात् अपत्रस्तः = तरङ्गापत्रस्तः। कहीं नहीं भी होता। जैसे-प्रासादात्पतितः। दुःखान्मुक्तः। सिंहादपत्रस्तः।

पञ्चम्यन्त अल्प, समीप और दूर अर्थों के वाचक पद और कृच्छ्र शब्द भूतकालवाचक (क्त) प्रत्ययान्त शब्द के साथ समास पाते हैं और इनके समास में पञ्चमी का लोप भी नहीं होता—अल्पान्मुक्तः। स्तोकान्मुक्तः। समीपादागतः। अन्तिकादागतः। दूरादायातः। विप्रकृष्टादायातः। कृच्छ्रान्मुक्तः।

पञ्चम्यन्त शत और सहस्र शब्द पर शब्द के साथ समास पाते हैं और उनका पर निपात भी होता है—शतात् परे=परश्शताः। सहस्रात् परे=परस्सहस्राः।

इनसे अन्यत्र भी कहीं कहीं पञ्चमी समास देखने में आता है। यथा—त्वत्तोऽन्यः=त्वदन्यः। मत्तोऽन्यः=मदन्यः। तस्मादितरः=तदितरः। वामेतरः इत्यादि

षष्ठीतत्पुरुष

षष्ठ्यन्त पद सम्बन्धवाचक शब्द के साथ समास पाता है—राज्ञः पुरुषः=राजपुरुषः। विद्याया आलयः=विद्यालयः। शस्त्राणाम् आगारः शस्त्रागारः॥

याजकादि शब्दों के साथ भी षष्ठ्यन्त पद का समास होता है—ब्राह्मणानां याजकः=ब्राह्मणयाजकः। देवानां पूजकः। देवपूजकः। ऐसे ही विद्यास्नातकः। सामाध्यापकः। रिपूत्सादकः। इत्यादि

गुणवाचक 'तर' प्रत्यय के साथ षष्ठ्यन्त पद का समास होता है और समास होने पर 'तर' प्रत्यय का लोप होजाता है—सर्वेषां श्वेततरः=सर्वश्वेतः। सर्वेषां गुणवत्तरः=सर्वगुणवान्। सर्वेषां पूज्यतरः=सर्वपूज्यः।

जिस पदार्थ का जो गुण है उसके साथ भी षष्ठी का समास होता है। चन्दनस्य गन्धः=चन्दनगन्धः। इक्षोः रसः=इक्षुरसः। इत्यादि

वाक्, दिक् और पश्यत् इन षष्ठयन्त पदों का यदि युक्ति, दण्ड और हर इन उत्तरपदों के साथ क्रमशः समास हो तो षष्ठी का लोप नहीं होता—वाचोयुक्तिः । दिशोदण्डः । पश्यतोहरः ।

यदि मूर्ख अभिधेय हो तो देव शब्द की षष्ठी का प्रिय शब्द के साथ समास होने पर लोप न हो, देवानां प्रियः=मूर्खः । अन्यत्र देवप्रियः=विद्वान् ।

श्वन् शब्द की षष्ठी का शेप, पुच्छ और लाङ्गूल इन तीन पदों के साथ समास होने पर लोप नहीं होता । शुनःशेपः । शुनः-पुच्छः । शुनोलाङ्गूलः ।

दिव् शब्द की षष्ठी का दास शब्द के साथ समास होनेपर लोप नहीं होता—दिवोदासः ।

विद्या और योनि सम्बन्धी ऋकारान्त शब्दों की षष्ठी का भी समास में लोप नहीं होता ।

विद्या होतुरन्तेवासी । पितुरन्तेवासी ।

योनि—होतुः पुत्रः । पितुःपुत्रः ।

स्वसृ और पति शब्द उत्तरपद में हों तो उक्त विशेषण-विशिष्ट ऋकारान्त शब्दों की षष्ठी का लोप विकल्प से होता है । मातुःस्वसा, मातृष्वसा । पितुःस्वसा, पितृष्वसा । दुहितुःपतिः, दुहितृपतिः । ननान्दुःपतिः, ननान्दृपतिः ॥

षष्ठीतत्पुरुष का अपवाद

निर्धारण अर्थ में षष्ठी का समास नहीं होता—नृणां श्रेष्ठः । धावतां शीघ्रगः । गवां कृष्णा । इत्यादि । यहाँ निर्धारण अर्थ होने से समास नहीं होता और जहाँ निर्धारण में समास होगा जैसे कि—मनुजव्याघ्रः । यदुश्रेष्ठः । रघुपुङ्गवः, इत्यादि वहाँ सप्तमी तत्पुरुष समझना चाहिए, क्योंकि निर्धारण में केवल षष्ठी-समास का निषेध है । पूरण प्रत्ययान्त शब्द, गुणवाचक और

तृप्त्यर्थक शब्द तथा शतृ, शानच् और तव्य प्रत्ययान्त, एवं अव्यय और समानाधिकरण पदों का भी षष्ठी के साथ समास नहीं होता।

पूरणार्थक—वसूनां पञ्चमः। रुद्राणां षष्ठः। रिपूणां चतुर्थः।
गुणवाचक—बकस्य शौक्ल्यम्। काकस्य कार्ष्ण्यम् *
तृप्त्यर्थक—फलानां तृप्तः। मोदकानां प्रीतः †
शतृ—ब्राह्मणानामुपकुर्वन्। शास्त्राणामधिगच्छन्।
शानच्—दीनस्योपकुर्वाणः। कुसुमस्याददानः।
तव्य—ब्राह्मणस्य कर्तव्यम्। बालस्यैधितव्यम्।
अव्य—ओदनस्य भुक्त्वा। पयसः पीत्वा।
समानाधिकरण—नलस्य राज्ञः। तक्षकस्य सर्पस्य।

पूजा अर्थ में 'क्त' प्रत्ययान्त के साथ षष्ठ्यन्त का समास नहीं होता—विदुषांमतः। सतांबुद्धः। साधूनांपूजितः। ‡

अधिकरण वाचक 'क्त' प्रत्ययान्त के साथ भी षष्ठी का समास नहीं होता। मृगाणाम् आसितम्। विप्राणां भुक्तम्। सतां गतम्।

कर्त्ता के अर्थ में जो तृच् और अक प्रत्यय है उनके साथ भी षष्ठी का समास नहीं होता।

तृजन्त—अपां स्रष्टा। पुरां भेत्ता। कुटुम्बस्य भर्त्ता॥
अक—सूपस्य पाचकः। दण्डस्य धारकः। इत्यादि

---

* गुणवाचक के साथ कहीं समास हो भी जाता है। यथा—अर्थ-गौरवम्। बुद्धिमान्द्यम् इत्यादि।

† तृतीया में समास होता है। फलैः तृप्तः = फलतृप्तः।

‡ तृतीया में यहाँ भी समास होता है। राज्ञा पूजितः = राज-पूजितः।

सप्तमीतत्पुरुष

शौण्डादि गणपठित शब्दों के साथ सप्तम्यन्तपद का समास होता है—अक्षेषु·शौण्डः = अक्षशौण्डः । कर्मसु·कुशलः = कर्म· कुशलः । कलासु निपुणः = कलानिपुणः ।

सिद्ध, शुष्क, पक्व और बन्ध इन शब्दों के साथ भी सप्तम्यन्त का समास होता है—तर्के सिद्धः = तर्कसिद्धः । आतपे शुष्कः = आतपशुष्कः । स्थाल्यां पक्वः = स्थालीपक्वः । चक्र- बन्धः = चक्रबन्धः ।

यदि ऋण [आवश्यक] अर्थ अभिप्रेत हो तो सप्तम्यन्त पद कृत्य प्रत्ययान्तों के साथ समास पाता है और सप्तमी का लोप भी नहीं होता—मासेदेयम् = ऋणम् । पूर्वाह्णे गेयम् = साम । यहाँ ऋण का देना और साम का गाना आवश्यक कार्य है । अनाव- श्यक अर्थ में—मासे देया भिक्षा । समास न होगा, क्योंकि भिक्षा का देना ऋण के समान आवश्यक नहीं है ।

सप्तम्यन्त पद अन्य सुबन्त के साथ समास पाता है, यदि उस समस्त पद से कोई संज्ञा बननी हो—वनेचरः युधिष्ठिरः । यहाँ भी सप्तमी का लोप नहीं होता ।

सप्तम्यन्त दिन और रात के अवयव और 'तत्र' अव्यय भूत- काल वाचक 'क्त' प्रत्यय के साथ समास पाते हैं—पूर्वाह्णे·कृतम् = पूर्वाह्णकृतम् । ऐसे ही—अपररात्रसुप्तम् । उषः प्रबुद्धम् । तत्रभु- क्तम् । तत्रपीतम्, इत्यादि । अहनि दृष्टम् । रात्रौ सुप्तम् । यहाँ दिन और रात के अवयव न होने से समास नहीं हुआ ।

सप्तम्यन्त सुबन्त भूतकाल वाचक 'क्त' प्रत्ययान्त के साथ समास पाता है, यदि वाक्य से निन्दा पाई जावे । उदके विशीर्णम् । भस्मनिहुतम् । पानी में बखेरना और भस्म में होम करना निष्फल होने से निन्दास्पद हैं । यहाँ भी सप्तमी का लोप नहीं होता ।

हलन्त और अकारान्त शब्दों से परे समास में सप्तमी का लोप नहीं होता, यदि समास होकर संज्ञा बनती हो ।

हलन्त—युधिष्ठिरः । त्वचिसारः । इत्यादि ।

अकारान्त—वनेचरः । अरण्येतिलकः । इत्यादि ।

'ज' शब्द उत्तरपद में हो तो प्रावृट्, शरद्, काल और दिव् शब्द की सप्तमी का लोप न हो—

प्रावृषिजः । शरदिजः । कालेजः । दिविजः ।

८—नञ्तत्पुरुष

'न' यह निषेध आदि अर्थवाचक अव्यय सुबन्त के साथ समास पाता है और तत्पुरुष कहलाता है ।

यदि 'न' से आगे हलादि उत्तरपद हो तो नमुचि, नकुल, नख, नपुंसक, नक्षत्र, नक्र और नग इन शब्दों को छोड़कर उसके नकार का लोप होजाता है । यथा—न ब्राह्मणः = अब्राह्मणः । न पण्डितः = अपण्डितः । न कर्म = अकर्म । न ज्ञः = अज्ञः । इत्यादि ।

यदि 'न' से आगे अजादि उत्तरपद हो तो नासत्य और नाक शब्दों को छोड़कर उसके स्थान में 'अन्' आदेश हो जाता है—न अश्वः = अनश्वः । न ईशः = अनीशः । न उष्ट्रः = अनुष्ट्रः । न ऋतः = अनृतः । इत्यादि ।

कर्मधारय

जिस तत्पुरुष समास में दोनों पद समानाधिकरण हों अर्थात् समान लिङ्ग, वचन और विभक्तिवाले हों उसको कर्मधारय समास कहते हैं, इसके सात भेद हैं—

[१] विशेषणपूर्वपद [२] विशेष्यपूर्वपद [३] विशेषणोभयपद [४] उपमानपूर्वपद [५] उपमानोत्तरपद [६] सम्भावनापूर्वपद [७] अवधारणापूर्वपद ।

१—विशेषणपूर्वपद

जिसमें विशेषण विशेष्य से पहले रहे, उसको विशेषणपूर्व-पद कहते हैं ।

विशेषण अपने विशेष्य के साथ बहुत करके समास पाता है । यथा—नीलम् उत्पलम्=नीलोत्पलम् । कृष्णः सर्पः= कृष्णसर्पः । रक्तालता=रक्तलता । बहुल कहने से कहीं नहीं भी होता, जैसे—रामो जामदग्न्यः । कृष्णो वासुदेवः । कहीं विकल्प से होता है—नीलम् वस्त्रम्, नीलवस्त्रम् ।

सत, महत्, परम, उत्तम और उत्कृष्ट शब्द पूज्यमान पदों के साथ समास पाते हैं—सत् वैद्यः=सद्वैद्यः । महान् वैयाक-रणः=महावैयाकरणः । ऐसे ही परमभक्तः । उत्तमपुरुषः । उत्कृ-ष्टबोधः ।

कतर और कतम शब्द जातिवाचक शब्द के साथ प्रश्नार्थ में समास पाते हैं—कतरः कठः=कतरकठः=कौनसा कठ? कतमः कलापः=कतमकलापः=कौनसा कलाप?

'किम्' सर्वनाम विशेष्यपद के साथ निन्दार्थ में समास पाता है । किंराजा यो न रक्षति=वह कैसा राजा जो रक्षा नहीं करता । किंसखा योऽभिद्रुह्यति=वह कैसा मित्र जो द्रोह करता है ।

पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य, मध्य, मध्यम और वीर शब्द विशेष्य पद के साथ समास पाते हैं—पूर्ववैयाकरणः । अपराध्यापकः । प्रथमवैदिकः । चरमोऽध्यायः । जघन्यजातिः । मध्यकौमुदी । मध्यमवयः । वीरपुत्रः ।

एक, सर्व, जरत्, पुराण, नव और केवल शब्द विशेष्य पद के साथ समास पाते हैं—एकशिष्यः । सर्वजनः । जरद्गवः । पुराणावसथम् । नवान्नम् । केवलवैयाकरणः ।

पाप और अणक शब्द कुत्सित विशेष्य पद के साथ समास पाते हैं, पापनापितः। अणककुलालः।

२ – विशेष्यपूर्वपद

जिसमें विशेष्य विशेषण से पूर्व रहें, उसे विशेष्य पूर्वपद कहते हैं।

विशेष्य पद निन्दाबोधक विशेषण पद के साथ समास पाते हैं। जैसे – वैयाकरणखसूचिः। मीमांसकदुर्दुरूढः। अध्वर्युस-र्वान्नीनः। ब्रह्मचार्युदरम्भरिः।

पोटा, युवति, स्तोक, कतिपय, गृष्टि, धेनु, वशा, वेहत्, वष्कयणी, प्रवक्तृ, श्रोत्रिय, अध्यापक और धूर्त इन पदों के साथ जातिवाचक शब्दों का समास होता है इभपोटा। इभयुवतिः।

अग्निस्तोकः। उदश्वित्कतिपयम्। गोगृष्टिः। गोधेनुः। गोवशा। गोवेहत्। गोवष्कयणी। कठप्रवक्ता। कठश्रोत्रियः। कठाध्यापकः। कठधूर्तः।

स्तुतिसूचक विशेषणों के साथ जातिवाचक विशेष्य का समास होता है, गोप्रशस्ता। नारीसुशीला इत्यादि।

विशेष्य 'युवन' शब्द विशेषण खलति, पलित, वलिन और जरती शब्दों के साथ समस्त होता है। युवखलतिः। युवपलिता। युववलिना। युवजरती।

कुमारी शब्द श्रमणादि शब्दों के साथ समास पाता है। कुमारी—श्रमणा। कुमारगर्भिणी।

गर्भिणी शब्द के साथ चतुष्पाद् जातिवाचक शब्द समास पाते हैं – गोगर्भिणी। अजागर्भिणी। इत्यादि।

३—विशेषणोभयपद

जिसके दोनों पद विशेषण वाचक हों, वह विशेषणोभयपद कहलाता है।

पूर्वकालिक विशेषण पद अपरकालिक विशेषण पदों के साथ समास पाते हैं। पूर्व स्नातः—पश्चादनुलिप्तः=स्नातानुलिप्तः= पहले स्नाया और पीछे अनुलेप किया। ऐसे ही भुक्तानुसुप्तः। पीतप्रतिबद्धः। इत्यादि।

नञ् विशिष्ट 'क्त' प्रत्ययान्त के साथ नञ् रहित 'क्त' प्रत्ययान्त का समास होता है। कृतञ्च—अकृतञ्च तद्=कृताकृतम्। इसी प्रकार गतागतम्। उक्तानुक्तम्। स्थितास्थितम्। दृष्टादृष्टम्। इत्यादि।

कृत्यप्रत्ययान्त और तुल्यार्थक शब्द अजातिवाचक पद के साथ समास पाते हैं—

कृत्यान्त—भोज्योष्णम्। पानीयशीतलम्।

तुल्यार्थक—तुल्यारुणः। सदृशश्वेतः। समानपिङ्गलः।

वर्णवाचक पद अपने समानाधिकरण अन्य वर्ण वाचक पद के साथ समास पाता है। कृष्णसारङ्गः। लोहितरक्तः। इत्यादि।

मयूरव्यंसक आदि समानाधिकरण शब्द कर्मधारय समास में निपातन किये गये हैं। मयूरव्यंसकः। अकिञ्चनः। कांदिशीकः। इत्यादि।

४—उपमानपूर्वपद

उपमानवाचक शब्द जिसके पूर्वपद में रहे, वह उपमानपूर्वपद कहलाता है।

उपमानवाचकपद उपमेय वाचक पद के साथ समास पाते हैं। घन (इव) श्यामः=घनश्यामः। ऐसे ही इन्दुवदनः। तमालनीलः। कर्पूरगौरः। इत्यादि

५—उपमानोत्तरपद

उपमानवाचक शब्द जिसके उत्तरपद में हो, उसे उपमानोत्तरपद कहते हैं।

उपमेयवाचक शब्द व्याघ्रादि उपनामवाची शब्दों के साथ समास पाते हैं, यदि उनका स्वाभाविक धर्म क्रूरत्वादि विवक्षित न हो। पुरुषः व्याघ्र (इव)=पुरुषव्याघ्रः। ऐसे ही नृसिंहः। मुखपद्मम्। करकिसलयम्। इत्यादि

६—सम्भावनापूर्वपद

जिसमें सम्भावना पाई जाय ऐसा विशेषण अपने विशेष्य के साथ समास पाता है। गुण (इति) बुद्धिः=गुणबुद्धिः। आलोक (इति) शब्दः=आलोकशब्दः।

७—अवधारणापूर्वपद

जिसमें अवधारणा पाई जाय ऐसा विशेषण पद भी अपने विशेष्य पद के साथ समास पाता है। विद्या (एव) धनम्= विद्याधनम्। ऐसे ही तपोबलम्। क्षमाशस्त्रम्। इत्यादि

द्विगु

जिस तत्पुरुष के संख्यावाचक शब्द पूर्वपद में हो वह द्विगु कहाता है। द्विगु समास दो प्रकार का है (१) एकवद्भावी (२) अनेकवद्भावी। समाहार अर्थ में जो द्विगु होता है, वह एकवद्भावी कहलाता है और उसमें सदा नपुंसकलिङ्ग और एकवचन होता है। यथा—त्रीणि शृङ्गाणि समाहृतानि= त्रिशृङ्गम्। पञ्चानां नदीनां समाहारः=पञ्चनदम्। संज्ञा में जो द्विगु होता है वह अनेकवद्भावी कहलाता है, इसमें वचन और लिङ्ग का कोई नियम नहीं है। त्रयो लोकाः=त्रिलोकाः। चतस्रो दिशः=चतुर्दिशः। सप्त ऋषयः=सप्तर्षयः। इत्यादि

तत्पुरुष में समासान्त प्रत्यय।

राजन्, अहन् और सखि शब्द जिसके अन्त में हों ऐसा तत्पुरुष अकारान्त हो जाता है। अधिराजः। उत्तमाहः। परमसखः।

अंगुलिशब्दान्त तत्पुरुष यदि संख्यावाचक शब्द वा अव्यय उसके आदि में हो तो अकारान्त होजाता है । द्व्यङ्गुलम् । दशाङ्गुलम् । निरङ्गुलम् ॥

अहन्, सर्व, पूर्व, अपर, मध्य, उत्तर, सख्यात और पुण्य ये शब्द जिसके आदि में हों, ऐसा रात्रिशब्दान्त तत्पुरुष अकारान्त होता है । अहोरात्रः । सर्वरात्रः । पूर्वरात्रः । अपररात्रः । मध्यरात्रः । उत्तररात्रः । संख्यातरात्रः । पुण्यरात्रः ।

संख्या जिसके पूर्व में हो ऐसा रात्रि शब्द नपुंसकलिङ्ग होता है – द्विरात्रम् । त्रिरात्रम् । इत्यादि

सर्व, पूर्व, अपर, मध्य, उत्तर, तथा संख्यावाचक शब्द और अव्यय से परे 'अहन्' शब्द को तत्पुरुष समास में 'अह्न' आदेश होता है – सर्वाह्णः । पूर्वाह्णः । अपराह्णः । मध्याह्नः । उत्तराह्णः । द्व्यह्नः । त्र्यह्नः । अत्यह्नः । इत्यादि । परन्तु समाहारद्विगु में 'अह्न' आदेश नहीं होता । द्वयोरह्नोः समाहारः = द्व्यहः । त्र्यहः । पुण्य और एक शब्द से परे भी 'अहन्' शब्द को 'अह्न' आदेश नहीं होता । पुण्याहम् । एकाहः ।

ग्राम और कौट शब्दों से परे तक्षन् शब्द तत्पुरुष समास में अकारान्त होजाता है । ग्रामस्य तक्षा = ग्रामतक्षः । कौटतक्षः ।

द्वि और त्रि शब्दों से परे अञ्जलि शब्द द्विगु समास में विकल्प से अकारान्त होता है – द्व्यञ्जलम्, द्व्यञ्जलि । त्र्यञ्जलम्, त्र्यञ्जलि ।

समानाधिकरण विशेष्य उत्तरपद में हो तो तत्पुरुष समास में (महत्) शब्द अकारान्त होजाता है । महादेवः । महाबाहुः । महाबलः ।

द्वि और अष्टन् शब्द शत संख्या से पूर्व तत्पुरुषसमास में आकारान्त होते हैं, बहुब्रीहि समास में वा अशीति शब्द परे हो तो नहीं होते । द्वादश । द्वाविंशतिः । द्वात्रिंशत् । अष्टादश ।

अष्टाविंशतिः। अष्टात्रिंशत्। इत्यादि। शतसंख्या से आगे नहीं होता। द्विशतम्। अष्टसहस्रम्। बहुव्रीहि में भी नहीं होता। द्वित्राः। 'अशीति' शब्द उत्तरपद में हो तब भी नहीं होता। द्व्यशीतिः।

'त्रि' शब्द को उक्त विषय में 'त्रयः' आदेश होता है। त्रयोदशः। त्रयोविंशतिः। त्रयस्त्रिंशत्। शतसंख्या से आगे। त्रिशतम्। त्रिसहस्रम्। बहुव्रीहि में त्रिदश=त्रिदशाः। अशीति में त्र्यशीतिः।

अष्टन्, द्वि और त्रि शब्दों से चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति और नवति शब्द परे हों तो उनको क्रम से अष्टा, द्वा और त्रयस् आदेश विकल्प से होते हैं। द्वाचत्वारिंशत्, द्विचत्वारिंशत्। अष्टापञ्चाशत्,अष्टपञ्चाशत्। त्रयःषष्टि, त्रिषष्टिः। इत्यादि

बहुव्रीहि।

बहुव्रीहि समास सात प्रकार का है [१] द्विपद [२] बहुपद [३] सहपूर्वपद [४] संख्योत्तरपद [५] संख्योभयपद [६] व्यतिहारलक्षण [७] दिगन्तराललक्षण।

१ – द्विपद

दो पदों की अपेक्षा से जो समास होता है, उसे द्विपद बहुव्रीहि कहते हैं।

प्रथमान्त विशेष्य और विशेषण पद एक प्रथमा विभक्ति को छोड़कर और सब विभक्तियों के अर्थ में समास पाते हैं।

द्वितीया – प्राप्तम् उदकम् (यं सः) प्राप्तोदकः=ग्रामः।

तृतीया – जितः मन्मथः (येन सः) जितमन्मथः=शिवः।

चतुर्थी – दत्तः मोदकः (यस्मै सः) दत्तमोदकः=शिशुः।

पञ्चमी – उद्धृता ओदना [यस्याःसा] उद्धृतौदना = स्थाली
षष्ठी – काषायम् अम्बरम् [यस्य सः] काषायाम्बरः = भिक्षुः
सप्तमी – वीराः पुरुषा [यस्यां सा] वीरपुरुषा = नगरी।

'प्र' आदि उपसर्गों के साथ धातुज सुबन्त की मध्यस्थता में सुबन्त का समास होकर मध्यस्थ धातुज सुबन्त का लोप हो जाता है।

प्र – पतितानिपर्णानि [यस्य सः] प्रपर्णः = वृक्षः
उद् – गताः तरङ्गाः [यस्मात्सः] उत्तरङ्गः = ह्रदः
निर् – गता लज्जा [यस्य सः] निर्लज्जः = कामुकः

'नञ्' के साथ सत्तार्थवाचक शब्दों के योग में सुबन्त का समास होकर सत्तार्थवाचक शब्दों का लोप होजाता है।

न – अस्ति पुत्रः [यस्य सः] अपुत्रः = पुत्रहीनः
न – विद्यतेभार्या [यस्य सः]"अभार्यः = स्त्रीरहितः
न – वर्त्तते धनम् [यस्य सः] अधनः = दरिद्रः

२ – बहुपद

साधनदशा में, दो से अधिक पदों का जो समास होता है, उसे बहुपद बहुव्रीहि कहते हैं। इसमें भी प्रथमान्त विशेष्य और विशेषण पद एक प्रथमा विभक्ति को छोड़कर और सब विभक्तियों के अर्थ में समास पाते हैं।

अधिकः – उन्नतः अंसः [यस्य सः] अधिकोन्नतांसः = पुष्टः
परमा – स्थूला दृष्टिः [यस्य सः] परमस्थूलदृष्टिः = मूर्खः
पराक्रमेण उपार्जिता सम्पत् [येन सः] पराक्रमोपार्जितसम्पत्

३ – सहपूर्वपद

'स' अव्यय तृतीयान्त पद के साथ समान संयोग अर्थ में समास पाता है और 'सह' को 'स' आदेश भी हो जाता है, परन्तु आशीर्वाद अर्थ में [सह] को [स] आदेश नहीं होता—सह

पुत्रेण=सपुत्रः। ऐसेही सभार्यः। सानुजः। सकर्मकः। सलोमकः। सपरिच्छदः। इत्यादि, आशीर्वाद में—सह पुत्राय सहामात्याय राज्ञे स्वस्ति।

४—संख्येयोत्तरपद

संख्येय के साथ अव्यय तथा आसन्न, अदूर और अधिक शब्द समास पाते हैं।

उपदशाः=दश के समीप [नौ या ग्यारह]

आसन्नविंशाः=बीस के निकट [उन्नीस या इक्कीस]

अदूरत्रिंशाः=तीस के पास (उनतीस या इकतीस)

अधिकचत्वारिंशाः=चालीस से अधिक (अड़तालीस तक)

५—संख्येयोभयपद

संख्येय के साथ जो संख्या का समास होता है वह संख्योभयपद कहाता है अर्थात् इसके दोनों पद संख्यावाचक होते हैं।

द्वौ [वा] त्रयः (वा) द्वित्राः=दो वा तीन

पञ्च [वा] षट् (वा) पञ्चशाः=पाँच वा छः

द्वाभ्याम् अधिकाः दश=द्विदशाः=बारह

त्रिभिः (आवृत्ताः) दश=त्रिदशाः=तीस

६—व्यतिहारलक्षण

परस्पर दो पदार्थों के संघर्षण को व्यतिहार कहते हैं। इस अर्थ में जो समास होता है उसको व्यतिहारलक्षण कहते हैं।

समान रूप सप्तम्यन्त दो पद ग्रहण अर्थ में और समान रूप ही तृतीयान्त दो पद प्रहार अर्थ में समास पाते हैं, समास होकर पूर्वपद को दीर्घादेश हो जाता है। ग्रहण—केशेषु केशेषु गृहीत्वा प्रवृत्तम्=केशाकेशि=युद्धम्। प्रहार—दण्डैः दण्डैः प्रहृत्य प्रवृत्तम्=दण्डादण्डि=युद्धम्।

एक दूसरे के केशों को पकड़कर जो युद्ध होता है, उसे केशा-केशि और एक दूसरे पर दण्ड का प्रहार करते हुवे जो युद्ध होता है, उसे दण्डादण्डि कहते हैं।

७—दिगन्तराललक्षण

दिशाओं के मध्य को दिगन्तराल कहते हैं, वह जिससे जाना जाय उसको दिगन्तराललक्षण समास कहते हैं।

दिशाओं के नाम यदि उनका अन्तराल [मध्य] वाच्य हो तो समास पाते हैं।

दक्षिणस्याः – पूर्वस्याः	[दिशोर्यदन्तरालंसादिक्]			दक्षिणपूर्वा
उत्तरस्याः – पूर्वस्याः	"	"	"	उत्तरपूर्वा
उत्तरस्याः – पश्चिमायाः	"	"	"	उत्तरपश्चिमा
दक्षिणस्याः – पश्चिमायाः	"	"	"	दक्षिणपश्चिमा

बहुव्रीहि में समासान्त प्रत्यय

जिन स्त्रीवाचक शब्दों से पुरुष की विवक्षा हो, वे बहुव्रीहि समास में समानाधिकरण पद के परे रहते पुंवत् हो जाते हैं। चित्रा गावो यस्य सः = चित्रगुः। दर्शनीया भार्या यस्य सः दर्शनीयभार्यः।

जिस बहुव्रीहि समास के अन्त में पूरण प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग अथवा प्रमाणी शब्द हो, वह अकारान्त हो जाता है कल्याणी पञ्चमी [यासां सा] कल्याणपञ्चमा = रात्रिः। स्त्री — प्रमाणी यस्य सः। स्त्रीप्रमाणः = पुरुषः

ई, ऊ, ऋ ये जिसके अन्त में हों ऐसे बहुव्रीहि समास से 'क' प्रत्यय होता है और पूर्वपद का रूप पुंलिङ्ग के समान हो जाता है।

ई—कल्याणी पञ्चमी [यस्य सः] कल्याणपञ्चमीकः = पक्षः
ऊ—प्रिया सुभ्रू " " प्रियसुभ्रूकः = पुरुषः
ऋ—बहवः—कर्त्तारः " " बहुकर्त्तृकः = पटः

संख्येय में जो बहुव्रीहि होता है, वह अकारान्त होता है। यथा—उपदशाः। आसन्नविंशाः। इत्यादि

जिस बहुव्रीहि समास के अन्त में प्राण्यङ्गवाचक सक्थि और अक्षि शब्द हों, वह भी अकारान्त होता है—दीर्घसक्थः। कमलाक्षः। प्राण्यङ्ग से अन्यत्र—दीर्घसक्थि शकटम्। स्थूलाक्षा यष्टिः।

काष्ठवाचक अंगुलिशब्दान्त बहुव्रीहि भी अकारान्त होता है—पञ्चांगुलं दारु। काष्ठ से अन्यत्र—पञ्चाङ्गुलिर्हस्तः।

द्वि और त्रि शब्द से परे मूर्ध्न शब्द भी बहुव्रीहि समास में अकारान्त होता है—द्विमूर्धः। त्रिमूर्धः।

अन्तर् और बहिस् शब्द से परे लोम शब्द भी बहुव्रीहि समास में अकारान्त होता है—अन्तर्लोमः। बहिर्लोमः।

न तथा दुस् और सु अव्ययों से परे प्रजा और मेधा शब्द बहुव्रीहि समास में विसर्गान्त हो जाते हैं। अप्रजाः। दुष्प्रजाः। सुप्रजाः। अमेधाः। दुर्मेधाः। सुमेधाः।

धर्म शब्दान्त बहुव्रीहि द्विपदसमास में आकारान्त हो जाता है—कल्याणं धर्मोऽस्येति = कल्याणधर्मा। अहिंसाधर्मा। सत्यधर्मा।

सु, हरित, तृण और सोम इन शब्दों से परे जम्भ शब्द भी बहुव्रीहि समास में आकारान्त होता है—सुष्ठु जम्भोऽस्य = सुजम्भा। हरितजम्भा। तृणजम्भा। सोमजम्भा। जम्भ दन्त और भक्ष्य का नाम है।

कर्मव्यतिहार में जो बहुव्रीहि समास होता है, वह इकारान्त हो जाता है—केशाकेशि। दण्डादण्डि। नखानखि। इत्यादि

प्र और सम् उपसर्गों से परे बहुव्रीहि समास में 'जानु' शब्द को 'ज्ञु' आदेश होता है। प्रगते जानुनी यस्य सः प्रज्ञुः। सङ्गते जानुनी यस्य सः संज्ञुः।

'ऊर्ध्व' शब्द से परे 'जानु' शब्द को उक्त समास में 'ज्ञु' आदेश विकल्प से होता है—ऊर्ध्वे जानुनी यस्य सः, ऊर्ध्वज्ञुः, ऊर्ध्वजानुः।

यदि बहुव्रीहि समास के अन्त में 'धनुस्' शब्द हो तो उसको 'धन्वा' आदेश हो जाता है परन्तु संज्ञा में विकल्प से होता है—शार्ङ्गं धनुर्यस्य सः शार्ङ्गधन्वा। गाण्डीवधन्वा। संज्ञा में—शतानि धनूंषि यस्य सः=शतधन्वा, शतधनुः।

यदि बहुव्रीहि समास के अन्त में 'जाया' शब्द हो तो उसको "जानि' आदेश हो जाता है—युवतिः जाया यस्य=युवजानिः। प्रियजानिः। कर्कशजानिः।

उत्, पूति, सु और सुरभि इन शब्दों से परे गन्ध शब्द को बहुव्रीहि समास में इकारादेश होता है।
उद्गतः गन्धः [यस्य सः]=उद्गन्धिः। सुष्ठु गन्धः [यस्य सः]=सुगन्धिः। पूतिगन्धिः। सुरभिगन्धिः।

उपमानवाचक शब्द से परे भी गन्ध शब्द बहुव्रीहि समास में इकारान्त होता है—पद्मस्येव गन्धो यस्य सः पद्मगन्धिः। रसालगन्धिः।

हस्तिन् आदि शब्दों के अतिरिक्त यदि उपमान वाचक शब्दों से परे पाद शब्द हो तो उसके अकार का लोप होता है। व्याघ्रपात्। काष्ठपात् इत्यादि। हस्त्यादि में नहीं होता—हस्तिपादः। अश्वपादः। अजपादः। इत्यादि

संख्या और सु जिसके पूर्व में हों, ऐसे पाद शब्द के अकार का भी लोप होता है—द्विपात्। त्रिपात्। चतुष्पात्। सुपात्।

संख्या और सु पूर्वक 'दन्त' शब्द को वयोनिर्धारण अर्थ में 'दन्' आदेश होता है—द्विदन्। चतुर्दन्। षोडन्। 'षट्' को 'षो' आदेश हो जाता है। सुदन्। वयोनिर्धारण से अन्यत्र—द्विदन्तः। सुदन्तः।

सु और दुर् उपसर्ग से आगे हृदय शब्द को बहुव्रीहि समास में मित्र और अमित्र वाच्य हों तो 'हृत्' आदेश होता है। सुहृत्=मित्रम्। दुर्हृत्=शत्रुः। अन्यत्र—सुहृदयः। दुर्हृदयः।

जिस बहुव्रीहि समास के अन्त के उरस्, सर्पिस्, पुंस्, अनडुह्, पयस्, नौ और लक्ष्मी शब्द हों, उससे 'क' प्रत्यय होता है—विशालोरस्कः। प्रियसर्पिष्कः। दृढपुंस्कः। स्वनडुत्कः। सुपयस्कः। आसन्ननौकः बहुलक्ष्मीकः।

नञ् से परे जो अर्थ शब्द उसको भी बहुव्रीहि समास में 'क' प्रत्यय होता है—अनर्थकम्। नञ् से अन्यत्र अपार्थम्, अपार्थकम्। विकल्प से होगा।

'इन्' प्रत्यय जिसके अन्त में हो, ऐसे बहुव्रीहि से भी स्त्रीलिंग में 'क' प्रत्यय होता है—बहवोवाग्मिनः [यस्यां सा] बहुवाग्मिका=सभा। बहवो दण्डिनः [यस्यां सा]=बहुदण्डिका=नगरी।

जिन शब्दों से बहुव्रीहि समास में कोई समासान्त प्रत्यय न हुआ हो उनसे 'क' प्रत्यय विकल्प से होता है। महत् यशः [यस्य सः]=महायशस्कः, महायशाः। सुमनस्कः, सुमनाः। प्राप्तफलकः, प्राप्तफलः। इत्यादि

'क' प्रत्यय आगे हो तो आकारान्त स्त्रीलिङ्ग को बहुव्रीहि समास में विकल्प से ह्रस्व होता है। बहुमालाकः, बहुमालकः [क] के अभाव में बहुमालः।

बहुव्रीहि समास होकर जो संज्ञा बनती है, उससे 'क' प्रत्यय नहीं होता। विश्वे देवाः [यस्य सः] विश्वदेवः। सर्वदक्षिणः।

'ईयस्' प्रत्यय जिनके अन्त में हो ऐसे बहुव्रीहि समास से भी 'क' प्रत्यय नहीं होता। बहवः श्रेयांसः [यस्य सः] बहुश्रेयान्। बहुश्रेयान्। इत्यादि

भ्रातृ शब्दान्त बहुव्रीहि से पूजा अर्थ में 'क' प्रत्यय नहीं होता। सुभ्राता। धर्मभ्राता। अन्यत्र मूर्खभ्रातृकः।

जिस बहुव्रीहि समास के अन्त में स्वाङ्गवाचक नाड़ी और तन्त्री शब्द हों उसमें भी 'क' प्रत्यय नहीं होता—बहव्यः नाड्यः [यस्य सः] बहुनाडिः=कायः। बहुतन्त्री=ग्रीवा। स्वाङ्ग से भिन्न। बहुनाडीकः=स्तम्भः। बहुतन्त्रीका=वीणा।

४—द्वन्द्व

द्वन्द्व समास के ३ भेद हैं [१] इतरेतरयोग [२] समाहार। [३] एकशेष।

१—इतरेतरयोग

जिसमें दो वा अधिक पदों का क्रिया की अपेक्षा से परस्पर योग होता है, उसे इतरेतरयोग कहते हैं। इसमें यदि दो पदों की उक्ति हो तो द्विवचन और अनेक पदों की उक्ति में बहुवचन होता है। लिङ्ग जो पर का होता है, वही समस्त पद का भी रहता है—स्त्री च पुरुषश्च=स्त्रीपुरुषौ। दीप्तिश्च भगश्च यशश्च=दीप्तिभगयशांसि।

इतरेतर योग समास में इकारान्त और उकारान्त शब्दों का पूर्व प्रयोग करना चाहिये—हरिहरौ। मृदुक्रूरौ। यदि समास में अनेक इकारान्त और उकारान्त पद हों तो उनमें से एक में ही यह नियम समझना चाहिये, सबमें नहीं—पटुमृदुशुक्लाः, पटुशुक्लमृदवः।

जिस पद के आदि में अच् और अन्त में अकार हो उसका भी इतरेतर द्वन्द्व में पूर्व प्रयोग होता है—इन्द्रवरुणौ। उष्ट्रखरौ।

जहाँ अजादि अकारान्त, इकारान्त और उकारान्त शब्दों का समास हो, वहाँ अजादि अकारान्त का ही पूर्वप्रयोग होता है। इन्द्राग्नी। इन्द्रवायू।

यदि अल्पाच् और अधिकाच् शब्दों का परस्पर द्वन्द्वसमास हो तो अल्पाच् शब्द पूर्व रहता है—शिववैश्रवणौ। नागार्जुनौ। इत्यादि

समानाक्षर ऋतु और नक्षत्रों के समास में यथाक्रम शब्दों का प्रयोग होना चाहिये—हेमन्तशिशिरवसन्ताः। चित्रास्वाती। असमानाक्षरों में यह नियम नहीं है—ग्रीष्मवसन्तौ। पुष्यपुनर्वसू। इत्यादि

लघ्वक्षर और दीर्घाक्षर पदों के समास में लघ्वक्षर पद का पूर्व प्रयोग होता है—कुशकाशम्। शरचापम्।

वर्णवाचक पदों के द्वन्द्वसमास में यथाक्रम शब्दों का प्रयोग होता है—ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः। ब्राह्मणक्षत्रियौ। क्षत्रियवैश्यौ। वैश्यशूद्रौ।

ज्येष्ठ और कनिष्ठ भ्राताओं के इतरेतरयोग में ज्येष्ठ भ्राता का पूर्व प्रयोग होता है। रामलक्ष्मणौ। युधिष्ठिरार्जुनौ।

संख्यावाचक शब्दों के द्वन्द्व में अल्प संख्या का पूर्व प्रयोग होता है। एकादश। द्वादश। द्वित्राः। त्रिचतुराः। पञ्चषाः। इत्यादि

२—समाहारद्वन्द्व

जिसमें अवयवी के समूहवाचक पदों का क्रिया की अपेक्षा से समास होता है, उसे समाहारद्वन्द्व कहते हैं। इसमें सदा नपुंसक लिङ्ग और एकवचन होता है।

प्राणि, तूर्य और सेना के अङ्गों का जो परस्पर समास होता है, वह एकवचनान्त हो जाता है।

प्राण्यङ्ग—पाणी च पादौ च=पाणिपादम् । मुखनासिकम् ।
तूर्याङ्ग—मार्दङ्गिकपाणविकम् । भेरीपटहम् ।
सेनाङ्ग—रथिकाश्वारोहम् । असिचर्मपट्टिशम् ।

जिन ग्रन्थों का पठन पाठन अति समीप होता हो अर्थात् एक के बाद दूसरा पढ़ा जाता हो, उनके समाहारद्वन्द्व में भी एकवचन होता है—शिक्षाव्याकरणम् । काव्यालङ्कारम् । इत्यादि

प्राणिवर्ज्जित जातिवाचक सुबन्तों के द्वन्द्वसमास में भी एकवचन होता है—धानाशष्कुलि । मोदकापूपम् । शय्यासनम् ।

भिन्न लिंगस्थ नदीवाचक और देशवाचक पदों के समाहार-द्वन्द्व में भी एकवचन होता है—गङ्गाशोणम् । मिथिलामगधम् । समान लिङ्गों में नहीं होता—गङ्गायमुने । मद्रकेकयाः । इत्यादि

क्षुद्रजन्तुवाचक पदों के समाहारद्वन्द्व में भी एकवचन होता है—यूकालिक्षम । क्रमिकीटम् । दंशमशकम् । इत्यादि

जिन जन्तुओं का परस्पर स्वाभाविक वैर होता है, उनके समाहारद्वन्द्व में भी एकवचन होता है—अहिनकुलम् । मूषिक-मार्जारम् । काकोलूकम् । गोव्याघ्रम ।

जो पंक्ति से बाह्य न हों ऐसे शूद्रों के समाहारद्वन्द्व में भी एकवचन होता है—तक्षायस्कारम् । स्वर्णकारकुलालम् । अन्त्यजों के समास में नहीं होता । चर्मकारचाण्डालौ ।

गवाश्व आदिक शब्द समाहारद्वन्द्व में एकवचनान्त निपातन किये गये हैं—गवाश्वम् । अजाविकम् । स्त्रीकुमारम् । उष्ट्र-खरम् । यकृन्मेदः । दर्भशरम् । तृणोपलम् । इत्यादि

वृक्ष, मृग, तृण, धान्य, व्यञ्जन, पशु और पक्षी इन अर्थों के वाचक तथा अश्व, वडव, पूर्वापर और अधरोत्तर इन पदों के समाहारद्वन्द्व में एकवचन विकल्प से होता है ।

वृक्ष—प्लक्षन्यग्रोधम्, प्लक्षन्यग्रोधौ ।

मृग—रुरुपृषतम्, रुरुपृषतौ ।

तृण — कुशकाशम् , कुशकाशौ ।

धान्य — व्रीहियवम् , व्रीहियवौ ।

व्यञ्जन — दधिघृतम् , दधिघृते ।

पशु — गोमहिषम् , गोमहिषौ ।

पक्षी — शुकवकम् , शुकवकौ । अश्ववडवम् , अश्ववडवौ । पूर्वापरम् , पूर्वापरे । अधरोत्तरम् , अधरोत्तरे ।

फल, सेना, वनस्पति, मृग, पक्षी, क्षुद्रजन्तु, धान्य और तृण इन अर्थों के वाचक शब्दों को बहुत्व की विवक्षा में ही एकवचन होता है, एकत्व और द्वित्व की विवक्षा में नहीं । बदराणि च आमलकानि च = बदरामलकम् । हस्तिनः अश्वाश्च = हस्त्यश्वम् । ऐसे ही प्लक्षन्यग्रोधम् । रुरुपृषतम् । शुकवकम् । व्रीहियवम् । कुशकाशम् । बहुत्व से भिन्न एकत्व और द्वित्व की विवक्षा में — बदरामलके । हस्त्यश्वौ । इत्यादि ।

परस्पर विरुद्धार्थ दो शब्दों के [यदि वे किसी द्रव्य के विशेषण न हों] समाहारद्वन्द्व में भी विकल्प से एकवचन होता है — शीतोष्णम्, शीतोष्णे । सुखदुःखम् , सुखदुःखे । धर्माधर्मम् । धर्माधर्मौ । जहाँ किसी द्रव्य के विशेषण होंगे वहाँ — शीतोष्णे उदके ।

दधि, पयस् आदि शब्दों के समाहारद्वन्द्व में एकवचन नहीं होता — दधिपयसी । दीक्षातपसी । ऋक्सामे । वाङ्मनसी । इत्यादि

विद्या और योनि सम्बन्ध-वाचक ऋकारान्त शब्दों के ऋकार को उत्तरपद परे रहे तो द्वन्द्वसमास में आकारादेश होता है । विद्या — होतापोतारौ । नेष्टोद्गातारौ । योनि — मातापितरौ । पितापुत्रौ । इ०

वायुभिन्न देवतावाचक शब्दों के द्वन्द्वसमास में भी उत्तरपद के परे रहते पूर्वपद को आकारादेश होता है । सूर्याचन्द्रमसौ ।

मित्रावरुणौ। वायु शब्द के योग में नहीं होता—अग्निवायू । वाय्वग्नी ।

अग्नि शब्द को सोम और वरुण शब्द परे हों तो द्वन्द्व समास में ईकारादेश होता है—अग्नीषोमौ । अग्नीवरुणौ ।

दिव् शब्द को द्वन्द्वसमास में 'द्यावा' आदेश होता है—द्यावाभूमी । द्यावापृथिव्यौ ।

उषस् शब्द द्वन्द्व समास में आकारान्त होजाता है—उषसा-सूर्यम् ।

मातृ पितृ शब्दों को द्वन्द्व समास में विकल्प से 'मातर' 'पितर' आदेश होते हैं मातरपितरौ । मातापितरौ ।

च्, छ्, ज्, झ्, ञ्, द्, ष, ह्, ये जिसके अन्त में हों ऐसा समाहारद्वन्द्व अकारान्त हो जाता है—वाक्त्वचम् । त्वक्स्रजम् । शमीदृषदम् । वाक्त्विषम् । छत्रोपानहम् ।

३—एकशेष

जिसमें दो पदों का समास होने पर एक शेष रह जावे, उसे एकशेष कहते हैं ।

वृद्ध के साथ युवा का द्वन्द्व समास हो तो युवा का लोप होकर वृद्ध ही शेष रह जाता है—गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च= गार्ग्यौ । वृद्धश्च युवा च=वृद्धौ ।

स्त्री के साथ पुरुष का समास हो तो स्त्री का लोप होकर पुरुष ही शेष रह जाता है । हंसीच हंसश्च=हंसौ ।

स्वसा और दुहिता के साथ क्रमशः भ्राता और पुत्र का समास हो तो स्वसा और दुहिता का लोप होकर भ्राता और पुत्र ही शेष रह जाते हैं । स्वसा च भ्राता च=भ्रातरौ । दुहिता च पुत्रश्च=पुत्रौ ।

माता के साथ पिता का और श्वश्रू के साथ श्वशुर का समास हो तो विकल्प से पिता और श्वशुर शेष रहते हैं । माताच

पिता च – पितरौ, मातापितरौ। श्वश्रू च श्वशुरश्च = श्वशुरौ श्वश्रूश्वशुरौ।

स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग के साथ यदि नपुंसकलिङ्ग का समास हो तो नपुंसकलिङ्ग शेष रहता है और उसको विकल्प से एकवचन होता है – शुक्लः पटः, शुक्ला शाटी, शुक्लं वस्त्रं, तदिदं शुक्लम्। तानीमानि शुक्लानि।

त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत् और किम् सर्वनाम शब्दों के साथ समास होने में शेष रहते हैं – सच देवदत्तश्च = तौ। यश्च यज्ञदत्तश्च = यौ। यदि उक्त सर्वनामों में हो परस्पर समास हो तो जो पर हो वह शेष रहे। सच यश्च = यौ। यश्च सच = तौ। यदि उक्त सर्वनामों में स्त्रीलिङ्ग और पुंलिङ्ग का समास हो तो पुंलिङ्ग शेष रहे। साच सच = तौ। यदि पुंलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग का समास हो तो नपुंसकलिङ्ग शेष रहता है – सच तच्च = ते। इ०

तरुणावस्था से भिन्न अनेक शफवाले ग्राम्य पशु समूह की विवक्षा में स्त्रीलिङ्ग शेष रहता है – गाव इमाः। अजा इमाः। ग्राम्य से भिन्न – रुरव इमे। पशु से भिन्न – ब्राह्मणा इमे। तरुणावस्था में – वत्सा इमे। एकशफ वालों में – अश्वाइमे।

समासों में शब्दों का परिवर्त्तन

'हृदय' शब्द को (हृत्) आदेश होता है यदि उससे आगे लेख और लास शब्द तथा यत् और अण् प्रत्यय हों – हृल्लेखः। हृल्लासः। हृद्यम्। हार्दम्।

शोक और रोग शब्द तथा ष्यञ् प्रत्यय परे रहे तो हृदय शब्द को 'हृत्' आदेश विकल्प से होता है – हृच्छोकः, हृदयशोकः। हृद्रोगः, हृदयरोगः। सौहृदय्यम्, सौहार्द्यम्।

पाद शब्द को 'पत्'आदेश होता है, यदि उससे आगे आजि,

आति, ग, उपहत और हति शब्द हों–पदाजिः। पदातिः। पदगः। पदोपहतः। पद्धतिः।

पाद शब्द से [यत्] प्रत्यय परे हो तो अतदर्थ में उसको 'पत्' आदेश होता है–पद्याः=शर्कराः कण्टका वा। तदर्थ में न होगा–पाद्यम्=पादार्थमुदकम्॥

घोष, मिश्र, शब्द और निष्क शब्द परे हों तो पाद शब्द को [पत्] आदेश विकल्प से होता है–पद्घोषः, पादघोषः। पन्मिश्रः, पादमिश्रः। पच्छब्दः, पादशब्दः। पन्निष्कः, पादनिष्कः।

उदक शब्द को [उद] आदेश होता है, चाहे वह किसी शब्द के पूर्व हो या उत्तर, यदि उससे कोई संज्ञा बनती हो। उदमेघः। उदधिः। क्षीरोदः। नीलोदः।

कुम्भ, पात्र, मन्थ, ओदन, सक्तु, बिन्दु, वज्र, भार, हार और ग्राह ये शब्द उत्तरपद में हों तो उदक शब्द को 'उद' आदेश विकल्प से होता है–उदकुम्भः, उदककुम्भः। उदपात्रम् उदकपात्रम्। उदमन्थः उदकमन्थः। उदौदनः, उदकौदनः। इत्यादि

कृदन्त उत्तरपद में हो तो रात्रि शब्द को विकल्प से अनुस्वार आदेश होता है। रात्रिंचरः, रात्रिचरः। रात्रिंमटः, रात्रिमटः। इत्यादि

संज्ञा, ग्रन्थ, अधिक और अनुमेय अर्थों में उत्तर पद परे हो तो 'सह' अव्यय को [स] आदेश होता है। संज्ञा—सपलाशम्। साश्वत्थम्। ग्रन्थ—सकलं ज्यौतिषम्। ससंग्रहं व्याकरणम्। अधिक–सलवणः सूपः। समिष्टं पायसम्। अनुमेय–साग्निधूमः। स दक्षिणेष्टिः। इ०

ज्योतिष्, जनपद, रात्रि, नाभि, नामन्, गोत्र, रूप, स्थान, वर्ण, वयस्, वचन और बन्धु ये शब्द उत्तरपद में हों तो 'समान' शब्द को भी [स] आदेश होजाता है–समानं ज्योतिः=सज्योतिः॥ समानो जनपदः=सजनपदः। समाना रात्रिः=सरात्रिः। ऐसे

ही सनाभिः। सनाम। सगोत्रः। सरूपः। सस्थानः। सवर्णः। सवयाः। सवचनः। सबन्धुः।

यत् प्रत्ययान्त तीर्थ और उदर शब्द परे हों तो भी (समान) शब्द को (स) आदेश होता है—

समानं तीर्थं यस्य सः = सतीर्थ्यः = सहाध्यायी। समानम् उदरं यस्य सः = सोदर्यः = भ्राता।

दृक् और दृश् शब्द परे हों तो भी समान को 'स' आदेश होता है—समाना दृक् यस्य सः = सदृक् वा सदृशः।

'इदम्' को 'ई' और 'किम्' को 'की' तथा यद्, तद् और एतद् सर्वनामों को आकार अन्तादेश होता है, यदि उनसे आगे दृक्, दृश् शब्द या वत् प्रत्यय हो। इदम्—ईदृक्। ईदृशः। इयान्। किम्—कीदृक्। कीदृशः। कियान्। यद्—यादृक्। यादृशः। यावान्। तद्—तादृक्। तादृशः। तावान्। एतद्—एतादृक्। एतादृशः। एतावान्। इदम् और किम् शब्दों से परे 'वत्' के वकार को यकार आदेश हो जाता है—इयान्। कियान्।

ऋक्, पुर्, अप्, धुर् और पथिन् शब्द समास में अकारान्त होते हैं। अर्द्धम् ऋचः = अर्द्धर्चः* अनृचः* बह्वृचः* छात्राणां पूः = छात्रपुरम्। राज्यस्य-धूः = राज्यधुरम्†। विमला-आपो-यस्य = विमलापं सरः। धर्मस्य-पन्थाः = धर्मपथम्।

द्वि, अन्तर् शब्द तथा अकारान्त भिन्न उपसर्ग से परे यदि 'अप्' शब्द हो तो उसको 'ईप्' आदेश होजाता है—द्विर्गता आपो यस्मिंस्तद् = द्वीपम्। जिस स्थल के दो ओर जल हो उसे

---

* ऋगन्त समास केवल अध्येता के अर्थ में ही अकारान्त होता है। यथा—अनृचः = वेदानभिज्ञः। बह्वृचः = श्रोत्रियः। अन्यत्र-अनृक् = साम। बह्वृक् = सूक्तम् होगा। † 'अक्ष' शब्द के परे 'धुर्' शब्द अकारान्त नहीं होता—अक्षस्य-धूः = अक्षधूः।

द्वीप कहते हैं। अन्तर्गता आपो यस्मिंस्तद्=अन्तरीपम्। जिसके भीतर जल हो अर्थात् जलाशय का नाम अन्तरीप है। समीपम्=निकट। प्रतीपम्=प्रतिकूल। सम् के योग में 'ईप' का अर्थ निकट, और प्रति के योग में प्रतिकूल होजाता है।

यदि देश अभिधेय हो तो [अनु] उपसर्ग से परे 'अप्' शब्द को 'ऊप' आदेश होता है—अनुगता आपोयस्मिन् स अनूपो देशः। जिस स्थल के चारों ओर जल हो उसको अनूप कहते हैं।

षष्ठी और तृतीया विभक्ति से भिन्न अन्य शब्द को यदि उससे आगे आशिस्, आशा, आस्था, आस्थित, उत्सुक, ऊति, कारक, राग, शब्द और ईय प्रत्यय हो तो अन्यद् आदेश होजाता है—अन्या-आशीः=अन्यदाशीः। अन्या-आशा=अन्यदाशा। ऐसे ही—अन्यदास्था। अन्यदास्थितः। अन्यदुत्सुकः। अन्यदूतिः। अन्यत्कारकः। अन्यद्रागः। अन्यदीयः। षष्ठी और तृतीया में न होगा—अन्यस्य-आशीः=अन्याशीः। अन्येनआस्थितः=अन्यास्थितः।

अर्थ शब्द उत्तरपद में हो तो 'अन्य' शब्द को विकल्प से [अन्यद्] आदेश होता है—अन्यदर्थः, अन्यार्थः।

'कु' अव्यय को तत्पुरुष समास में अजादि उत्तर पद हो तो 'कद्' आदेश होता है—कु-अन्नम्=कदन्नम्। कु-अश्वः=कदश्वः। कदुष्ट्रः। इत्यादि, हलादि उत्तरपद में न होगा—कुपुरुषः। कुभार्यः।

रथ और वद शब्द परे हों तो भी 'कु' को 'कद्' आदेश होता है—कुत्सितो रथः=कद्रथः। कद्वदः।

पथिन् और अक्ष शब्द परे हों तो 'कु' को 'का' आदेश होता है—कुत्सितः-पन्थाः=कापथः। कुत्सितः-अक्षः=काक्षः।

पुरुष शब्द उत्तरपद में हो तो 'कु' को 'का' आदेश विकल्प से होता है—कुपुरुषः, कापुरुषः।

यदि उष्ण शब्द परे रहे तो ईषदर्थवाचक 'कु' को का और कव दोनों आदेश होते हैं—कु (ईषत्) उष्णम्=कोष्णम्, कवोष्णम्।

क्विप् प्रत्ययान्त नह्, वृत्, वृष्, व्यध्, रुच्, सह्, और तन् शब्द परे हों तो पूर्वपद को दीर्घादेश होता है—उप-नह्=उपानत्। नि-वृत्=नीवृत्। प्र-वृष्=प्रावृट्। मर्म-व्यध्=मर्मावित्। नि-रुच्=नीरुक्। ऋति-सह=ऋतीषट्। परि-तन्=परीतत्।

'वल' प्रत्यय परे हो तो संज्ञा में पूर्वपद को दीर्घ होता है—कृषीवलः। दन्तावलः।

'वत्' प्रत्यय परे हो तो अनेकाच् पूर्वपद को संज्ञा अर्थ में दीर्घ होजाता है—अमरावती। पुष्करावती। उदुम्बरावती।

शर, वंश, धूम, अहि, कपि, मणि, मुनि, शुचि और हनु शब्दों को भी संज्ञा अर्थ में 'वत्' प्रत्यय परे हो तो दीर्घ होजाता है—शरावती। वंशावती। इत्यादि

'वह' शब्द उत्तरपद में हो तो इकारान्त पूर्वपद को दीर्घ हो जाता है—ऋषीवहम्। कपीवहम्।

घञ् प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद में हो तो पूर्वपदस्थ उपसर्ग को दीर्घ होता है। यदि मनुष्य अभिधेय हो तो नहीं होता—अपामार्गः। प्रासादः। प्राकारः। इत्यादि। मनुष्य के अभिधान में—निषादः।

अष्टन् शब्द को भी दीर्घादेश होता है यदि समस्त पद से कोई संज्ञा बनती हो—अष्टावक्रः। अष्टापदः।

विश्व शब्द का वसु और राट् शब्दों के साथ समास हो तो पूर्वपद को दीर्घादेश होता है—विश्वावसुः। विश्वाराट्।

यदि विश्व शब्द का नर शब्द के साथ समास हो और उस समस्त पद से कोई संज्ञा बनती हो तो पूर्वपद को दीर्घादेश होता है – विश्वानरः ।

यदि विश्व शब्द का मित्र शब्द के साथ समास हो और उस समस्त पद से ऋषि अभिधेय हो तो भी पूर्वपद को दीर्घादेश होता है – विश्वामित्रः । ऋषि की संज्ञा है ।

क्रिया

क्रिया उसको कहते हैं, जिससे कुछ करना पाया जाय और वह काल, पुरुष और वचन से सम्बन्ध रखती है ।

क्रिया के मूल को 'धातु' कहते हैं, धातु के अर्थ से किसी व्यापार का बोध होता है । जैसे – 'भू' से होना, 'कृ' से करना और 'गम्' से जाना । इत्यादि

क्रिया दो प्रकार की होती है एक सकर्मक दूसरी अकर्मक । फल कर्त्ता में न जाने पावे किन्तु कर्म ही में रहे । यथा – शिष्येण पुस्तकं पठ्यते । कविना काव्यं रच्यते । इन उदाहरणों में 'पढ़ना' और 'रचना' जो क्रिया का फल है, वह पुस्तक और काव्य कर्म में है, न कि शिष्य और कवि कर्त्ता में, इसलिए ऐसी क्रिया को सकर्मक कहते हैं ।*

---

* सकर्मक क्रियाओं में बहुत सी ऐसी भी क्रियायें हैं कि जिनके दो कर्म होते हैं । यथा–अजां ग्रामं नयति = बकरी को गाँव में ले जाता है । शिष्यं धर्मं शास्ति = शिष्य को धर्म की शिक्षा करता है । इन उदाहरणों में 'नयति' और 'शास्ति' क्रियाओं के क्रमशः अजा और ग्राम तथा शिष्य और धर्म ये दो दो कर्म हैं, इसलिए ऐसी क्रियाओं को द्विकर्मक कहते हैं ।

अकर्मक क्रिया वह है, जिसके साथ कर्म नहीं रहता, किन्तु क्रिया का फल कर्त्ता या भाव में जाता है। यथा—देवदत्त आस्ते, यज्ञदत्तेन शय्यते। इन उदाहरणों में बैठना और सोना रूप क्रिया का फल क्रमशः कर्त्ता और भाव में जाता है, अतएव ऐसी क्रियायें अकर्मक कहलाती हैं।

सकर्मक क्रिया के भी दो भेद हैं, एक कर्तृवाच्य और दूसरा कर्मवाच्य। जिस क्रिया का सम्बन्ध कर्त्ता के साथ हो, वह कर्तृवाच्य और जिसका सम्बन्ध कर्म के साथ हो वह कर्मवाच्य कहलाती है*।

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
शिष्यः विद्यां पठति	शिष्येण विद्या पठ्यते
कृषकः गोधूमान् वपति	कृषकेण गोधूमा उप्यन्ते
वदान्यः धनं ददाति	वदान्येन धनं दीयते

सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्त्ता अर्थ में और अकर्मक धातुओं से भाव और कर्त्ता अर्थ में वक्ष्यमाण दस लकार और उनके स्थान में 'ति' आदि प्रत्यय होकर क्रिया बनती है।

सकर्मक से कर्म में—गम्यते ग्रामो देवदत्तेन।
सकर्मक से कर्त्ता में—गच्छति ग्रामं देवदत्तः।
अकर्मक से भाव में—आस्यते देवदत्तेन।
अकर्मक से कर्त्ता में—आस्ते देवदत्तः।

क्रिया के करने में जो समय लगता है, उसे काल कहते हैं, उसके मुख्य भाग ३ हैं—वर्त्तमान, भूत और भविष्य।

जिस क्रिया का आरम्भ हो चुका हो, पर समाप्ति न हुई हो,

---

* यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि कर्तृवाच्य क्रिया के साथ कर्त्ता में सदा प्रथमा विभक्ति और कर्म में द्वितीया विभक्ति रहती है, परन्तु कर्मवाच्य क्रिया के साथ कर्त्ता में सदा तृतीया और कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है।

उसे वर्त्तमान कहते हैं और इस अर्थ में धातु से 'लट्' लकार होता है। जैसे—पर्णं पतति। अश्वो धावति।

जिस क्रिया की समाप्ति हो चुकी हो, उसे भूतकाल कहते हैं और इसके तीन भेद हैं—(१) परोक्ष भूत (२) अनद्यतन भूत (३) सामान्य भूत। जो अपनी आँखों के सामने न हुआ हो किन्तु श्रुतिपरम्परा से सुना जाता हो, उसे परोक्षभूत कहते हैं और इस अर्थ में धातु से सदा लिट् लकार होता है। जैसे—पुरा कश्चि-द्रामो दाशरथिर्बभूव। अद्यतन आज को कहते हैं, जो आज न हुवा हो किन्तु आज से पहले, पर समीप काल में, हुआ हो, उसे अनद्यतनभूत कहते हैं और इस अर्थ में धातु से लङ् लकार होता है। जैसे—ह्यस्तत्रागच्छम्। जो सामान्य प्रकार से हो चुका हो चाहे वह अद्यतन हो वा अनद्यतन उसे सामान्यभूत कहते हैं और इस अर्थ में धातु से लुङ् लकार होता है। यथा—मत्तः पुरा तेऽभूवन्।*

भविष्य काल के दो भेद हैं एक अनद्यतन भविष्य दूसरा सामान्य भविष्य। आज से पीछे पर समीप काल में जो होगा वह अनद्यतन भविष्य कहलाता है और इस अर्थ में धातु से लुट् लकार होता है। यथा—परेद्युस्तत्र गन्तास्मि। जो सामान्य प्रकार से आगे होनेवाला है, उसे सामान्यभविष्य कहते हैं और इस अर्थ में धातु से लृट् लकार होता है। यथा—किन्तत्रत्वं गमिष्यसि।‡

इन तीन कालों के अतिरिक्त विधि, आशीर्वाद और हेतुहेतु-मद्भाव अर्थों में भी धातु से लकार होते हैं। विधि, आज्ञा और प्रेरणा को कहते हैं और इस अर्थ में धातु से लोट् तथा लिङ्

---

* अनद्यतन भूत को आसन्न भूत और सामान्यभूत को पूर्णभूत भी कहते हैं। ‡ अनद्यतन भविष्य को आसन्न भविष्य और सामान्यभविष्य को पूर्ण भविष्य भी कहते हैं।

लकार होते हैं। यथा—स तत्र गच्छतु गच्छेत् वा। आशीर्वाद अर्थ में आशीर्लिङ् होता है। यथा—स्वस्ति ते भूयात्। कारण को हेतु और कार्य को हेतुमान् कहते हैं, ये दोनों जहाँ साथ साथ रहें, उसको हेतुहेतुमद्भाव कहते हैं और इस अर्थ में धातु से लृङ् लकार होता है। यथा—यदा सुवृष्टिरभविष्यत्तदा सुभिक्षमप्यभविष्यत्।

उक्त तीनों काल और विध्यादि अर्थों से सम्बन्ध रखनेवाले सब दश लकार हैं, जिनका निर्देश इस प्रकार किया गया है—लट्, लिट्, लङ्, लुङ्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लिङ् और लृङ्। इनमें से सातवाँ लेट् लकार केवल वैदिक साहित्य से सम्बन्ध रखता है और उसके अनेक भेद हैं। लिङ् लकार के दो भेद हैं एक विधि लिङ् दूसरा आशीर्लिङ्।

उक्त दश लकारों में लट्, लङ्, लोट् और विधि लिङ् ये चार सार्वधातुक और शेष ६ आर्धधातुक कहलाते हैं।

उक्त लकारों के स्थान में निम्न लिखित १८ प्रत्यय होते हैं—

परस्मैपद

वचन	प्रथमपुरुष	मध्यमपुरुष	उत्तमपुरुष
एकवचन	तिप्	सिप्	मिप्
द्विवचन	तस्	थस्	वस्
बहुवचन	झि	थ	मस्

आत्मनेपद

वचन	प्रथमपुरुष	मध्यमपुरुष	उत्तमपुरुष
एकवचन	त	थास्	इट्
द्विवचन	आताम्	आथाम्	वहि
बहुवचन	झ	ध्वम्	महि

अब दशों लकारों में जिन जिन रूपों से उक्त प्रत्यय धातु के साथ मिलते हैं उनको दिखलाते हैं—

लट्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
	प्र० पु०	म० पु०	उ० पु०	प्र० पु०	म० पु०	उ० पु०
एक०	ति	सि	मि	ते	से	ए
द्वि०	तः	थः	वः	आते	आथे	वहे
बहु०	अन्ति	थ	मः	अन्ते	ध्वे	महे

लिट्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
एकव०	अ	थ	अ	ए	से	ए
द्विव०	अतुः	अथुः	व	आते	आथे	वहे
बहु०	उः	अ	म	इरे	ध्वे	महे

लङ् व लुङ्*

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
एकव०	त्	०	अम्	त	थाः	इ
द्विव०	ताम्	तम्	व	आताम्	आथाम्	वहि
बहुव०	अन्-उः	त	म	अन्त	ध्वम्	महि

लुट्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
एकव०	ता	तासि	तास्मि	ता	तासे	ताहे
द्विव०	तारौ	तास्थः	तास्वः	तारौ	तासाथे	तास्वहे
बहुव०	तारः	तास्थ	तास्मः	तारः	ताध्वे	तास्महे

* लुङ् लकार में प्रत्यय से पूर्व किन्हीं धातुओं से सिच्, किन्हीं से क्स किन्हीं से चङ् और किन्हीं से अङ् प्रत्यय होते हैं।

लृट्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
वचन	प्र०पु०	म०पु०	उ०पु०	प्र०पु०	म०पु०	उ०पु०
एक०	स्यति	स्यसि	स्यामि	स्यते	स्यसे	स्ये
द्वि०	स्यतः	स्यथः	स्यावः	स्येते	स्येथे	स्यावहे
बहु०	स्यन्ति	स्यथ	स्यामः	स्यन्ते	स्यध्वे	स्यामहे

लोट्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
एक०	तु-तात्	हि-तात्	आनि	ताम्	स्व	ऐ
द्वि०	ताम्	तम्	आव	आताम्	आथाम्	आवहै
बहु०	अन्तु	त	आम	अन्ताम्	ध्वम्	आमहै

विधिलिङ्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
एक०	यात्	याः	याम्	ईत	ईथाः	ईय
द्वि०	याताम्	यातम्	याव	ईयाताम्	ईयाथाम्	ईवहि
बहु०	युः	यात	याम	ईरन्	ईध्वम्	ईमहि

आशीर्लिङ्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
एक०	यात्	याः	यासम्	सीष्ट	सीष्ठाः	सीय
द्वि०	यास्ताम्	यास्तम्	यास्व	सीयास्ताम्	सीयास्थाम्	सीवहि
बहु०	यासुः	यास्त	यास्म	सीरन्	सीध्वम्	सीमहि

लृङ्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
एक०	स्यत्	स्यः	स्याम्	स्यत	स्यथाः	स्ये

---

*लुङ् लकार में प्रत्यय से पूर्व किन्हीं धातुओं से सिच्, किन्हीं से क्स, किन्हीं से चङ् और किन्हीं से अङ् प्रत्यय और होते हैं ॥

द्वि० स्यताम् स्यतम् स्याव स्येताम् स्येथाम् स्यावहि
बहु० स्यन् स्यत स्याम स्यन्त स्यध्वम् स्यामहि

उक्त १८ प्रत्ययों में पहले ६ परस्मैपद और पिछले ६ आत्मनेपद कहलाते हैं ।

परस्मैपद का प्रयोग केवल कर्तृवाच्य क्रिया में ही होता है, कर्मवाच्य और भाववाच्य में नहीं । जैसे—देवदत्तः गच्छति । परन्तु आत्मनेपद का प्रयोग तीनों प्रकार की क्रियाओं में होता है । कर्तृवाच्य में—देवदत्त आस्ते कर्मवाच्य में-यज्ञदत्तेन भोजनं क्रियते, भाववाच्य में—सोमदत्तेन शय्यते ।

परस्मैपद और आत्मनेपद के तीन तीन वचन क्रम से प्रथम, मध्यम और उत्तम पुरुष कहलाते हैं । जैसे—परस्मैपद के तिप्, तस्, झि, प्रथम पुरुष । सिप्, थस्, थ, मध्यम पुरुष, मिप्, वस्, मस् उत्तम पुरुष । ऐसे ही आत्मनेपद के त, आताम्, झ प्रथम पुरुष । थास्, आथाम्, ध्वम् मध्यम पुरुष और इट् वहि, महि उत्तम पुरुष ।

प्रत्येक पुरुष के तीन तीन वचन क्रम से एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञक होते हैं । जैसे—तिप्, एकवचन, तस द्विवचन और झि बहुवचन । इसी प्रकार सिप् आदि में भी समझना चाहिए ।

जिस क्रिया का कर्त्ता अस्मद् शब्द वाच्य हो, वह उत्तम पुरुष कहलाती है । जैसे—अहं पचामि तथा जिस क्रिया का कर्त्ता युष्मद् शब्द वाच्य हो, वह मध्यम पुरुष कहलाती है । यथा त्वं पचसि । और जिस क्रिया का कर्त्ता इन दोनों से भिन्न कोई तीसरा हो, उसे प्रथम वा अन्य पुरुष कहते हैं । जैसे—सः पचति, यः पचति, कः पचति, इत्यादि ।

सब धातुओं के तीन भेद हैं, सेट्, अनिट् और वेट् । जिन धातुओं को वलादि आर्धधातुक को आदि में इट् का आगम

होता है वे सेट्, जिनको नहीं होता वे अनिट् और जिनको विकल्प से होता है वे वेट् कहलाते हैं ।

क्रिया के निरूपण में दश गण और दश प्रक्रिया हैं, जिनकी सिद्धि के लिये धातुपाठ में २००० के लगभग धातुओं का निर्देश किया गया है । हम संक्षेप के लिए उनमें से कतिपय प्रसिद्ध और प्रचलित धातुओं के गणशः रूप दिखाते हैं:—

भ्वादिगण

भू=होना परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

वर्त्तमान=लट्*

वचन	प्रथमपुरुष	मध्यमपुरुष	उत्तमपुरुष
एकवचन	भवति	भवसि	भवामि
द्विवचन	भवतः	भवथः	भवावः
बहुवचन	भवन्ति	भवथ	भवामः

परोक्षभूत=लिट्†

वचन	प्रथमपुरुष	मध्यमपुरुष	उत्तमपुरुष
एकवचन	बभूव	बभूविथ	बभूव
द्विवचन	बभूवतुः	बभूवथुः	बभूविव
बहुवचन	बभूवुः	बभूव	बभूविम

*सार्वधातुक लकारों में भ्वादिगण के समस्त धातुओं को तिङ् प्रत्यय से पूर्व 'शप्' प्रत्यय और होता है, श् और प् का लोप होकर केवल 'अ' रह जाता है ।

† लिट् लकार में धातु को द्विवचन हो जाता है, जिसमें प्रथम की अभ्यास संज्ञा है ।

अनद्यतनभूत = लङ् *

वचन	प्रथमपुरुष	मध्यमपुरुष	उत्तमपुरुष
एकवचन	अभवत्	अभवः	अभवम्
द्विवचन	अभवताम्	अभवतम्	अभवाव
बहुवचन	अभवन्	अभवत	अभवाम

सामान्यभूत = लुङ् ‡

वचन	प्रथमपुरुष	मध्यमपुरुष	उत्तमपुरुष
एकवचन	अभूत्	अभूः	अभूवम्
द्विवचन	अभूताम्	अभूतम्	अभूव
बहुवचन	अभूवन्	अभूत	अभूम

अनद्यतन भविष्य = लुट्

वचन	प्रथमपुरुष	मध्यमपुरुष	उत्तमपुरुष
एकवचन	भविता	भवितासि	भवितास्मि
द्विवचन	भवितारौ	भवितास्थः	भवितास्वः
बहुवचन	भवितारः	भवितास्थ	भवितास्मः

सामान्य भविष्य = लृट्

वचन	प्रथमपुरुष	मध्यमपुरुष	उत्तमपुरुष
एकवचन	भविष्यति	भविष्यसि	भविष्यामि
द्विवचन	भविष्यतः	भविष्यथः	भविष्यावः
बहुवचन	भविष्यन्ति	भविष्यथ	भविष्यामः

आज्ञा = लोट्*

वचन	प्रथमपुरुष	मध्यमपुरुष	उत्तमपुरुष
एकवचन	भवतु, भवतात्	भव, भवतात्	भवानि
द्विवचन	भवताम्	भवतम्	भवाव
बहुवचन	भवन्तु	भवत	भवाम

विधि = लिङ् *

वचन	प्रथमपुरुष	मध्यमपुरुष	उत्तमपुरुष
एकवचन	भवेत्	भवेः	भवेयम्
द्विवचन	भवेताम्	भवेतम्	भवेव
बहुवचन	भवेयुः	भवेत	भवेम

---

‡ लङ्, लुङ् और लृङ् इन तीन लकारों में हलादि धातु के पहले 'अ' और बढ़ जाता है।

आशीः=लिङ्

एकवचन	भूयात्	भूयाः	भूयासम्
द्विवचन	भूयास्ताम्	भूयास्तम्	भूयास्व
बहुवचन	भूयासुः	भूयास्त	भूयास्म

हेतुहेतुमद्भाव=लृङ्

एकवचन	अभविष्यत्	अभविष्यः	अभविष्यम्
द्विवचन	अभविष्यताम्	अभविष्यतम्	अभविष्याव
बहुवचन	अभविष्यन्	अभविष्यत	अभविष्याम

"उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते" उपसर्गों के योग से धातुओं के अर्थ बदल जाते हैं अतएव इसी 'भू' धातु का 'प्र' उपसर्ग के योग में सामर्थ्य (सकना) अर्थ हो जाता है-दाने प्रभवति इसी प्रकार 'सम्' उपसर्ग के योग में सम्भव होना अर्थ हो जाता है—यत्ने सिद्धिः सम्भवति। 'उत्' के योग में उत्पन्न होना अर्थ हो जाता है-क्षेत्रे बीजमुद्भवति। 'अभि' पूर्वक 'भू' धातु का अर्थ दबाना, 'परि' पूर्वक तिरस्कार करना और 'अनु' पूर्वक अनुभव करना हो जाता है और इन तीनों के योग में 'भू' धातु सकर्मक भी हो जाता है। यथा—सूर्यःचन्द्रमभिभवति। खलः साधुं परिभवति। विद्यया सुखमनुभवति।

एध् = बढ़ना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्

लट्—एधते, एधेते, एधन्ते। एधसे, एधेथे, एधध्वे। एधे, एधावहे, एधामहे।

*लिट्—एधाञ्चक्रे, एधाञ्चक्राते, एधाञ्चक्रिरे। एधाञ्चकृषे,

---

*अकारादि और ऋच्छ धातु को छोड़कर शेष सब अजादि धातुओं से लिट् लकार में आम् प्रत्यय होकर उसके आगे कृ, भू और अस् धातुओं का अनुप्रयोग किया जाता है। जैसे—एधाञ्चक्रे। एधाम्बभूव। एधामास॥

एधाञ्चक्राथे, एधाञ्चकृढ्वे । एधाञ्चक्रे, एधाञ्चकृवहे, एधाञ्चकृमहे । एधाम्बभूव । एधामास । इत्यादि ।

*लङ्—ऐधत, ऐधेताम्, ऐधन्त । ऐधथाः, ऐधेथाम्, ऐधध्वम् । ऐधे, ऐधावहि, ऐधामहि ।

लुङ्—ऐधिष्ट, ऐधिषाताम्, ऐधिषत । ऐधिष्ठाः, ऐधिषाथाम् ऐधिढ्वम् । ऐधिषि, ऐधिष्वहि, ऐधिष्महि ।

लुट्—एधिता, एधितारौ, एधितारः । एधितासे, एधितासाथे, एधिताध्वे । एधिताहे, एधितास्वहे, एधितास्महे ।

लृट्—एधिष्यते, एधिष्येते, एधिष्यन्ते । एधिष्यसे, एधिष्येथे, एधिष्यध्वे । एधिष्ये; एधिष्यावहे, एधिष्यामहे ।

लोट्—एधताम्, एधेताम्, एधन्ताम् । एधस्व, एधेथाम्, एधध्वम् । एधै, एधावहै, एधामहै ।

विधिलिङ्—एधेत, एधेयाताम्, एधेरन् । एधेथाः, एधेयाथाम्, एधेध्वम् । एधेय, एधेवहि, एधेमहि ।

आशीर्लिङ्—एधिषीष्ट, एधिषीयास्ताम्, एधिषीरन् । एधिषीष्ठाः, एधिषीयास्थाम्, एधिषीध्वम् । एधिषीय, एधिषीवहि, एधिषीमहि ।

*लृङ्—ऐधिष्यत, ऐधिष्येताम्, ऐधिष्यन्त । ऐधिष्यथाः, ऐधिष्येथाम्, ऐधिष्यध्वम् । ऐधिष्ये, ऐधिष्यावहि, ऐधिष्यामहि ।

पच् = पकाना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

लट्—परस्मै०—पचति । पचसि । पचामि । आत्मने०—पचते । पचसे । पचे । इत्यादि ।

---

* लङ्, लुङ् और लृङ् लकारों में अजादि धातुओं के पहिले 'आ' बढ़ जाता है ।

* लिट्। प० – पपाच, पेचतुः, पेचुः। पेचिथ-पपक्थ, पेचथुः, पेच। पपाच-पपच, पेचिव, पेचिम।
आत्मने० – पेचे पेचाते, पेचिरे। पेचिषे, पेचाथे, पेचध्वे। पेचे, पेचिवहे, पेचिमहे।

लङ् – परस्मै० – अपचत्। अपचः। अपचम्॥ आत्मने० – अपचत। अपचथाः। अपचे।

†लुङ् – परस्मै० – अपाक्षीत्। अपाक्षीः। अपाक्षम्। आत्मने० – अपक्त। अपक्थाः। अपक्षि।

लुट् – परस्मै० – पक्ता। पक्तासि। पक्तास्मि॥ आत्मने० – पक्ता। पक्तासे। पक्ताहे।

लृट् – प० – पक्ष्यति। पक्ष्यसि। पक्ष्यामि। आत्मने० – पक्ष्यते। पक्ष्यसे। पक्ष्ये।

लोट् – प० – पचतु-पचतात्। पच-पचतात्। पचानि। आत्मने० – पचताम्। पचस्व। पचै।

विधिलिङ् – प० – पचेत्। पचेः। पचेयम्। आत्मने०-पचेत। पचेथाः। पचेय।

आशीर्लिङ् – प० – पच्यात्। पच्याः। पच्यासम् आत्मने० – पक्षीष्ट। पक्षीष्ठाः। पक्षीय।

लृङ् – प० – अपक्ष्यत्। अपक्ष्यः। अपक्ष्यम्, आत्मने० – अपक्ष्यत। अपक्ष्यथाः। अपक्ष्ये।

---

* जिस धातु के अभ्यास को कोई आदेश न हुवा हो उसको लिट् लकार के परस्मैपद में प्रथम और उत्तमपुरुष के एकवचन को छोड़कर शेष सब पुरुषों के सब वचनो में 'ए' आदेश और अभ्यासका लोप होजाता है। यथा—पेचतुः पेचुः। इत्यादि। आत्मनेपद में सब त्र होता है।

† लुङ् लकार में 'पच्' धातु को 'सिच्' होकर परस्मैपद में वृद्धि हो जाती है – अपाक्षीत्।

ईक्ष=देखना, आत्मनेपदी, सकर्मक, सेट्

लट्—ईक्षते । लिट्—ईक्षाञ्चक्रे-ईक्षाम्बभूव-ईक्षामास । लङ्—ऐक्षत । लुङ्—ऐक्षिष्ट । लुट्—ईक्षिता । लृट्—ईक्षिष्यते,। लोट्—ईक्षताम् । विधिलिङ्—ईक्षेत । आशीर्लिङ्—ईक्षिषीष्ट । लृङ्—ऐक्षिष्यत ।

'प्र' उपसर्ग के योग में 'ईक्ष' धातु का अर्थ प्रेक्षा=जानना, 'प्रति' के योग में प्रतीक्षा=उत्सुकता से चाहना, 'अप' के योगमें अपेक्षा=आवश्यकता, 'परि' के योग में परीक्षा=निर्णय करना, 'सम्' के योग में समीक्षा=विवेचन करना और 'उप' के योग में उपेक्षा=उदासीनता हो जाता है,इनमें से केवल 'उप' के योग में यह धातु अकर्मक और सब में सकर्मक रहता है । यथा बुद्धिमान् कार्याकार्यं प्रेक्षते, विद्यालये छात्रा अध्यापकं प्रतीक्षन्ते, जनः स्वार्थमपेक्षते, वैद्य औषधं परीक्षते, विद्वानेव ग्रन्थस्य सारासारं समीक्षते । दुर्गुणेषूपेक्षन्ते सज्जनाः ।

वदि=नमना वा सराहना, आत्मनेपदी, सकर्मक सेट्*

लट्—वन्दते । लिट्—ववन्दे । लङ्—अवन्दत । लुङ्—अवन्दिष्ट । लुट्—वन्दिता । लृट्—वन्दिष्यते । लोट्—वन्दताम् । विधि०—वन्देत । आशीर्लिङ्—वन्दिषीष्ट । लृङ्—अवन्दिष्यत ।

तप्=तपाना=सताना, परस्मैपदी, अकर्मक, अनिट्

तपति । तताप, तेपतु, तेपुः । अतपत् । अताप्सीत्, अताप्ताम्, अताप्सुः । तप्ता । तप्स्यति । तपतु—तपतात् । तपेत् । तप्यात् । अतप्स्यत् ।

---

* यदि धातु इकारान्त है इकारान्त सब धातुओं की 'इ' को न होजाता है ॥

पत्=गिरना, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

पतति। पपात, पेततुः, पेतुः। अपतत्। अपप्तत्, अपप्तताम्, अपप्तन्†। पतिता। पतिष्यति। पततु-पततात्। पतेत्। पत्यात्। अपतिष्यत्।

'उत्' उपसर्ग के योग में 'पत्' धातु का अर्थ ऊपर को जाना होजाता है—आकाश उत्पतति पतगः=प्र-नि के योग में नमस्कार और 'अनु' के योग में पीछे जाना अर्थ हो जाना है और इन दोनों अर्थों में 'पत्' धातु सकर्मक भी हो जाता है—पितरं शिरसा प्रणिपतति, स्वामिनमनुपतति भृत्यः।

क्रम=चलना, परस्मैपदी, सकर्मक, सेट्

क्राम्यति—क्रामति*। चक्राम, चक्रमतुः, चक्रमुः। अक्राम्यत्—अक्रामत्*। अक्रमीत्। अक्रमीः। अक्रमिषम्। क्रमिता। क्रमिष्यति। क्राम्यतु—क्रामतु*। क्राम्येत्—क्रामेत्*। क्रम्यात्। अक्रमिष्यत्।

'आ' उपसर्ग के योग में 'क्रम्' धातु का अर्थ आक्रमण करना और 'अति' के योग में अतिक्रमण करना हो जाता है—शत्रुमाक्रामति धर्ममतिक्रामति, अतिक्रमते वा। 'सम्' के योग में साथ चलना और 'नि' के योग में निकलना अर्थ होता है और इन दोनों अर्थों में यह धातु अकर्मक भी हो जाता है—मित्रैः संक्रामति गृहान्निष्क्रामति। 'परा' के योग में पराक्रम करना और 'प्र' तथा 'उप' के योग में आरम्भ करना तथा उत्साह करना अर्थ हो जाते हैं और इनके योग में यह अकर्मक तथा आत्मने-

---

† 'लुङ्' लकार में 'पत्' धातु को 'पप्त्' होकर उसके पहिले 'पुक्' का आगम होजाता है। * 'क्रम' धातु को सार्वधातुक लकारों में विकल्प से 'श्यन्' प्रत्यय होकर क्राम्यति और क्रामति ये दो २ रूप सिद्ध होते हैं।

पदी भी हो जाता है—युद्धे शूराः पराक्रमन्ते, ग्रन्थस्य प्रक्रमते उपक्रमते वा, अध्ययनाय प्रक्रमते उपक्रमते वा ।

गम् = जाना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

गच्छति* । जगाम, जग्मतुः । जग्मुः† । जगमिथ—जगन्थ । अगच्छत्* अगमत्‡ । गन्ता । गमिष्यति|| । गच्छतु* । गच्छेत्* गम्यात् । अगमिष्यत्|| ।

'गम्' धातु का 'आ' उपसर्ग के योग में आना, 'अधि' के योग में पाना, सम्' के योग में संगति करना और 'अनु' के योग में पीछे जाना अर्थ हो जाते हैं । 'अधि' और 'अनु' के योग में तो यह सकर्मक ही रहता है, परन्तु 'आ' और 'सम्' के योग में अकर्मक हो जाता है—विद्यामधिगच्छति । गुरुमनुगच्छति । ग्रामादागच्छति । सभायां संगच्छते ।

दृश् = देखना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

पश्यति" । ददर्श । ददर्शिथ-दद्रष्ठ । ददर्श । अपश्यत्" । अदर्शत्-अद्राक्षीत् । द्रष्टा । द्रक्ष्यति । पश्यतु" । पश्येत्" । दृश्यात् । अद्रक्ष्यत् ।

---

*'गम्' धातु के मकार को सार्वधातुक लकारों में 'छ्' होकर 'गच्छति इत्यादि रूप होते हैं ।

† लिट् लकार में तीनों पुरुषों के एकवचन को छोड़कर शेष वचनों में उपधा के अकार का लोप होकर जग्मतुः, जग्मुः इत्यादि रूप होते हैं ।

‡ लुङ् में 'अङ्' होकर अगमत् इत्यादि रूप होते हैं ।

|| लृट् और लृङ् में इट् होकर गमिष्यति और अगमिष्यत् इत्यादि रूप होते हैं ।

" दृश् धातु को सार्वधातुक लकारों में पश्य आदेश होकर 'पश्यति' इत्यादि रूप होते हैं ।

रुह्=उगना, परस्मैपदी, अकर्मक, अनिट्

रोहति। रुरोह। अरोहत्। अरुक्षत्*। रोढा। रोक्ष्यति। रोहतु। रोहेत्। रुह्यात्। अरोक्ष्यत्।

'आ' उपसर्ग के योग में 'रुह्' धातु का अर्थ चढ़ना और 'अव' के योग में उतरना हो जाता है और 'आ' के योग में यह सकर्मक भी हो जाता है—अट्टालिकामारोहति। पर्वतादवरोहति।

वस्=बसना, परस्मैपदी, अकर्मक, अनिट्

वसति। उवास। ऊषिथ। ऊष†। अवसत्। अवात्सीत्। अवात्सीः। अवात्सम्। वस्ता। वत्स्यति। वसतु। वसेत्। उष्यात्†। अवत्स्यत्।

'वस्' धातु का 'प्र' के योग में विदेश जाना और 'उप' के योग में भोजन न करना अर्थ हो जाते हैं—वाणिज्यार्थं प्रवसति। अजीर्णे सत्युपवसति। अनु, अधि और आ के योग में अर्थ तो बसना ही रहता है, पर धातु सकर्मक हो जाती है—गृहमनुवसति, अधिवसति, आवसति वा।

कम् = चाहना, आत्मनेपदी, सकर्मक, सेट्‡

कामयते। चकमे-कामयाञ्चक्रे। अकामयत। अचीकमत-अचकमत। कामयिता—कमिता। कामयिष्यते—कमिष्यते।

---

* 'रुह्' धातु को लुङ् में 'क्स' होकर अरुक्षत् इत्यादि रूप होते हैं।
† वस् धातु के 'व्' को लिट् और आशीर्लिङ् में 'उ' सम्प्रसारण हो गया है।
‡ 'कम्' धातु को सार्वधातुक लकारों में 'अय्' प्रत्यय और वृद्धि होकर 'कामयते' इत्यादि रूप बनते हैं, आर्धधातुकों में विकल्प से 'अय्' प्रत्यय और वृद्धि होती है, इसलिये कामयिता और कमिता इत्यादि दो दो रूप होते हैं।

कामयताम्। कामयेत्। कामयिषीष्ट—कमिषीष्ट। अकामयिष्यत—अकमिष्यत।

त्रप् = लज्जा करना, आत्मनेपदी, अकर्मक, वेट्

त्रपते। त्रेपे। अत्रपत। अत्रपिष्ट—अत्रप्त। त्रपिता—त्रप्ता। त्रपिष्यते—त्रप्स्यते। त्रपताम्। त्रपेत। त्रपिषीष्ट—त्रप्सीष्ट। अत्रपिष्यत—अत्रप्स्यत।

भाष् = बोलना, आत्मनेपदी, द्विकर्मक, सेट्

भाषते। बभाषे। अभाषत। अभाषिष्ट। भाषिता। भाषिष्यते। भाषताम्। भाषेत। भाषिषीष्ट। अभाषिष्यत।

'भाष्' धातु 'सम्' उपसर्गपूर्वक संवाद में और 'वि' पूर्वक विकल्प में वर्त्तता है—सहाध्यायिनः परस्परं सम्भाषन्ते। विप्रतिपत्तौ विभाषन्ते।

वृत् = वर्त्तना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्*

वर्त्तते। ववृते। अवर्त्तत। अवृतत्—अवर्त्तिष्ट। वर्त्तिता। वर्त्स्यति-वर्त्तिष्यते। वर्त्तताम्। वर्त्तेत। वर्त्तिषीष्ट। अवर्त्स्यत्—अवर्त्तिष्यत।

वृत् धातु का 'प्रति-आ' उपसर्ग के योग में लौटना और 'परि' के योग में बदलना अर्थ हो जाता है—ग्रामात्प्रत्यावर्त्तते। कालः परिवर्त्तते।

रम् = रमण करना, आत्मनेपदी, अकर्मक, अनिट्

रमते। रेमे। अरमत। अरंस्त। रन्ता। रंस्यते। रमताम्। रमेत। रंसीष्ट। अरंस्यत।

---

*वृत् धातु को लुङ्, लृट् और लृङ् इन तीन लकारों में परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों के प्रत्यय होते हैं, परन्तु परस्मैपद में इट् का आगम नहीं होता।

'रम्' धातु का अर्थ 'उप' के योग में निवृत्त होना और 'वि' के योग में विश्राम करना होजाता है और इन दोनों के योग में यह धातु उभयपदी हो जाता है—कार्यादुपरमति, उपरमते वा। श्रान्तः पान्थो विरमति विरमते वा।

लभ=पाना, आत्मनेपदी, सकर्मक, अनिट्

लभते। लेभे। अलभत। अलब्ध। लब्धा। लप्स्यते। लभताम्। लभेत। लप्सीष्ट। अलप्स्यत।

लभ् धातु का अर्थ 'आ' के योग में छूना और मारना तथा 'उप-आ' के योग में निन्दा करना होजाता है—पुत्रमालभते। पशुमालभते। शत्रुमुपालभते।

यज=पूजना, मिलना, देना उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

*यजति। यजते। इयाज। ईजे। अयजत्। अयजत। अयाक्षीत्। अयष्ट। यष्टासि। यष्टासे। यक्ष्यति। यक्ष्यते। यजतु। यजताम्। यजेत्। यजेत। इज्यात्। यक्षीष्ट। अयक्ष्यत्। अयक्ष्यत।

वप्=बोना, मूँडना, उभयपदी, अनिट्

वपति। वपते। उवाप। ऊपे। अवपत्। अवपत। अवाप्सीत्। अवप्त। वप्तासि। वप्तासे। वप्स्यति। वप्स्यते। वपतु। वपताम्। वपेत्। वपेत। उप्यात्। वप्सीष्ट। अवप्स्यत्। अवप्स्यत।

वह=लेजाना, ढोना, उभयपदी, द्विकर्मक, अनिट्

*वहति। वहते। उवाह। ऊहे। अवहत्। अवहत। अवाक्षीत्। अवोढ़। इत्यादि वप् के समान।

---

*यज्, वप् और वह् धातु को लिट् और विधिलिङ् में सम्प्रसारण होता है। य, व, र, ल इन चार हर्लों के स्थान में क्रमशः इ, उ, ऋ, लृ इन चार अचों का होना सम्प्रसारण कहलाता है।

'उद्' उपसर्गपूर्वक वह् धातु का अर्थ विवाह करना होजाता है—भार्यामुद्वहति, उद्वहते वा ।

पा=पीना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्*

पिबति । पपौ, पपतुः, पपुः । अपिबत् । अपात् । पाता । पास्यति । पिबतु । पिबेत् । पेयात् । अपास्यत् ।

स्था=ठहरना, परस्मैपदी, अकर्मक, अनिट्+

तिष्ठति । तस्थौ । अतिष्ठत् । अस्थात् । स्थाता । स्थास्यति । तिष्ठतु । तिष्ठेत् । स्थेयात् । अस्थास्यत् ।

'उद्' उपसर्ग के योग में 'स्था' धातु का अर्थ उठना और 'प्र' के योग में जाना होजाता है—आसनादुत्तिष्ठति, गृहात्प्रतिष्ठते ।

जि=जीतना, परस्मैपदी, द्विकर्मक, अनिट्×

जयति । जिगाय, जिग्यतुः, जिग्युः । अजयत् । अजैषीत् । जेता । जेष्यति । जयतु । जयेत् । जीयात् । अजेष्यत् ।

'जि' धातु का 'वि' के योग में तो जीतना ही अर्थ रहता है, परन्तु 'परा' के योग में हारना अर्थ होजाता है और इन दोनों के योग में यह आत्मनेपदी भी होजाती है—शत्रून् विजयते, साहसं पराजयते ।

स्मि=आश्चर्य करना, आत्मनेपदी, अकर्मक, अनिट्

स्मयते । सिष्मिये । अस्मयत । अस्मयिष्ट । स्मयिता । स्मयिष्यते । स्मयताम् । स्मयेत । स्मयिषीष्ट । अस्मयिष्यत ।

---

* 'पा' धातु को सार्वधातुक लकारों में 'पिब' आदेश और 'स्था' को 'तिष्ठ' आदेश होजाता है। × 'जि' धातु के जकार को सन् और लिट् परे हों तो गकार आदेश हो जाता है।

नी=पहुँचाना, उभयपदी, द्विकर्मक, अनिट्

नयति। नयते। निनाय। निन्ये। अनयत्। अनयत। अनैषीत्। अनेष्ट। नेतासि। नेतासे। नेष्यति। नेष्यते। नयतु। नयताम्। नयेत्। नयेत। नीयात्। नेषीष्ट। अनेष्यत्। अनेष्यत।

'नी' धातु के अर्थ 'प्र' के योग में बनाना, 'अप' के योग में मिटाना, 'उप' के योग में दीक्षा देना, 'उत्' के योग में ऊँचा होना, 'परि' के योग में विवाह करना, 'अभि' के योग में खेलना और अनु तथा वि के योग में नमना होजाते हैं—ग्रन्थं प्रणयति। क्रोधमपनयति। शिष्यमुपनयते। सदाचारेणात्मानमुन्नयति। स्नातकः समावृत्तः सन् भार्यां परिणयति। नाटकमभिनयति। सुजनःविद्ययाऽत्मानमनुनयति, विनयते वा।

श्रु = सुनना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

शृणोति*। शुश्राव। अशृणोत्*। श्रोता। श्रोष्यति। शृणोतु*। शृणुयात्*। श्रूयात्। अश्रौष्यत्।

'श्रु' धातु का अर्थ प्रति, आ और सम् उपसर्गों के योग में अंगीकार करना होजाता है और 'सम्' के योग में यह धातु अकर्मक और आत्मनेपदी होजाता है—पितुरादेशं प्रतिशृणोति, आशृणोति वा। वाचा संशृणुते।

हृ = हरना, उभयपदी, द्विकर्मक, अनिट्

हरति। हरते। जहार। जह्रे। अहरत्। अहरत। अहार्षीत्। अहृत। हर्त्तासि। हर्त्तासे। हरिष्यति। हरिष्यते। हरतु। हरताम्। हरेत्। हरेत। ह्रियात्। हृषीष्ट। अहरिष्यत्। अहरिष्यत।

---

* 'श्रु' धातु को सार्वधातुक लकारों में 'शृ' आदेश और 'नु' प्रत्यय होकर 'शृणोति' इत्यादि रूप बनते हैं।

'हृ' धातु का अर्थ 'प्र' के योग में प्रहार करना, 'अप' के योग में दूर करना, 'सम्' के योग में संहार करना, 'वि' के योग में विहार करना, 'आ' के योग में आहार करना, 'उद्' के योग में उद्धार करना, 'उप-सम्' के योग में समाप्त करना, 'वि-आ' के योग में कहना और 'अभि-अव' के योग में खाना होजाता है और केवल 'वि' के योग में अकर्मक भी होजाता है—शत्रुं प्रहरति। मन्युमपहरति। ईश्वरः सृष्टिं निर्माय पुनः संहरति। उद्याने विहरति। भक्ष्यमाहरति। विपन्नानुद्धरति। ग्रन्थमुपसंहरति। वाक्यं व्याहरति। भोज्यमभ्यवहरति।

ग्लै = मुरझाना, परस्मैपदी, अकर्मक, अनिट्

ग्लायति। जग्लौ। अग्लायत्। अग्लासीत्। ग्लाता। ग्लास्यति। ग्लायतु। ग्लायेत्। ग्लायात्। अग्लास्यत्।

हिन्दीभाषा में अनुवाद करो

कुरुषु युधिष्ठिरो धर्मात्मा बभूव। अस्माकमग्रजाः धर्माचरणेनैधन्त। भुक्तमन्नं जाठराग्निःपचति। त्वं तत्र मां नैक्षथाः। समागमे सति गुरून् वन्देत। य इदानीं श्रेयो नाचरन्ति ते पुनस्तप्तारः। मदेनोद्धताः पुरुषा गर्त्ते पतिष्यन्ति। शिक्षितोऽश्वः सुष्ठु क्राम्यति। पुरा व्यासादयो महर्षय उपदेशार्थं त्रिविधान् देशान् अग्मुः। तत्राहं त्वामद्राक्षम्। पुरा पठनार्थमहं वाराणस्यामवात्सम्। दमयन्ती स्वयंवरे नलं चकमे। धृष्टः धर्षितोऽपि न त्रपते। अहं पृष्टःसन् तत्राभाषिषं न त्वपृष्टः। आत्मवत् सर्वेषु भूतेषु वर्त्तताम्। किन्त्वं पुनरप्यश्रेयसि रंस्यसे? श्रमेण विद्यामलप्स्यध्वं चेत्तर्हि धनं कीर्तिञ्चालप्स्यध्वम्। स्वर्गायाग्निष्टोमेन यज। श्रीमतामाशीर्भिरहं सततं धर्मधुरमुह्याम्। सद्गुरुमधिगम्य शास्त्रामृतरसौघान् पास्यामः। यो गुरूणामादेशे तिष्ठति

सएव कुशलाय कल्पते। यः सर्वेभ्यो बलवत्तरं शत्रुं क्रोधं जयेत् सएव शूरतमः। हीनांगं विपन्नं वा दृष्ट्वा कदापि मा स्मयताम्। त्वामहं तत्र नेष्यामि। हे शिष्य! त्वं सदा गुरूणां हितवचनानि श्रूयाः। त्वमेव प्रपन्नस्यार्त्तिं हर्त्तासि। अद्य यत्पुष्पितं पुष्पं श्वो म्लास्यति तदेव ह।

संस्कृतभाषा में अनुवाद करो

जो विद्या पढ़ेगा वह पण्डित होगा। अधर्म से कोई नहीं बढ़ता। वह हमारे लिये खाना पकावे। मैं वहाँ जाकर उसको देखूँगा। मैंने गुरु को प्रणाम किया था। सूर्य ग्रीष्म ऋतु में तपता है। वृक्ष से फल गिरते हैं। वह मेरे साथ नहीं चलेगा। कल मैं वहाँ गया था। उसने मुझे देखा। किसान अपने खेत को जोतता है। कल्लर भूमि में अंकुर नहीं उगता। अधर्म से बढ़ने की रुचि मत करो। हम वहाँ जाकर बसेंगे। सत्पुरुष दूसरों की भलाई के लिये यत्न करते हैं। वह धन को चाहता है। बुरे काम से लजाओ। कठोर वचन किसीसे न बोलो। जैसा जिसके साथ वर्त्तोगे वैसा ही वह तुम से वर्त्तेगा। वह सदा सत्कर्मों में ही रमण करता है। जो धर्म का पालन करेगा वह सुख पावेगा। मैं पौर्णमासी को यज्ञ करूँगा। पराये खेत में बीज कभी मत बोओ। गृहस्थ सब आश्रमों का भार उठाता है। मैंने कल केवल दूध पिया था। मैं कभी दुर्जनों के पास नहीं ठहरूँगा। श्रीकृष्णचन्द्र की सहायता से पाण्डवों ने कौरवों को जीता था। वह मुझको देखकर मुस्कराया था। मैं उसको वहाँ ले गया था। कल सभा में हमने एक उत्तम व्याख्यान सुना था। अग्नि और वायु सब पदार्थों को पवित्र करते हैं। ओषधि रोग को हरती है। कमल शाम को मुरझाते हैं।
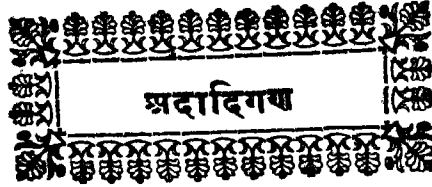
अद्=खाना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

लट्—अत्ति, अत्तः, अदन्ति । अत्सि, अत्थः, अत्थ । अद्मि, अद्वः, अद्मः ।

लिट्—आद, आदतुः, आदुः । पक्ष में 'घस्' आदेश हो कर जघास, जक्षतुः, जक्षुः* । इत्यादि

लङ्—आदत्, आत्ताम्, आदन् । लुङ्—अघसत्* । लुट्—अत्ता । लृट्—अत्स्यति । लोट्—अत्तु, अत्तात् ।

विधिलिङ्—अद्यात्, अद्याताम्, अद्युः । आशीर्लिङ्—अद्यात्, अद्यास्ताम्, अद्यासुः । लृङ्-आत्स्यत् ।

अस्=होना, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्+

लट्—अस्ति, स्तः, सन्ति । असि, स्थः, स्थ । अस्मि स्वः, स्मः ।

लङ्—आसीत्, आस्ताम्, आसन् । आसीः, आस्तम्, आस्त । आसम्, आस्व, आस्म ।

लोट्—अस्तु-स्तात्, स्ताम्, सन्तु । एधि-स्तात्, स्तम्, स्त । असानि, असाव, असाम ।

---

*लिट में विकल्प से और लुङ् में नित्य 'अद्' धातु को 'घस्' आदेश हो जाता है ।

+आर्धधातुक लकारों में 'अस' धातु को 'भू' आदेश होकर 'भू' धातु के समान रूप हो जाता है ।

विधिलिङ्-स्यात्,स्याताम्, स्युः। स्याः, स्यातम्, स्यात स्याम्, स्याव, स्याम।

विद् = जानना, परस्मैपदी, सकर्मक सेट्

वेत्ति, वित्तः,विदन्ति। अथवा-वेद, विदतुः, विदुः*, विवेद। विदाञ्चकार। अवेत्। अवेदीत्। वेदिता। वेदिष्यति। वेत्तु। विद्धि। वेदानि। विद्यात्। विद्यात्। अवेदिष्यत्।

'सम' उपसर्गपूर्वक 'विद्' धातु आत्मनेपदी और अकर्मक हो जाता है-विद्यया संवित्ते।

शास् = आज्ञा देना, शिक्षा करना, परस्मैपदी, द्विकर्मक, सेट्

शास्ति, शिष्टः, शासति। शशास। अशात्, अशिष्टाम्, अशासुः। अशिषत्+। शासिता। शासिष्यति। शास्तु। शाधि। शासानि। शिष्यात्। शिष्यात्। अशासिष्यत्।

'आ' उपसर्ग के योग में 'शास्' धातु आत्मनेपदी और आशा करने के अर्थ में हो जाती है-सज्जनाः सततं लोकहित-मेवाशासते।

हन् = मारना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्"

हन्ति, हतः, घ्नन्ति। हंसि, हथः, हथ। हन्मि, हन्वः, हन्मः। जघान, जघ्नतुः, जघ्नुः"। अहन्, अहताम्, अघ्नन्। अवधीत्, अवधिष्टाम्, अवधिषुः"। हन्ता। हनिष्यति। हन्तु। जहि। हनानि। हन्यात्। वध्यात्। अहनिष्यत्।

---

*'विद्' धातु को लट् लकार में विकल्प से लिट् लकार के प्रत्यय भी होते हैं। + 'शास्, धातु को लुङ् में अङ् और उपधा के आकार को इकार हो जाता है। " लिट् के अभ्यास में 'हन् के 'ह' को 'ज' हो जाता है, तथा लुङ् और लिङ् में 'हन् को 'वध' आदेश हो जाता है।

'प्रति' उपसर्ग के योग में 'हन्' धातु का अर्थ प्रतिघात, 'अभि' और 'आ' के योग में आघात तथा 'वि-आ' के योग में व्याघात हो जाता है—आहतःसन् शूरो रणे शत्रुं प्रतिहन्ति। रणे शूराः शत्रूनभिघ्नन्ति, आघ्नन्तिवा। मृषावादी स्वकथितमेव व्याहन्ति।

आस् = बैठना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्

आस्ते, आसाते, आसते। आस्से। आसे। आसाञ्चक्रे। आसत। आसिष्ट। आसिता। आसिष्यते। आस्ताम्। आसीत। आसिषीष्ट। आसिष्यत।

'उद्' पूर्वक 'आस्' धातु उदासीनता के अर्थ में वर्तता है। कर्तव्येष्वलसा उदासते। 'उप' के योग में यह धातु सकर्मक और उपासना के अर्थ में हो जाता है—विद्यामुपासते सुखार्थिनः।

दुह् = दुहना, भरना, उभयपदी, द्विकर्मक, अनिट्

दोग्धि, दुग्धः, दुहन्ति। दुग्धे,दुहाते, दुहते। दुदोह। दुदुहे। अधोक्। अदुग्ध। अधुक्षत। अधुक्षत्-अदुग्ध* । दोग्धासि। दोग्धासे। धोक्ष्यति। धोक्ष्यते। दोग्धु। दुग्धाम्। दुह्यात्। दुहीत। दुह्यात्। धुक्षीष्ट। अधोक्ष्यत्। अधोक्ष्यत।

या = जाना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

याति। ययौ। अयात्। अयासीत्। याता। यास्यति। यातु। यायात्। यायात्। अयास्यत्।

'आ' के योग में 'या' धातु अकर्मक और आने के अर्थ में हो जाता है—ग्रामादायाति।

---

* 'दुह्' धातु को लुङ् लकार के परस्मैपद में 'क्स' प्रत्यय नित्य और आत्मनेपद में विकल्प से होता है।

इ = जाना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

एति, इतः, यन्ति । इयाय, ईयतुः, ईयुः । ऐत्, ऐताम्, आयन् । अगात् * । एता । एष्यति । एतु । इयात् । ईयात् । ऐष्यत् ।

'अनु' उपसर्ग के योग में 'इ' धातु का अर्थ पीछे चलना या सम्बद्ध होना है। यथा – यूथपतिमन्वेति सेना। शब्दमन्वेत्यर्थः,। 'उप' के योग में समीप होना – गुरुमुपैति शिष्यः = 'अभि-उप के योग में स्वीकार करना या प्राप्त होना – धर्मादर्थमभ्युपैति। 'अधि' के योग में स्मरण करना – मित्रमध्येति सङ्कटे। 'अति' के योग में अतिक्रमण करना – शठो मर्यादामत्येति। 'अभि-प्र' के योग में चाहना – हितमभिप्रैति जनः। 'परि' के योग में व्याप्त होना अर्थ होता है – विभुः सर्वान् पर्येति। अब जिन उपसर्गों के योग में 'इ' धातु अकर्मक हो जाता है, उनको दिखलाते हैं – 'प्र' के योग में परलोक जाना – सर्वं विहाय जीवः प्रैति। 'उत्' के योग में प्रकाश करना – सूर्यः पूर्वस्यां दिश्युदेति। 'अभि' के योग में सम्मुख जाना – दीपस्याभ्येति शलभः 'अप' के योग में अलग होना – धर्मादपैति यः स एवानर्थः। 'निर्' के योग में निकलना – गृहान्निर्गच्छति विरक्तः। 'निर्' के योग में 'इ' को 'गच्छ' आदेश हो जाता है। 'आ' के योग में आना – गुरुगृहादैति स्नातकः। वि-परि' के योग में उलटा होना अर्थ हो जाता है – विपत्तावनुकूलमपि विपर्येति।

अधि-इ = पढ़ना, आत्मनेपदी, सकर्मक, अनिट् †

अधीते, अधीयाते, अधीयते। अधिजगे। अध्यैत। अध्यैष्ट-अध्यगीष्ट। अध्येता। अध्येष्यते। अधीताम्। अधीयीत। अध्येषीष्ट। अध्यैष्यत-अध्यगीष्यत।

---

* 'इ' धातु को लुङ् में 'गा' आदेश होता है। † अधि पूर्वक 'इ' धातु को लिट् में नित्य और लुङ् व लृङ् में विकल्प से 'गा' आदेश होता है।

शी = सोना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट् *

शेते, शयाते, शेरते । शिश्ये, शिश्याते, शिश्यिरे । अशेत । अशयिष्ट । शयिता । शयिष्यते । शेताम् । शयीत । शयिषीष्ट । अशयिष्यत ।

'अधि' के योग में 'शी' धातु सकर्मक हो जाता है। शय्यामधिशेते ।

यु = मिलना वा अलग करना, परस्मैपदी, सकर्मक, सेट्

यौति, युतः' युवन्ति । युयाव । अयौत् । अयावीत् । यविता । यविष्यति । यौतु । युयात् । यूयात् । अयविष्यत् ।

ब्रू = बोलना, उभयपदी, द्विकर्मक, सेट् ♦

ब्रवीति-आह♦ । ब्रूते । उवाच । ऊचे । अब्रवीत् । अब्रूत । अवोचत् । अवोचत । वक्तासि । वक्तासे । वक्ष्यति । वक्ष्यते । ब्रवीतु । ब्रूताम् । ब्रूयात् । ब्रुवीत । उच्यात् । वक्षीष्ट । अवक्ष्यत् । अवक्ष्यत ॥

सू = जनना, आत्मनेपदी, सकर्मक, वेट्

सूते, सुवाते, सुवते । सुषुवे । असूत । असोष्ट-असविष्ट । सोता-सविता । सोष्यते-सविष्यते । सूताम् । सुवेत । सविषीष्ट । असोष्यत-असविष्यत ।

---

* 'शी' धातु को सार्वधातुक लकारों में गुण और उनके प्रथमपुरुष के बहुवचन में 'अत्' प्रत्यय के पहले 'र' और होता है।

♦ लट् के पांच वचनों में 'ब्रू' धातु को विकल्प से 'आह' आदेश होकर दो २ रूप होते हैं और आर्धधातुक लकारों में 'व'को'वच' आदेश हो जाता है, लुङ् में अङ् होकर 'ट' और बढ़ जाता है।

जागृ = जागना, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

जागर्त्ति, जागृतः जाग्रति। अजागार—जागराञ्चकार। अजागः, अजागृताम्, अजागरुः। अजागरीत्। जागरिता। जागरिष्यति। जागर्त्तु। जागृयात्। जागर्यात्। अजागरिष्यत्।

हिन्दीभाषा में अनुवाद करो

पुरा ऋषयः स्वयमुप्तानि नीवाराद्यन्नानि जक्षुः। अस्यां पाठशालायां कति छात्राः सन्ति। वेदितोऽपि स नावेदीत्। गुरवोऽस्मान् सदा शिष्यासुः। अहनिष्यत चेत्कामादि शत्रून्तर्हि सुखमवेत्स्यथ। ह्यः सभायां त्वं कुत्रासथाः? स यज्ञाय गां दुदोह। पठनार्थं यूयं कुत्र यातास्थ? यदाऽहं भवत्पार्श्वं आयंस्तदैव भवन्तस्तत्र गताः। शिक्षां समाप्य व्याकरणमध्येष्ये। पुरा भीष्मः शरशय्यायां शिश्ये। गोपालाः क्षीरे जलं युवन्ति। अस्मासु यो वाग्मी स एव सदसि ब्रूयात्। अन्तर्वत्नी किमसोष्ट पुत्रं वा दुहितरम्। किमहं रात्रावपि जागृयाम्?

संस्कृत में अनुवाद करो

अजीर्ण में खाना मत खाओ। क्या तुम कल वहाँ पर थे? क्या तुम मुझे नहीं जानते? गुरु शिष्य को शिक्षा करता है। धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा ने मारा था। वृद्धों के सामने उच्चासन पर मत बैठो। राजा प्रजा के लिये पृथ्वी को दुहता है। वह पढ़ने के लिये वहाँ जाता है। अवकाश होने पर मैं वहाँ आऊँगा। उसने मेरे साथ ही व्याकरण पढ़ा था। दिन में कभी मत सोओ। किसान अन्न में से भुस को अलग करते हैं। यदि सत्य बोलोगे तो सब तुम्हारा विश्वास करेंगे। स्त्री पुरुष अपने अनुरूप ही सन्तान उत्पन्न करते हैं। चोर रात को जागते हैं।

जुहोत्यादिगण *

हु = होम करना, देना और खाना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

जुहोति, जुहुतः, जुह्वति । जुहाव, जुहुवतुः, जुहुवुः । जुहोथ-जुहुविथ । जुहवाञ्चकार । अजुहोत्, अजुहुताम्, अजुहवुः । अहौषीत्, अहौष्टाम्, अहौषुः । होता । होष्यति । जुहोतु । जुहुयात् । हूयात् । अहोष्यत् ।

हा = छोड़ना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

जहाति, जहितः-जहीतः, जहति । जहौ । अजहात् । अहासीत् हाता । हास्यति । जहातु । जहाहि-जहिहि-जहीहि । जह्यात् । हेयात् । अहास्यत् ।

हा = जाना, आत्मनेपदी, सकर्मक, अनिट्

जिहीते, जिहाते, जिहते । जहे । अजिहीत । अहास्त । हाता । हास्यते । जिहीताम् । जिहीत । हासीष्ट । अहास्यत ।

दा = देना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

ददाति, दत्तः, ददति । दत्ते, ददाते, ददते । ददौ । ददे । अददात् । अदत्त । अदात् । अदित । दातासि । दातासे । दास्यति दास्यते । ददातु । दत्ताम । दद्यात । ददीत । देयात । दासीष्ट । अदास्यत । अदास्यत ।

* इस गण के सब धातुओं से सार्वधातुक लकारों में 'श्लु' प्रत्यय होकर धातु का द्विर्वचन होजाता है 'श्लु' में श् और ल् का लोप होकर केवल 'उ' रह जाता है ।

'आ' उपसर्ग के योग में 'दा' धातु का अर्थ लेना और यह आत्मनेपदी भी होजाता है—विद्यामादत्ते।

भी=डरना, परस्मैपदी, अकर्मक, अनिट्

बिभेति। बिभितः—बिभीतः, बिभ्यति। बिभाय, बिभ्यतुः, बिभ्युः। बिभयांचकार। अबिभेत्। अभैषीत्, अभैष्टाम्, अभैषुः। भेता। भेष्यति। बिभेतु। बिभियात्—बिभीयात्। भीयात्। अभेष्यत्।

भृ=धारण और पोषण, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

बिभर्त्ति, बिभृतः, बिभ्रति। बिभृते, बिभ्राते, बिभ्रते। बभार, बभ्रतुः, बभ्रुः। बभर्थ। बिभराञ्चकार। बभ्रे। अबिभः, अबिभृताम्, अबिभरुः। अबिभ्रत। अभार्षीत्। अभृत। भर्त्तासि। भर्त्तासे। भरिष्यति। भरिष्यते। बिभर्त्तु। बिभृताम्। बिभृयात्। बिभ्रीत। भ्रियात्। भृषीष्ट। अभरिष्यत्। अभरिष्यत।

पृ=पालन और पूरण, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

पिपर्त्ति, पिपूर्त्तः, पिपुरति। पपार, पपरतुः—पप्रतुः, पपरुः—पप्रुः। अपिपः, अपिपूर्ताम्, अपिपरुः। अपारीत्। परिता—परीता। परिष्यति—परीष्यति। पिपर्त्तु। पिपूर्यात्। पूर्यात्। अपरिष्यत्—अपरीष्यत्।

हिन्दी में अनुवाद करो।

अतीतायां पौर्णमास्यां सोमेनाहौषम्। भूतिकामस्त्वं व्यसनानि सर्वथा हेयाः। जिज्ञासुः शास्त्रस्य प्रवक्तारमाचार्यं जिहीते। बुभुक्षितायान्नं देहि। सिंहाज्जन्तवः सर्वे बिभ्यति। आश्रितं शरणापन्नं च यो न बिभर्त्ति स नृशंसतमः। सत्यकामोऽहं कथं स्वप्रतिज्ञां न पिपूर्याम्?

संस्कृत में अनुवाद करो ।

आनेवाली अमावस्या को अवश्य होम करूंगा । दुःख में जो नहीं छोड़ता वही सच्चा मित्र है । अन्धा लाठी के सहारे जाता है । मैंने उसको पुस्तक दी थी । बालक अजनबी से डरता है । सती पातिव्रत्य को धारण करती है । किसान पानी से खेतों को भरते हैं ।

दिवादिगण*

दिव् = खेलना आदि, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

दीव्यति । दिदेव । अदीव्यत् । अदेवीत् । देविता । देविष्यति । दीव्यतु । दीव्येत् । दीव्यात् । अदेविष्यत् ।

नृत् = नाचना, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

नृत्यति । ननर्त्त, ननृततुः । अनृत्यत् । अनर्त्तीत् । नर्त्तिता । नर्त्तिष्यति । नर्त्स्यति । नृत्यतु । नृत्येत् । नृत्यात् । अनर्त्तिष्यत्-अनर्त्स्यत् ।

त्रस = डरना, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

त्रस्यति-त्रसति । तत्रास । त्रेसतुः-तत्रसतुः, त्रेसुः-तत्रसुः । अत्रस्यत्—अत्रसत् । अत्रसीत् । त्रसिता । त्रसिष्यति । त्रस्यतु, त्रसतु । त्रस्येत्, त्रसेत् । त्रस्यात् । अत्रसिष्यत् ।

पुष् = पुष्ट होना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

पुष्यति । पुपोष । अपुष्यत् । अपोषीत् । पोष्टा । पोक्ष्यति । पुष्यतु । पुष्येत् । पुष्यात् । अपोक्ष्यत् ।

---

* दिवादि गण के सब धातुओं से सार्वधातुक लकारों में 'श्यन्' प्रत्यय होता है, परन्तु 'त्रस्' धातु को विकल्प से होता है । श् और न् का लोप होकर 'य' रह जाता है ।

नश् = अदर्शन, न दीखना, परस्मैपदी, अकर्मक, वेट्*

नश्यति। ननाश, नेशतुः, नेशुः। ननंष्ठ। अनश्यत्। अनशत्। नंष्ठा-नशिता। नंक्ष्यति-नशिष्यति। नश्यतु। नश्येत्। नश्यात्। अनंक्ष्यत्। अनशिष्यत्।

अस् = फेंकना, परस्मैपदी, सकर्मक, सेट्

अस्यति। आस। आस्यत्। आस्थत्†। असिता। असिष्यति। अस्यतु। अस्येत्। अस्यात्। आसिष्यत्।

'सम्' के योग में 'अस्' धातु का अर्थ संक्षेप करना, 'वि' के योग में विस्तार करना और निर् तथा अप् के योग में परास्त करना तथा 'अभि' के योग में अभ्यास करना होजाता है—विगृहीतं वाक्यं समस्यति। समस्तं व्यस्यति। जल्पेन वितण्डया च प्रतिवादिनं निरस्यति, अपास्यति वा। शब्दबोधार्थं व्याकरणमभ्यस्यति।

जन् = उत्पन्न होना, प्रकट होना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्‡

जायते। जज्ञे। अजायत। अजनि-अजनिष्ट। जनिता। जनिष्यते। जायताम्। जायेत। जनिषीष्ट। अजनिष्यत।

विद् = होना, आत्मनेपदी, अकर्मक, अनिट्

विद्यते। विविदे। अविद्यत। अवित्त। वेत्ता। वेत्स्यते। विद्यताम्। विद्येत। वित्सीष्ट। अवेत्स्यत।

---

* 'नश्' धातु के अनिट् पक्ष में नुम् का आगम होकर नंष्ठा। नंक्ष्यति। इत्यादि रूप होते हैं।

† 'अस्' धातु को लुङ् में अङ् होकर 'स्थुक्' का आगम हो जाता है।

‡ 'जन्' धातु को सार्वधातुक लकारों में 'जा' आदेश हो जाता है।

मन् = जानना, आत्मनेपदी, सकर्मक, अनिट्

मन्यते । मेने । अमन्यत । अमंस्त, अमंसाताम्, अमंसत । मन्ता । मंस्यते । मन्यताम् । मन्येत । मंसीष्ट । अमंस्यत ।

'अभि' के योग में 'मन्' धातु का अर्थ अभिमान, 'सम्' के योग में सम्मान, अप और अव के योग में अपमान और 'अनु' के योग में अनुमति होजाता है—आत्मानमभिमन्यते । गुरुं सम्मन्यते । शत्रुमपमन्यते, अवमन्यते वा । स कस्याप्यनुमतिं नानुमन्यते ।

मृष् = सहना, उभयपदी, सकर्मक, सेट्

मृष्यति । मृष्यते । ममर्ष । ममृषे । अमृष्यत् । अमृष्यत । अमर्षीत् । अमर्षिष्ट । मर्षितासि । मर्षितासे । मर्षिष्यति । मर्षिष्यते । मृष्यतु । मृष्यताम् । मृष्येत् । मृष्येत । मृष्यात् । मर्षिषीष्ट । अमर्षिष्यत् । अमर्षिष्यत ।

रञ्ज् = रंगना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

रज्यति । रज्यते । ररञ्ज । ररञ्जे । अरज्यत् । अरज्यत । अराङ्क्षीत् । अरङ्क्त । रङ्क्तासि । रङ्क्तासे । रङ्क्ष्यति । रङ्क्ष्यते । रज्यतु । रज्यताम् । रज्येत् । रज्येत । रज्यात् । रङ्क्षीष्ट । अरङ्क्ष्यत् । अरङ्क्ष्यत ।

'अनु' पूर्वक 'रञ्ज्' धातु प्रीति और 'वि' पूर्वक अप्रीति के अर्थ में और इन दोनों के योग में अकर्मक भी होजाता है—अनात्मवादिनः संसारे अनुरज्यन्ति । आत्मवादिनस्त्वनात्मवन्तं सर्वं नश्वरं मत्वा अस्मात् विरज्यन्ति ।

नह् = बान्धना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

नह्यति । नह्यते । ननाह । नेहिथ–ननद्ध । नेहे । अनह्यत् । अनह्यत । अनात्सीत् । अनद्ध । नद्धासि । नद्धासे । नत्स्यति । नत्स्यते । नह्यतु । नह्यताम् । नह्येत् । नह्येत । नह्यात् । नत्सीष्ट । अनत्स्यत् । अनत्स्यत ।

'सम्' के योग में 'नह्' धातु अकर्मक और सन्नद्ध होने के अर्थ में हो जाता है—युद्धाय सन्नह्यते।

उद्-डी = उड़ना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्

उड्डीयते। उड्डिड्ये। उदडीयत। उदडयिष्ट। उड्डयिता। उड्डयिष्यते। उड्डीयताम्। उड्डीयेत। उड्डयिषीष्ट। उदडयिष्यत।

'डी' धातु प्रायः 'उद्' उपसर्गपूर्वक ही प्रयुक्त होता है।

सू = उत्पन्न होना, आत्मनेपदी, सकर्मक, वेट्

सूयते। सुषुवे। असूयत। असविष्ट-असोष्ट। सविता-सोता। सविष्यते-सोष्यते। सूयताम्। सूयेत। सविषीष्ट-सोषीष्ट। असविष्यत-असोष्यत।

दू = दुःखी होना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्

दूयते। दुदुवे। अदूयत। अदविष्ट। दविता। दविष्यते। दूयताम्। दूयेत। दविषीष्ट। अदविष्यत।

जॄ = जीर्ण होना, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

जीर्यति। जजार, अजरतुः-जेरतुः। अजीर्यत्। अजारीत्-अजरत्। जरिता-जरीता। जरिष्यति-जरीष्यति। जीर्यतु। जीर्यात्। अजरिष्यत्-अजरीष्यत्।

हिन्दी में अनुवाद करो

युधिष्ठिरः शकुनिना सह अक्षैर्दिदेव। हास्तत्र नर्तका अनृत्यन्। बाल्ये सर्पादत्रसिषम्। वीतरोगस्त्वमचिरेणैव पोष्टासि। अन्यायकार्यवश्यमेव नंक्ष्यति। हव्येन देवाः कव्येन पितरश्च तृप्यन्ति। कूपे रज्जुमस्यत। कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति। यदि तत्र त्वमधेत्स्यथास्तर्हि मंस्ये सौभाग्यमात्मनः। साधवः खलवचनानि मृष्यन्ते। शूरः स्ववस्त्राणि रुधिरेण रज्यति।

कोऽनुरज्येत मतिमान् विषयेष्वपहारिषु। मनुष्यः बुद्धिबलेन मदोन्मत्तं हस्तिनमपि नह्यते। आकाशे पक्षिणउड्डीयन्ते। सुभद्रा अभिमन्युं सुषुवे। दूयन्ते पापिनःपापकर्मणः। जीर्यन्ति जरामापन्नाः।

संस्कृत बनाओ

मैं जुआ कदापि नहीं खेलूँगा। कामी पुरुष गणिकाओं को नचाते हैं। क्या मैं कायर हूँ जो युद्ध से डरूँ? व्यायाम से शरीर पुष्ट होता है। आपस की फूट से कौरवों का नाश हुआ था। भूखा बातों से तृप्त नहीं होता। आकाश में ढेला फेंकोगे तो नीचे गिरेगा। तेरी पत्नी धार्मिक पुत्र उत्पन्न करे। तिलों में तेल होता है पर बालू में नहीं होता। राम ने पिता की आज्ञा को माना था। दुर्बल सबल के अत्याचार को सहता है। मैं धर्म के रंग से अपने हृदयपट को रँगूँगा। वह केवल ईश्वर में अनुराग करता है। शान्ति की रज्जु से मनरूप हस्ती को बाँधो। कल पिंजरे में से तोता उड़ गया। गोबर में से कीड़े उत्पन्न होते हैं। जो किसी को सतावेगा वह आप भी दुःख पावेगा। काल पाकर सब वस्तु जीर्ण होते हैं।

स्वादिगण*

सु=मलना, अर्क खींचना, उभयपदी, सकर्मक, सेट्

सुनोति। सुनुते। सुषाव। सुषुवे। असुनोत्। असुनुत। असावीत्। असविष्ट-असोष्ट। सोतासि। सोतासे। सोष्यति। सोष्यते। सुनोतु। सुनुताम्। सुनुयात्। सुन्वीत। सूयात्। सविषीष्ट-सोषीष्ट। असोष्यत्। असोष्यत।

---

* स्वादिगण के समस्त धातुओं से सार्वधातुक लकारों में 'श्नु' प्रत्यय और बढ़ जाता है।

मि-फेंकना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

मिनोति। मिनुते। मिमाय। मिम्ये। अमिनोत्। अमिनुत। अमासीत्। अमास्त। मातासि। मातासे। मास्यति। मास्यते। मिनोतु। मिनुताम्। मिनुयात्। मिन्वीत। मीयात्। मासीष्ट। अमास्यत्। अमास्यत।

'अनु' के योग में 'मि' धातु का अर्थ अनुमान, 'उप' के योग में उपमान और 'प्र' के योग में प्रमाण हो जाता है। यथा— पुत्रं दृष्ट्वा पितरमनुमिनोति। गां दृष्ट्वा गवयमुपमिनोति। प्रमाणैरर्थं प्रमिणोति।

चि-चुनना, उभयपदी, द्विकर्मक, अनिट्

चिनोति। चिनुते। चिकाय-चिचाय। चिक्ये। अचिनोत्। अचिनुत। अचैषीत्। अचेष्ट। चेतासि। चेतासे। चेष्यति। चेष्यते। चिनोतु। चिनुताम्। चिनुयात्। चिन्वीत। चीयात्। चेषीष्ट। अचेष्यत्-अचेष्यत।

'उप' के योग में 'चि' धातु का अर्थ बढ़ाना और 'अप' के योग में घटाना हो जाता है—यः धर्ममुपचिनोति स एव दुःखमपचिनोति।

स्तृ-ढकना, छिपाना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

स्तृणोति। स्तृणुते। तस्तार। तस्तरे। अस्तृणोत्। अस्तृणुत। अस्तार्षीत्। अस्तृत। स्तर्त्तासि। स्तर्त्तासे। स्तरिष्यति। स्तरिष्यते। स्तृणोतु। स्तृणुताम्। स्तृणुयात्। स्तृण्वीत। स्तर्यात्। स्तृषीष्ट। अस्तरिष्यत्। अस्तरिष्यत।

'वि' के योग में फैलाना और सम् और 'आ' के योग में बिछाना अर्थ हो जाता है—विस्तृणोति यशः। कुशान् संस्तृणोति आस्तृणोति वा।

शक्=सकना, परस्मैपदी, अकर्मक, अनिट्

शक्नोति। शशाक, शेकतुः, शेकुः। शशक्थ। अशक्नोत्। अशाक्षीत्—अशकत्। शक्ता। शक्ष्यति। शक्नोतु। शक्नुयात्। शक्यात्। अशक्ष्यत्।

आप्=पाना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

आप्नोति। आप, आपतुः, आपुः। आप्नोत्। आपत्। आप्ता। आप्स्यति। आप्नोतु। आप्नुयात्। आप्यात्। आप्स्यत्।

'वि' पूर्वक 'आप्' धातु व्याप्ति और 'सम्' पूर्वक समाप्ति के अर्थ में वर्तता है—विभुः सर्वं व्याप्नोति। भृत्यः कार्यं समाप्नोति।

अश् = पाना, आत्मनेपदी, सकर्मक, वेट्

अश्नुते। आनशे। आश्नुत। आशिष्ट-आष्ट। अशिता-अष्टा। अशिष्यते-अक्ष्यते। अश्नुताम्। अश्नुवीत। अशिषीष्ट-अक्षीष्ट। आशिष्यत-आक्ष्यत।

हिन्दी बनाओ

यज्ञार्थं सोमं सुनुत। शिशवः कन्दुकानि अमिन्वन्। मालाकारः पुष्पाणि चिनुते। दर्भैः वेदिं स्तृणुयात्। विद्यायाः पारं गन्तुं कोऽपि नाशकत्। धर्माय चेदशक्ष्यत तर्हि सुखमाप्स्यत। विद्ययाऽमृतमश्नुते।

संस्कृत बनाओ

उसने दशमूल का अर्क खींचा था। वह धूम से अग्नि का अनुमान करता है। अध्यापक परीक्षा के लिये योग्य विद्यार्थियों को चुनेगा। वे सब वस्त्रों से शरीर को ढकते हैं। अर्जुन कृष्ण की सहायता से कर्ण को मारने में समर्थ हुआ था। उद्योग से अवश्य मैं अपने अभीष्ट को पाऊँगा। वे सदा सुख और यश को पावें।

तुदादिगण*

तुद् = पीड़ा देना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

तुदति। तुदते। तुतोद। तुतुदे। अतुदत्। अतुदत। अतौत्सीत्। अतुत्त। तोत्तासि। तोत्तासे। तोत्स्यति। तोत्स्यते। तुदतु। तुदताम्। तुदेत्। तुदेत। तुद्यात्। तुत्सीष्ट। अतोत्स्यत्। अतोत्स्यत।

इष् = चाहना, परस्मैपदी, सकर्मक, सेट् †

इच्छति। इयेष, ईषतुः, ईषुः। ऐच्छत्। ऐषीत्। एषिता-एष्टा। एषिष्यति। इच्छतु। इच्छेत्। इष्यात्। ऐषिष्यत्।

'अधि' पूर्वक 'इष्' धातु सत्कार और 'प्रीति' पूर्वक ग्रहण करने के अर्थ में वर्त्तता है—गुरुमधीच्छति। दानं प्रतीच्छति।

व्रश्च् = काटना, परस्मैपदी, सकर्मक, वेट् ‡

वृश्चति। वव्रश्च। अवृश्चत्। अव्रश्चीत्-अव्राक्षीत्। व्रश्चिता-व्रष्टा। व्रश्चिष्यति-व्रक्ष्यति। वृश्चतु। वृश्चेत्। व्रश्च्यात्। अव्रश्चिष्यत्-अव्रक्ष्यत्।

प्रच्छ् = पूछना, परस्मैपदी सकर्मक, अनिट् +

पृच्छति। पप्रच्छ। अपृच्छत्। अप्राक्षीत्। प्रष्टा। प्रक्ष्यति। प्रच्छतु। पृच्छेत्। पृच्छयात्। अप्रक्ष्यत्।

---

* तुदादिगण के समस्त धातुओं को सार्वधातुक लकारों में 'श' प्रत्यय होता है। † 'इष्' धातु के 'ष्' को सार्वधातुक लकारों में 'च्छ' आदेश हो जाता है। ‡ 'व्रश्च्' धातु के 'र' को सार्वधातुक लकारों में 'ऋ' सम्प्रसारण हो जाता है। + 'प्रच्छ' धातु के 'र' को भी सार्वधातुक लकारों में 'ऋ' सम्प्रसारण होता है।

सृज् = बनाना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

सृजति। ससर्ज। ससर्जिथ-सस्रष्ठ। असृजत्। अस्राक्षीत्। स्रष्टा। स्रक्ष्यति। सृजतु। सृजेत्। सृज्यात्। अस्रक्ष्यत्।

'उद्' पूर्वक 'सृज्' धातु छोड़ने के अर्थ में बर्तता है—विरक्तः सर्वमुत्सृजति।

विश् = प्रवेश करना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

विशति। विवेश। अविशत्। अविक्षत्। वेष्टा। वेक्ष्यति। विशतु। विशेत्। विश्यात्। अवेक्ष्यत्।

'सम्' पूर्वक 'विश्' धातु शयन और 'उप' पूर्वक स्थिति अर्थ रखता है और अकर्मक भी हो जाता है-रात्रौ जनाः संविशन्ति। गृहे उपविशति।

षद्=दुःखी होना वा आश्रय लेना, परस्मैदी, अकर्मक व सकर्मक, अनिट्*

सीदति। ससाद। सेदिथ ससत्थ। असीदत्। असदत्। सत्ता। सेत्स्यति। सीदतु। सीदेत्। सद्यात्। असेत्स्यत्।

'प्र' पूर्वक 'सद्' धातु प्रसाद 'वि' पूर्वक विषाद 'अव' पूर्वक अवसाद (ह्रास) 'उद्' पूर्वक उत्साद (नाश) और 'आ' पूर्वक सामीप्य अर्थ में वर्तता है और 'आ' को छोड कर इन सब उपसर्गों के योग में अकर्मक भी हो जाता है—मनः धर्माचरणेन प्रसीदति। तदेव पापाचरणेन विषीदति। अकर्मण्यो-ऽवसीदति। पापकृदुत्सीदति। गुरुमासीदति।

जुष् = सेवन करना, आत्मनेपदी सकर्मक, सेट्

जुषते। जुजुषे। अजुषत। अजोषिष्ट। जोषिता। जोषिष्यते। जुषताम्। जुषेत। जोषिषीष्ट। अजोषिष्यत।

---

* 'सद्' धातु दुःखी होने के अर्थ में अकर्मक और आश्रय लेने के अर्थ में सकर्मक है।

उद्—विज् = डरना, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट्

उद्विजते। उद्विविजे। उदविजत। उदविजिष्ट। उद्विजिता। उद्विजिष्यते। उद्विजताम्। उद्विजेत। उद्विजिषीष्ट। उदविजिष्यत।

'विज्' धातु सर्वत्र 'उद्' पूर्वक ही प्रयुक्त होता है।

क्षिप् = फेंकना उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

क्षिपति। क्षिपते। चिक्षेप। चिक्षिपे। अक्षिपत्। अक्षिपत। अक्षैप्सीत्। अक्षिप्त। क्षेप्तासि। क्षेप्तासे। क्षेप्स्यति। क्षेप्स्यते। क्षिपतु। क्षिपताम्। क्षिपेत्। क्षिपेत। क्षिप्यात्। क्षेप्सीष्ट। अक्षेप्स्यत्। अक्षेप्स्यत।

'सम्' के योग में 'क्षिप्' धातु का अर्थ संक्षेप, 'उत्' के योग में उत्क्षेप 'अव' के योग में अवक्षेप और 'आ' के योग में आक्षेप हो जाता है—पदानि समासेन संक्षिपति। लोष्टमुत्क्षिपति। कूपे रज्जुमवक्षिपति। खलः साधुमाक्षिपति।

मुच् = छूटना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्*

मुञ्चति। मुञ्चते। मुमोच। मुमुचे। अमुञ्चत्। अमुञ्चत। अमुचत्। अमुक्त। मोक्तासि। मोक्तासे। मोक्ष्यति। मोक्ष्यते। मुञ्चतु। मुञ्चताम्। मुञ्चेत्। मुञ्चेत। मुच्यात्। मुक्षीष्ट। अमोक्ष्यत्। अमोक्ष्यत।

'मुच्' के ही समान विद्=पाना और सिच=सींचना धातुओं के रूप भी होते हैं।

'नि' पूर्वक 'सिच' धातु निषेक, 'अभि' पूर्वक अभिषेक और 'उत्' पूर्वक उत्सेक (गर्व) अर्थ में वर्तता है—पुमान्

---

* मुच, विद और सिच धातुओं के सार्वधातुक लकारों में (नुम्) का आगम हो जाता है।

योषिति वीर्यं निषिञ्चति । राजा यौवराज्ये ज्येष्ठपुत्रमभिषिञ्चति । उत्सिञ्चति मतोद्धतः ।

आ-दृ=आदर करना, आत्मनेपदी सकर्मक अनिट्

आद्रियते । आदद्रे । आद्रियत । आदृत । आदर्त्ता । आदरिष्यते । आद्रियताम् । आद्रियेत । आदृषीष्ट । आदरिष्यत ।

'दृ' धातु सर्वत्र ' आ ' उपसर्गपूर्वकही प्रयुक्त होता है ।

मृ=मरना, आत्मनेपदी तथा परस्मैपदी, अकर्मक, अनिट् *

म्रियते । ममार । अम्रियत । अमृत । मर्त्ता । मरिष्यति । म्रियताम् । म्रियेत । मृषीष्ट । अमरिष्यत् ।

हिन्दी बनाओ

दुर्योधनः राज्यलोभेन पाण्डवान् तुतुदे । सुसभायां सर्वे त्वदागमनमैच्छन् । तक्षा काष्ठार्थं वृक्षमवृश्चत् । त्वं मत्तः कं प्रश्नं प्रष्टासि ? पुष्पेभ्यः स्रजं स्रक्ष्यामि । स गृहं प्रविशति । पङ्के गौः सीदति । शिशुः भीतः सन् मातरमासीदति । सुखार्थी सदा धर्मं जुषेत । तत्र शत्रवः सदोद्विजिषीरन् । कृषकाः बीजानि क्षेत्रे क्षिपन्ते । स एव त्वां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । सेक्तास्म्यचिरेणैव क्षेत्रम् । सर्वदा गुरूनाद्रियेत । अकाले कोऽपि मा मृषीष्ट ।

संस्कृत बनाओ

उपेक्षा किया हुआ रोग पीछे सतावेगा । भूखा अन्न को चाहता है । हरे और फलवाले वृक्ष को मत काटो । तू मुझसे क्या पूछता था ? कुम्हार घड़े को बनाता है । मल्लाह जल में प्रवेश करते हैं ।

---

* मृ धातु से सार्वधातुक लकारों में आत्मनेपद और आर्धधातुक लकारों में आशीर्लिङ् को छोड़कर परस्मैपद के प्रत्यय होते हैं ।

उसने केवल धर्म का आश्रय लिया था। मैं पाप का कभी सेवन न करूँगा। बालक सर्प से डरता है। यदि खेत में बीज फेंकोगे तो अन्न पाओगे। तत्त्वज्ञानी बन्धन से छूटता है। धर्म से अर्थ को पाना चाहिए। यदि फल चाहते हो तो मूल को सींचो। सुशील वृद्धों का आदर करते हैं। रोग से प्रतिदिन सैकड़ों मनुष्य मरते हैं।

रुधादिगण*

रुध्=रोकना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

रुणद्धि, रुन्धः, रुन्धन्ति। रुन्धे, रुन्धाते, रुन्धिरे। रुरोध। रुरुधे। अरुणत्। अरुन्ध। अरुधत्—अरौत्सीत्। अरुद्ध। रोद्धासि रोद्धासे। रोत्स्यति। रोत्स्यते। रुणद्धु। रुन्धाम्। रुन्ध्यात् रुन्धीत। रुत्सीष्ट। अरोत्स्यत्। अरोत्स्यत।

'वि' के योग में 'रुध्' धातु का विरोध, 'अनु' के योग में अनुरोध और 'नि' के योग में निरोध अर्थ होता है—हितं विरुणद्धि मूर्खः। आग्रही स्वपक्षमनुरुन्धे। शत्रुं निरुणद्धि।

भिद्=तोड़ना, फोड़ना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

भिनत्ति। भिन्ते। बिभेद। बिभिदे। अभिनत्। अभिन्त। अभिदत्–अभैत्सीत्। अभित्त। भेत्तासि। भेत्तासे। भेत्स्यति। भेत्स्यते। भिनत्तु। भिन्ताम्। भिन्द्यात्। भिन्दीत। भिद्यात्। भित्सीष्ट। अभेत्स्यत्। अभेत्स्यत।

---

* रुधादिगण के सब धातुओं से सार्वधातुक लकारों में 'श्नम्' प्रत्यय होता और 'श' का लोप होकर केवल 'न' रहजाता है।

युज्=मिलाना, जोड़ना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

युनक्ति । युङ्क्ते । युयोज । युयुजे । अयुनक् । अयुङ्क्त । अयुजत्-अयौक्षीत् । अयुक्त । योक्तासि । योक्तासे । योक्ष्यति । योक्ष्यते । युनक्तु । युङ्क्ताम् । युञ्ज्यात् । युञ्जीत । युज्यात् । युक्षीष्ट । अयोक्ष्यत् । अयोक्ष्यत ।

'प्र' उपसर्ग के योग में 'युज्' धातु का अर्थ प्रयोग करना, 'उद्' के योग में उद्योग करना, 'नि' के योग में नियत करना, 'अनु' के योग में प्रश्न करना और 'उप' के योग में उपकार करना हो जाता है—अपदं न प्रयुञ्जीत । साधवः परहितायोद्युञ्जते । सेवायां भृत्यं नियुङ्क्ते । शिष्यः गुरुमनुयुङ्क्ते । धनं परहितायोपयुङ्क्ते । इनमें से केवल 'उद्' के योग में यह धातु अकर्मक हो जाता है ।

पिष्=पीसना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

पिनष्टि, पिष्टः, पिंषन्ति । पिपेष, पिपिषतुः, पिपिषुः । अपिनट्, अपिंष्टाम् अपिंषन् । अपिषत् । पेष्टा । पेक्ष्यति । पिनष्टु । पिंष्यात् । पिष्यात् । अपेक्ष्यत् ।

विज्=डरना, काँपना, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्

विनक्ति । विवेज । अविनक् । अविजीत् । विजिता । विजिष्यति । विनक्तु । विञ्ज्यात् । विज्यात् । अविजिष्यत् ।

भुज्=पालन और खाना, परस्मै० आत्मने० सकर्मक, अनिट्*

भुनक्ति । भुङ्क्ते । बुभोज । बुभुजे । अभुनक् । अभुङ्क्त । अभौक्षीत् । अभुक्त । भोक्तासि । भोक्तासे । भोक्ष्यति । भोक्ष्यते ।

*'भुज्' धातु पालन अर्थ में परस्मैपदी और भक्षण अर्थ में आत्मनेपदी है ।

भुनक्तु। भुङ्क्ताम् भुज्यात्। भुञ्जीत। भुज्यात्। भुङ्क्षीष्ट। अभोक्ष्यत्। अभोक्ष्यत।

हिंस=मारना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

हिनस्ति। जिहिंस। अहिनत्। अहिंसीत्। हिंसिता। हिंसिष्यति। हिनस्तु। हिंस्यात्। हिंस्यात्। अहिंसिष्यत्।

हिन्दी बनाओ

अभिमन्युः चक्रव्यूहेन भीष्मादीनां षण्णां महारथिनां मार्गं रुरुधे। स मुष्टिना मृत्पिण्डमभिनत्। तत्रा शकटे धुरमयुंक। शिलापट्टे माषान् पेक्ष्यामि। शिशुः चित्रलिखितात् सिंहादपि विनक्ति। स राजा धर्मतः सर्वां भुनक्तु पृथिवीमिमाम्। क्षुधा चेद्भुञ्जीत। मा हिंस्यात् कमपि प्राणिनम्।

संस्कृत बनाओ

मैं उसे वहाँ जाने से रोकूँगा। जापान ने रूस का मान तोड़ दिया। डाक्टर टूटी हुई हड्डी को जोड़ता है। अँगरेज़ों की कृपा से कलें अन्न पीसती हैं। जिस राज्य में बलवान् से निर्बल काँपते हैं वह राज्य कैसा? जो पृथिवी को पालेगा वही उसके मधुर फलों को खावेगा। उसने सिवाय अपने मन के और किसी को नहीं मारा।

तनादिगण*

तन्=फैलाना, बढ़ाना, उभयपदी, सकर्मक, सेट्

तनोति। तनुते। ततान, तेनतुः, तेनुः। तेने। अतनोत्। अतनुत। अतनीत्—अतानीत्। अतत—अतनिष्ट। अतथाः—अतनिष्ठाः। तनितासि। तनितासे। तनिष्यति। तनिष्यते।

* तनादिगण के सब धातुओं से सार्वधातुक लकारों में 'उ' प्रत्यय होता है।

तनोतु । तनुताम् । तनुयात् । तन्वीत । तन्यात् । तनिषीष्ट । अतनिष्यत् । अतनिष्यत ।

मन्=मानना, आत्मनेपदी, सकर्मक, सेट्

मनुते । मेने । अमनुत । अमनिष्ट । मनिता । मनिष्यते । मनुताम् । मन्वीत । मनिषीष्ट । अमनिष्यत ।

कृ=करना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट

करोति । कुरुते । चकार, चक्रतुः । चकर्थ । चक्रे । अकरोत् । अकुरुत । अकार्षीत् । अकृत । कर्त्तासि । कर्तासे । करिष्यति । करिष्यते । करोतु । कुरु । करवाणि । कुरुताम् । कुरुष्व । करवै । कुर्यात् । कुर्वीत । क्रियात् । कृषीष्ट । अकरिष्यत् । अकरिष्यत ।

'सम्' के योग में 'कृ' धातु का अर्थ संस्कार—अग्निना जलं संस्करोति । 'अधि,के योग में अधिकार—शत्रुमधिकरोति । 'अनु' के योग में अनुकरण—पितरमनुकरोति । परा और 'निर-आ' के योग में निवारण—शत्रून् पराकरोति, निराकरोति वा । "वि' के योग में विकार—क्रोष्टा विकुरुते स्वरान् । 'अप' के योग में अपकार-शत्रुमपकुरुते । 'उप' के योग में उपकार-मित्रमुपकुरुते । 'प्रति' के योग में प्रतीकार—रोगं प्रतिकरोति । 'आविस्' के योग में आविष्कार—कलामाविष्करोति । 'नमस्' के योग में नमस्कार—गुरून् नमस्करोति । 'ऊरी' 'उररी' के योग में स्वीकार-प्रतिज्ञातमर्थमूरीकरोति, उररीकरोति वा । और 'तिरस्' के योग में तिरस्कार हो जाता है—धूर्त्तं तिरस्करोति ।

हिन्दी बनाओ

सुचरित्रैस्त्वमात्मनो यशस्तनितासे । समदर्श्यात्मवत् सर्वाणि भूतानि मनुते । केनापि सह विवादं मा कुर्वीत ।

संस्कृत बनाओ

विद्या से बुद्धि फैलती है । शास्त्र की आज्ञा को सदा मानना चाहिए । जो गुरु आज्ञा देंगे वह मैं करूँगा ।

क्र्यादिगण*

क्री = खरीदना, उभयपदी, सकर्मक, अनिट्

क्रीणाति । क्रीणीते । चिक्राय । चिक्रिये । अक्रीणात् । अक्रीणीत । अक्रैषीत् । अक्रेष्ट । क्रेतासि । क्रेतासे । क्रेष्यति । क्रेष्यते । क्रीणातु । क्रीणीताम् । क्रीणीयात् । क्रीणीयीत । क्रीयात् । क्रेषीष्ट । अक्रेष्यत्, अक्रेष्यत ।

'वि' के योग में 'क्री' धातु का अर्थ बेचना और 'प्रति' के योग में बदलना हो जाता है—अन्न विक्रीणाति । तिलेभ्यः माषान् प्रतिक्रीणीते ।

पू = शोधना, उभयपदी, सकर्मक, सेट्

पुनाति । पुनीते । पुपाव । पुपुवे । अपुनात् । अपुनीत । अपावीत् । अपविष्ट । पवितासि । पवितासे । पविष्यति । पविष्यते । पुनातु । पुनीताम् । पुनीयात् । पुनीत । पूयात् । पविषीष्ट । अपविष्यत् । अपविष्यत ।

बन्ध = बान्धना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्

बध्नाति । बबन्ध । अबध्नात् । अभान्त्सीत्, अबान्धाम्, अभान्त्सुः । बन्धा । भन्त्स्यति । बध्नातु । बधान । बध्नीयात् । बध्यात् । अभन्त्स्यत् ।

---

*क्र्यादिगण के समस्त धातुओं से सार्वधातुक लकारों में 'श्ना' प्रत्यय होता है ।

'प्र' के योग में प्रबन्ध, 'सम्' के योग में सम्बन्ध, 'नि' के योग में निबन्ध, 'प्रति' के योग में प्रतिबन्ध और 'अनु' के योग में अनुबन्ध अर्थ हो जाते हैं—पूर्तये कार्यान् प्रबध्नाति । गार्हस्थ्याय दारैरात्मानं सम्बध्नाति । कविः यशसे लाभाय च ग्रन्थं निबध्नाति । सुकार्ये विघ्नाः पुरुषं प्रतिबध्नन्ति । भवे भवे संस्कारा अनुबध्नन्ति प्राणिनम् ।

ज्ञा = जानना, परस्मैपदी, सकर्मक, अनिट्*

जानाति । जज्ञौ । अजानात् । अज्ञासीत् । ज्ञाता । ज्ञास्यति । जानातु । जानीयात् । ज्ञायात्-ज्ञेयात् । अज्ञास्यत् ।

अश् = खाना, परस्मैपदी, सेट्

अश्नाति । आश । आश्नात् । आशीत् । अशिता । अशिष्यति । अश्नातु । अशान । अश्नीयात् । अश्यात् । आशिष्यत् ।

ग्रह् = ग्रहण करना, उभयपदी, सकर्मक, सेट्

गृह्णाति । गृह्णीते । जग्राह । जगृहे । अगृह्णात् । अगृह्णीत । अग्रहीत् । अग्रहीष्ट । ग्रहीतासि । ग्रहीतासे । ग्रहीष्यति । ग्रहीष्यते । गृह्णातु । गृह्णीताम् । गृह्णीयात् । गृह्णीत । गृह्यात् । ग्रहीषीष्ट । अग्रहीष्यत् । अग्रहीष्यत ।

'सम्' के योग मे ग्रह धातु का अर्थ संग्रह, 'नि' के योग में निग्रह, 'वि' के योग में विग्रह, 'आ' के योग में आग्रह, 'प्रति' के योग में प्रतिग्रह, 'अनु' के योग में अनुग्रह और 'अव' के योग में अवग्रह (वृष्टिप्रतिबन्ध) हो जाता है । गृहस्थो योगक्षेमार्थं अन्नादीन् संगृह्णाति । धीरः स्वमन एव निगृह्णाति । अध्यापकश्छात्राणां बोधाय समस्तं पदं विगृह्णाति । शूराः

---

*'ज्ञा' धातु को सार्वधातुक लकारों में 'जा' आदेश हो जाता है ।

युद्धे शत्रून् विगृह्णन्ति। आग्रही स्ववचनमेवागृह्णाति। दीनाः दानं प्रतिगृह्णन्ति। दयालवः प्राणिमात्रमनुगृह्णन्ति। पाश्चात्यो वातः वृष्टिमवगृह्णति।

हिन्दी बनाओ

कृषकेभ्यो वणिगन्नमक्रीणीत। कदा त्वागमनेन मद्गृहं पवितास्थ? पशून् गोष्ठे बध्नीयाः। विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्। नहि बन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम्। अजीर्णे ज्वरे वा कदापि नाश्नीयात्। धर्मादपेतमर्थं न ग्रहीष्यामि।

संस्कृत बनाओ

धन से अन्न ख़रीदूँगा। मन के भावों को पवित्र करना चाहिये। तृणों का समूह हाथी को बाँधता है। अपने हित को पशु भी जानते हैं। भूख लगने पर खाऊँगा। अन्याय से किसी के पदार्थ को मत ग्रहण करो।

चुरादिगण*

चुर्=चोरी करना, उभयपदी, सकर्मक, सेट्

चोरयति। चोरयते। चोरयाञ्चकार। चोरयाम्बभूव। चोरयामास। चोरयाञ्चक्रे। अचोरयत्। अचोरयत। अचूचुरत्।

---

*चुरादिगण के सब धातुओं से 'णिच्' प्रत्यय होकर प्रयोजक व्यापार में जैसे क्रियाओं के रूप होते हैं वैसे ही हो जाते हैं। चुरादिगणीय धातुओं से परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों के प्रत्यय होते हैं, जहाँ क्रियाफल कर्तृगामी न हो वहां परस्मैपद और जहां कर्तृगामी हो वहाँ आत्मनेपद होता है।

अचूचुरत । चोरयितासि । चोरयितासे । चोरयिष्यति । चोरयिष्यते । चोरयतु । चोरयताम् । चोरयेत् । चोरयेत । चोर्यात् । चोरयिषीष्ट । अचोरयिष्यत् । अचोरयिष्यत ।

इसी प्रकार पूज्=पूजना, भूष्=सजना, मृष्=सहना, कथ=कहना, गण=गिनना, और स्पृह्=चाहना इत्यादि चुरादिगणीय धातुओं के रूप होते हैं ।

हिन्दी बनाओ

तस्य वक्त्रं चन्द्रमसोऽभिरामतामचूचुरत् । गुरून् वृद्धांश्च सदा पूजयेत् । विनीतश्छात्रः विद्ययात्मानं भूषयते । शान्त्यै तस्य, दुर्वचनान्यप्यमर्षयम् । सः स्वमुखादेवात्मचरितं कथयिष्यति । न गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम् । कस्याप्यनिष्टं न स्पृहयेत् ।

संस्कृत बनाओ

चोर रात को चोरी करते हैं । वह अपने माता पिता की पूजा करता है । पूर्वकाल की स्त्रियाँ विद्या के भूषण से भूषित होती थीं । ईर्ष्यी दूसरे की उन्नति को नहीं सहता । तुम को जो कुछ कहना है कहो । बुद्धिमान् कार्यार्थी सुख और दुःख को कुछ नहीं गिनता ।

उक्त दशगणों के अतिरिक्त (जिनका वर्णन हुवा) दश ही प्रक्रिया भी हैं जिनमें प्रत्ययों के भेद से क्रियाओं के रूप में कुछ परिवर्तन हो जाता है, अब हम संक्षेप से क्रमशः उनका भी निरूपण करते हैं:—

(१) णिजन्तप्रक्रिया

कारक विषय में कह आये हैं कि प्रेरणा करनेवाले को प्रयोजक कहते हैं और उसी को हेतु संज्ञा भी है और जिसको प्रेरणा

की जाती है, वह प्रयोज्य कहलाता है। जहाँ (हेतु) प्रयोजक कर्त्ता का व्यापार हो अर्थात् क्रिया प्रयोजक कर्त्ता के द्वारा सम्पादित हुई हो, वहाँ धातु से 'णिच्' प्रत्यय होकर दश लकारों की उत्पत्ति होती है—भवन्तं प्रेरयति = भावयति। कारयति। इत्यादि।

यह बात भी स्मरण रखनी चाहिये कि अण्यन्त क्रिया का कर्त्ता ण्यन्त क्रिया के प्रयोग में प्रायः कर्म बन जाता है। यथा—शिष्यः पुस्तकं पठति। यहाँ शिष्य जो कर्त्ता है वह—शिष्यं पुस्तकं पाठयति। इस णिजन्त के प्रयोग में कर्म हो गया।

प्रायः प्रयोजक कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति और प्रयोज्य कर्त्ता में तृतीया विभक्ति रहती है। यथा—देवदत्तः यज्ञदत्तेन दापयति। विष्णुमित्रः सोमदत्तेन पाचयति।

गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक, भोजनार्थक, शिक्षणार्थक तथा अकर्मक धातुओं से जो प्रेरणार्थक क्रियायें बनती हैं, उनमें प्रयोज्य कर्त्ता कर्म होकर द्वितीयान्त हो जाता है। गत्यर्थक—मन्त्री दूतं गमयति, यापयति वा। परन्तु गत्यर्थकों में भी 'नी' और 'वह्' धातु का प्रयोज्य कर्त्ता तृतीयान्त ही रहता है—स्वामी भृत्येन भारं नाययति, वाहयति वा। बुद्ध्यर्थक—पिता पुत्रं बोधयति, वेदयति वा। भोजनार्थक—यजमानः ब्राह्मणं भोजयति, आशयति वा। शिक्षणार्थक—गुरुः शिष्यमध्यापयति, पाठयति वा। अकर्मक—गृहस्थोऽतिथिमासयति। माता वत्सं शाययति।

प्रेरणार्थक हृ और कृ धातुओं का प्रयोज्य कर्त्ता द्वितीयान्त और तृतीयान्त दोनों रहता है—स तं तेन वा भारं हारयति, श्रमं कारयति।

णिजन्त धातुओं से यदि क्रियाफल कर्त्ता में जावे तो आत्मनेपद और यदि क्रियाफल कर्मगामी हो तो परस्मैपद होता है।

अब हम संक्षेप के लिये इन प्रक्रियाओं में केवल तीन लकारों के रूप सो भी प्रथम पुरुष के एक वचन में दिखलावेंगे अर्थात्

वर्त्तमान में लट् के, भूत में लुङ् के और भविष्य में लृङ् के। शेष लकारों तथा पुरुषों और वचनों के रूप सुधी पाठक स्वयं अनुसन्धान करके बनालें।

धातु	वर्त्तमान	भूत	भविष्य
भू	भावयति-ते	अबीभवत्-त	भावयिष्यति-ते
पा	पाययति-ते	अपीप्यत्-त	पाययिष्यति-ते
स्था	स्थापयति-ते	अतिष्ठिपत्-त	स्थापयिष्यति-ते
गम्	गमयति-ते	अजीगमत्-त	गमयिष्यति-ते
श्रु	श्रावयति-ते	अशिश्रवत्-त अशुश्रवत्-त	श्रावयिष्यति-ते
वृत्	वर्त्तयति-ते	अवीवृतत्-त अववर्त्तत्-त	वर्त्तयिष्यति-ते
पच्	पाचयति-ते	अपीपचत्-त	पाचयिष्यति-ते
यज्	याजयति-ते	अयीयजत्-त	याजयिष्यति-ते
लभ्	लम्भयति-ते	अललम्भत्-त	लम्भयिष्यति-ते
अधीङ्	अध्यापयति-ते	अध्यजीगपत्-त अध्यापिपत्-त	अध्यापयिष्यति-ते
हन्	घातयति-ते	अजीघनत्-त	घातयिष्यति-ते
दा	दापयति-ते	अदीदिपत्-त	दापयिष्यति-ते
नृत्	नर्त्तयति-ते	अनीनृतत्-त अननर्त्तत्-त	नर्त्तयिष्यति-ते
मृष्	मर्षयति-ते	अमीमृषत्-त अममर्षत्-त	मर्षयिष्यति-ते
चि	चाययति-ते चापयति-ते	अचीचयत्-त अचीचपत्-त	चाययिष्यति-ते चापयिष्यति-ते
धृ	धारयति-ते	अदीधरत्-त	धारयिष्यति-ते
मुच्	मोचयति-ते	अमूमुचत्-त	मोचयिष्यति-ते
भुज	भोजयति-ते	अबूभुजत्-त	भोजयिष्यति-ते

कृ	कारयति-ते	अचीकरत्-त	कारयिष्यति-ते
ज्ञा	ज्ञापयति-ते	अजिज्ञपत्-त	ज्ञापयिष्यति-ते
क्री	क्रापयति-ते	अचीक्रपत्-त	क्रापयिष्यति-ते
गण्	गणयति-ते	अजीगणत्-त	गणयिष्यति-ते

हिन्दी बनाओ

गुरुः शिष्यं भावयति । पाययति शिशुं जननी पयः । नियोजयति पुत्रं हिताय जनकः । गमयति भृत्यानापणे । श्रावयति धर्मं श्रोतृभ्यः । श्रावयते शास्त्रं पुण्याय । अध्यापयति शिष्यानाचार्यः । नर्त्तयन्ति गणिकां स्त्रैणाः । अमीमृषन् पाण्डवाः कौरवापराधान् । युधिष्ठिरः कृष्णस्याधिपत्ये राजसूयमचीकरत । रावणः मारीचेन सीतामजीहरत् । अतिथयेऽन्नं पाचयति । याजयन्ति यजमानं ऋत्विजः । याजयन्ते धनाय याज्ञिकाः । क्रापयते वणिग्भिः वस्तूनि । रात्रौ तस्कराः जनान् भीषयन्ते । राजाऽधमर्णेनोत्तमर्णाय ऋणं दापयिष्यति । भूस्वामिनः क्षेत्रेषु बीजानि वापयन्ते। मालाकारः वाटिकायां पुष्पाणि चाययति चापयति वा । ईश्वरः सूर्यादिना विश्वं धारयति । अचिरेणैव बन्धनात्त्वां मोक्षयिष्यामि । कारुणिको बुभुक्षितान् भोजयति । घातयति न्यायाध्यक्षः मनुष्यघातिनम् ।

संस्कृत बनाओ

वह अपराधी को दण्ड दिलाता है । शङ्कर ने मण्डन को शास्त्रार्थ में हराया था । राजा अधिकारियों से प्रजा का शासन कराता है । पालन की हुई प्रजा राजा को बढ़ाती है । बढ़ी हुई लता वृक्ष को लपेटती है । माता थपकी से बच्चे को सुलाती है । वह फूँक मार कर अग्नि को जलाता है । सात महारथियों के बीच में अकेला अभिमन्यु भेजा गया था । किसान बैलों से खेतों को सिंचवाते हैं । सूर्य अपनी किरणों से कमलों को खिलाता है ।

सेनापति अपने बुद्धि-कौशल से सेना को जिताता है। आचार्य शिष्यों को सदाचार सिखाता है।

(२) सन्नन्तप्रक्रिया

धातु से इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होकर उक्त दश लकारों की उत्पत्ति होती है—कर्तुमिच्छति = चिकीर्षति।

सन्नन्त प्रक्रिया में परस्मैपदी धातु से परस्मैपद, आत्मनेपदी धातु से आत्मनेपद और उभयपदी से उभयपद के प्रत्यय होते हैं। बुभूषति। विवर्द्धिषते। चिकीर्षति, चिकीर्षते।

धातु	वर्त्तमान	भूत	भविष्य
भू	बुभूषति	अबुभूषत्	बुभूषिष्यति
पठ	पिपठिषति	अपिपठिषत्	पिपठिषिष्यति
पा	पिपासति	अपिपासत्	पिपासिष्यति
गम्	जिगमिषति	अजिगमिषत्	जिगमिषिष्यति
जि	जिगीषति	अजिगीषत्	जिगीषिष्यति
यज्	यियक्षति-ते	अयियक्षत्-त	यियक्षिष्यति-ते
पू	पुपूषते	अपुपूषत	पुपूषिष्यते
लभ्	लिप्सते	अलिप्सत	लिप्सिष्यते
वृत्	विवृत्सति	अविवृत्सत्	विवृत्स्यति
	विवर्त्तिषते	अविवर्त्तिषत	विवर्त्तिष्यते
अद्	जिघत्सति	अजिघत्सीत्	जिघत्सिष्यति
शी	शिशयिषते	अशिशयिषत	शिशयिषिष्यते
विद्	विविदिषति	अविविदिषत्	विविदिषिष्यति
अधीङ्	अधिजिगांसते	अध्यजिगांसिष्ट	अधिजिगांसिष्यते
धातु	वर्त्तमान	भूत	भविष्य
हन्	जिघांसति	अजिघांसीत्	जिघांसिष्यति
दा	दित्सति-ते	अदित्सत्-त	दित्सिष्यति-ते
आप्	ईप्सति	ऐप्सीत्	ईप्सिष्यति

कृ	चिकीर्षति-ते	अचिकीर्षत्-त	चिकीर्षिष्यति-ते
ग्रह्	जिघृक्षति-ते	अजिघृक्षत्-त	जिघृक्षिष्यति-ते
ज्ञप्	ज्ञीप्सति	अज्ञीप्सत्	ज्ञीप्सिष्यति

हिन्दी बनाओ

शब्दबोधाय व्याकरणं पिपठिषामि। क्षुधानिवृत्तयेऽन्नं जिघत्सति। कौरवा अन्यायेनाबुभूषन्। पाण्डवाः न्यायेनाऽविवर्द्धिषन्त। श्रमेणाभिभूताः कृषकाः शिशयिषन्ते। जिज्ञासवो धर्मं विविदिषन्ति। ते तत्र कथं न जिगमिषिष्यन्ति? विद्यार्थिनः शास्त्राण्यधिजिगांसन्ते। नृपः शत्रून् जिगीषति। मनुष्याः हिंस्रान् जन्तून् जिघांसन्ति। गृही सर्वानाश्रमान् दिधरिषते। व्याधः मत्स्यान् जिघृक्षति। पौर्णमास्यां पत्रेष्टिना यियक्षामि। कितवाः द्यूतेन दुद्यूषन्ति दिदेविषन्ति वा। लोलुपः परार्थान् लिप्सते। पात्रेभ्यो धनं दित्सामि, दित्से वा। कृषकः क्षेत्रमसिसिक्षत्।

संस्कृत बनाओ

वह धर्म से बढ़ना चाहता है। गूँगा अपने अभिप्राय को संकेतों से जताना चाहता है। वह बाग़ में फूलों को चुनना चाहता था। वह मधुरवचन से अपनी वाणी को पवित्र करना चाहता है। वह मुझ से पढ़ना चाहता था। मैं उसके पास जाना नहीं चाहता। वह मुझे कुछ देना चाहता था। पर मैं उससे कुछ लेना नहीं चाहता। वह उसके काम को करना नहीं चाहता।

(३) यङन्तप्रक्रिया

हलादि वा एकाच् धातुओं से वारंवार वा बहुतायत से होने के अर्थ में 'यङ्' प्रत्यय होकर उक्त दश लकारों की उत्पत्ति होती है। यथा—पुनः पुनरतिशयेन वा भवति बोभूयते।

गत्यर्थक धातुओं से कुटिलता के अर्थ में ही 'यङ्' प्रत्यय होता है, बहुतायत में नहीं—कुटिलं गच्छति जङ्गम्यते। कुटिलं क्रामति चङ्क्रम्यते।

किन्हीं किन्हीं धातुओं से भावनिन्दा अर्थ में भी 'यङ्' होता है—निन्दितं जपति जञ्जप्यते।

यङन्त धातुओं से केवल आत्मनेपद ही होता है, परस्मैपद नहीं।

धातु	वर्त्तमान	भूत	भविष्य
भू	बोभूयते	अबोभूयिष्ट	बोभूयिष्यते
पा	पेपीयते	अपेपीयिष्ट	पेपीयिष्यते
स्मृ	सास्मर्यते	असास्मर्यिष्ट	सास्मर्यिष्यते
व्रज्	वाव्रज्यते	अवाव्रजिष्ट	वाव्रजिष्यते
वृत्	वरीवृत्यते	अवरीवृतिष्ट	वरीवृतिष्यते
यज्	यायज्यते	अयायजिष्ट	यायजिष्यते
हन्	जेघ्नीयते	अजेघ्नीयिष्ट	जेघ्नीयिष्यते
	जङ्घन्यते	अजङ्घनिष्ट	जङ्घनिष्यते
शी	शाशय्यते	अशाशयिष्ट	शाशयिष्यते
हु	जोहूयते	अजोहूयिष्ट	जोहूयिष्यते
जन्	जाजायते	अजाजायिष्ट	जाजायिष्यते
	जञ्जन्यते	अजञ्जनिष्ट	जञ्जनिष्यते
शक्	शाशक्यते	अशाशकिष्ट	शाशकिष्यते
प्रच्छ्	पाप्रच्छ्यते	अपाप्रच्छिष्ट	पाप्रच्छिष्यते
भुज्	बोभुज्यते	अबोभुजिष्ट	बोभुजिष्यते
ग्रह्	जागृह्यते	अजाग्रहिष्ट	जाग्रहिष्यते
कृ	चेक्रीयते	अचेक्रीयिष्ट	चेक्रीयिष्यते
मृष्	मरीमृष्यते	अमरीमृषिष्ट	मरीमृषिष्यते

हिन्दी बनाओ

सरसि कमलं जाजायते, जञ्जन्यते वा। युधिष्ठिरः स्वर्गाय अयायजिष्ट। भूतिकामः हितवचनानि सास्मर्यते। पथ्यश्वः चङ्क्रम्यते। अयस्काराः तप्तायसं बेभिद्यन्ते। होता अग्नौ हव्यं

जोहूयते । वधिकः निरागसान् पशून् जेघ्नीयते, जङ्घन्यते वा । वर्षासु जलाशयाः परीपूर्यन्ते । ब्राह्मणाः श्राद्धान्नं बोभुज्यन्ते । बोधाय शिष्यः गुरुं पाप्रच्छ्यते ।

संस्कृत बनाओ

विनाश के समय यादवों ने बहुतायत से मदिरा पी थी । किसान बारबार अपने खेत को सींचता है । साँप सदा तिरछा चलता है । व्यापारी वस्तुओं को बार बार ख़रीदता है । दानशील सुपात्रों को बारबार देता है ।

(४) यङ्लुगन्त प्रक्रिया

यङ् प्रत्यय का लोप होजाने पर भी उसी अर्थ में दश लकार सम्बन्धी तिबादि प्रत्यय होते हैं—पुनः पुनरतिशयेन वा भवति बोभवीति, बोभोति । बहुतायत से वा बार बार होता है ॥

इस प्रक्रिया में धातुओं से केवल परस्मैपद के प्रत्यय होते हैं

धातु	वर्तमान	भूत	भविष्य
भू	बोभवीति	अबोभवीत्	बोभविष्यति
	बोभोति	अबोभोत्	
गम्	जङ्गमीति	अजङ्गमीत्	जङ्गमिष्यति
	जङ्गन्ति		
प्रच्छ	पाप्रच्छीत्, पाप्रष्टि	अपाप्रच्छीत्	पाप्रच्छिष्यति
ग्रह	जाग्रहीति, जाग्राढ़ि	अजाग्रहीत्	जाग्रहिष्यति

उदाहरण इसके भी यङन्त के ही समान समझो ।

(५) नामधातुप्रक्रिया

संज्ञा वा प्रातिपदिक को (जिसका वर्णन प्रथमभाग में हो चुका है) नाम कहते हैं, उससे किसी विशेष अर्थ में प्रत्यय हो कर धातुवत् लकारों की उत्पत्ति जिसमें होती है, उसे नाम

धातु प्रक्रिया कहते हैं। इस प्रक्रिया में अर्थ विशेष के बल से प्रातिपदिक भी तिङन्त होजाता है।

जहां अपने लिए इच्छा की जाय वहां संज्ञा से कर्मकारक में 'क्यच्' प्रत्यय होकर लकार सम्बन्धी तिबादि प्रत्यय उत्पन्न होते हैं। यथा—आत्मनः पुत्रमिच्छति—पुत्रीयति।

उक्त अर्थ में प्रातिपदिक से काम्यच् प्रत्यय भी होता है। आत्मनः धनमिच्छति—धनकाम्यति यशस्काम्यति।

आचार (वर्त्तने) के अर्थ में जिससे उपमा दीजावे, उपमान वाचक कर्म से भी 'क्यच्' प्रत्यय होता है। पुत्रमिवाचरति—पुत्रीयति छात्रम्। पितरमिवाचरति—पित्रीयति गुरुम्।

उपमानवाचक अधिकरण से भी उक्त अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय होता है-पर्यङ्कमिवाचरति-पर्यङ्कीयति मञ्चके। गृहीयति कुट्याम्।

उपमानवाची कर्त्ता से उक्त अर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय होता है—हंस इवाचति—हसायते वकः।

भृशादि गण पठित शब्दों से अभूततद्भाव (न होकर होने के) अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है। अभृशो भृशो भवति—भृशायते—इसी प्रकार—मन्द्रायते। चपलायते। पण्डितायते। उत्सुकायते। उन्मनायते। इत्यादि में भी समझो।

शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व और मेघ शब्दों से करने के अर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय होता है। शब्दं करोति—शब्दायते—इसी प्रकार—वैरायते। कहलायते। अभ्रायते। इत्यादि में समझो।

सुखादिगणपठित शब्दों से कर्तृवेदना (स्वयं अनुभव करने) के अर्थ में 'क्यङ्' प्रत्यय होता है—सुखं वेदयते—सुखायते—ऐसे ही—दुःखायते। तृप्तायत। कृच्छ्रायते। करुणायते इत्यादि।

क्यङ् प्रत्ययान्त से आत्मनेपद एवं क्यच्, क्यष् और काम्यच् प्रत्ययान्त से परस्मैपद के प्रत्यय होते हैं।

नाम	प्रत्यय	किस अर्थ में	वर्त्तमान	भूत	भविष्य
पुत्र	क्यच्	स्वेच्छा	पुत्रीयति	अपुत्रीयीत्	पुत्रीयिष्यति
राजन्	,,	,,	राजीयति	अराजीयीत्	राजीयिष्यति
वाच्	,,	,,	वाच्यति	अवाच्यीत्	वाच्यिष्यति
				अवाचीत्	वाचिष्यति
गो	,,	,,	गव्यति	अगव्यीत्	गव्यिष्यति
कर्तृ	,,	,,	कर्त्रीयति	अकर्त्रीयीत्	कर्त्रीयिष्यति
अश्व	,,	मैथुनेच्छा	अश्वस्यति	आश्वस्यीत्	अश्वस्यिष्यति
क्षीर	,,	लालसा	क्षीरस्यति	अक्षीरस्यीत्	क्षीरस्यिष्यति
अशन	,,	बुभुक्षा	अशनायति	आशनायीत्	अशनायिष्यति
उदक	,,	पिपासा	उदन्यति	औदन्यीत्	उदन्यिष्यति
धन	,,	लिप्सा	धनायति	अधनायीत्	धनायिष्यति
यशस्	काम्यच्	स्वेच्छा	यशस्काम्यति	अयशस्काम्यीत्	यशस्काम्यिष्यति
हंस	क्यङ्	आचरण	हंसायते	अहंसायिष्ट	हंसायिष्यते

नाम	प्रत्यय	किस अर्थ में	वर्त्तमान	भूत	भविष्य
अप्सरस्	क्यङ्	आचरण	अप्सरायते	आप्सरायिष्ट	अप्सरायिष्यते
पयस्	,,	,,	पयायते	अपयायिष्ट	पयायिष्यते
			पयस्यते	अपयसिष्ट	पयसिष्यते
क्लीब	,,	,,	क्लीबायते	अक्लीबायिष्ट	क्लीबायिष्यते
,,	क्विप्	,,	क्लीबते	अक्लीबिष्ट	क्लीबिष्यते
राजन्	क्यङ्	,,	राजायते	अराजायिष्ट	राजायिष्यते
भृश	,,	अभूततद्भाव	भृशायते	अभृशायिष्ट	भृशायिष्यते
लोहित	क्यष्	भाव	लोहितायति	अलोहितायीत्	लोहितायिष्यति
कष्ट	क्यङ्	क्रमण	कष्टायते	अकष्टायिष्ट	कष्टायिष्यते
बाष्प	,,	उद्वमन	बाष्पायते	अबाष्पायिष्ट	बाष्पायिष्यते
शब्द	,,	करण	शब्दायते	अशब्दायिष्ट	शब्दायिष्यते
सुख	,,	कर्तृवेदन	सुखायते	असुखायिष्ट	सुखायिष्यते
नमस्	क्यच्	सत्करण	नमस्यति	अनमस्यीत्	नमस्यिष्यति

हिन्दी बनाओ

दशरथः पुत्रेष्ट्या अपुत्रीयीत्। यज्ञे हविः समिध्यति। उत्तरकुरुदेशे प्रजैव राजीयति। मूकः कथं न वाचिष्यति? गोपालाः गव्यन्ति। कार्यं सदा स्वनिष्पत्तौ कर्त्रीयति। वडवा अश्वस्यति। बालः क्षीरस्यति। बुभुक्षिताः दुर्भिक्षे अशनायन्ति। ग्रीष्मे पिपासितोदन्यति। लुब्धः लिप्सया धनायति। सज्जनाः परोपकारेणैव यशस्काम्यन्ति। बहुदारकस्य दाराः परस्परं सपत्नायन्ते। सुचरित्रस्य सती पत्नी अप्सरायते। उपस्कृतं जल पयायते, पयस्यते वा। क्लैणास्त्वचिरेणैव क्लीबिष्यन्ते। विदुषामभावे मूर्खा अपि पण्डितायन्ते। निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते। वर्षासु वीरुधो हरितायन्ति। पापिनः स्वकर्मभिरेव कष्टायिष्यन्ते। निदाघे सूर्य ऊष्मायते। प्रावृषि पूर्वोयो वातः मेघायते। सज्जनाः परस्य व्यसनोदये दुःखायन्ते। दयालवो दीनेषु करुणायन्ते। छात्रः गुरून् नमस्यति।

संस्कृत बनाओ

यशस्वी अपने लिये यश चाहता है। यजमान यज्ञ से स्वर्ग चाहता है। वह अपने लिये धन चाहेगा। शीत काल में धूप वस्त्र का सा आचरण करती है। वह उनके साथ हमारा सा आचरण करता है। युद्ध में वीर सिंह का सा आचरण करते हैं। परीक्षा में तीव्रबुद्धि छात्र भी मन्द हो जाता है। धीर पुरुष विपत्ति में भी उदास नहीं होते। दुर्जन सज्जनों से विना कारण ही वैर करते हैं। दूसरों को उन्नत देखकर सज्जन सुख का अनुभव करते हैं।

(६) भावकर्मप्रक्रिया

अब तक जिस क्रिया का वर्णन हुआ, वह कर्तृवाच्य कहलाती है, इसलिये कि कर्त्ता उसमें प्रधान रहता है।

यथा—देवदत्तः पठति। यज्ञदत्तः पाठयति। सोमदत्तः पिपठिषति। ब्रह्मदत्तः पापठ्यते, पापठीति वा। इन्द्रदत्तः पुत्रीयति। इन सब क्रियाओं में कर्त्ता ही प्रधान है, इसलिये ये सब कर्तृवाच्य हैं। अब हम भाव और कर्मवाच्य क्रिया का वर्णन संक्षेप से करते हैं।

धातु के अर्थ को भाव कहते हैं, जैसे होना, जाना, करना, इत्यादि। भाव के एक होने से उसमें द्विवचन और बहुवचन की सम्भावना नहीं हो सकती और न मध्यम और उत्तम पुरुष ही होते हैं, किन्तु सर्वत्र प्रथमपुरुष का एक वचन होता है यथा— तेन, तैः, त्वया, युष्माभिः, मया, अस्माभिर्वा आस्यते।

भाववाच्य और कर्मवाच्य का लक्षण यह है कि अकर्मक धातुओं से भाववाच्य और सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य क्रिया बनाई जाती है। भाववाच्य—'भू' से भूयते। 'आस्' से—आस्यते। 'शी' से—शय्यते। इत्यादि। कर्मवाच्य—'गम्' से—गम्यते। 'पठ' से—पठ्यते। 'श्रु' से—श्रूयते। इत्यादि। यह बात स्मरण रक्खो कि सकर्मक से भाव में और अकर्मक से कर्म में प्रत्यय नहीं होते।

भाववाच्य और कर्मवाच्य क्रियाओं के रूप एक जैसे होते हैं, केवल इतना अन्तर है कि कर्मवाच्य क्रिया में कर्तृवाच्य के सदृश तीनों पुरुष और तीनों वचन होते हैं, परन्तु भाववाच्य में केवल प्रथम पुरुष का एक वचन ही होता है।

भाववाच्य क्रिया में भावप्रधान और कर्मवाच्य में कर्म प्रधान रहता है।

भाव और कर्म में धातु से सदा आत्मनेपद ही होता है

धातु	सकर्मक वा अक०	वर्त्तमान	भूत	भविष्य	भाव या कर्म
भू	अकर्मक	भूयते	अभावि	भविष्यते भाविष्यते	भाववाच्य
अनुभू	सकर्मक	अनुभूयते	अन्वभावि	अनुभविष्यते अनुभाविष्यते	कर्मवाच्य
पा	,,	पीयते	अपायि	पायिष्यते	,,
दा	,,	दीयते	अदायि	दायिष्यते	,,
स्था	अकर्मक	स्थीयते	अस्थायि	स्थायिष्यते	भाववाच्य
गम्	सकर्मक	गम्यते	अगामि	गमिष्यते	कर्मवाच्य
स्मृ	,,	स्मर्यते	अस्मारि	स्मरिष्यते	,,
दृश्	,,	दृश्यते	अदर्शि	द्रक्ष्यते	,,
लभ्	,,	लभ्यते	अलाभि, अलम्भि,	लप्स्यते	,,
नी	,,	नीयते	अनायि	नयिष्यते	,,
पच्	सकर्मक	पच्यते	अपाचि	पक्ष्यते	कर्मवाच्य
यज्	,,	इज्यते	अयाजि	यक्ष्यते	,,
विद्	सकर्मक	विद्यते	अवेदि	वेत्स्यते	कर्मवाच्य
शी	अकर्मक	शय्यते	अशायि	शयिष्यते	भाववाच्य

धातु	सकर्मक वा अक०	वर्त्तमान	भूत	भविष्य	भाव वा कर्म
आस्	अकर्मक	आस्यते	आसि	आसिष्यते	भाववाच्य
अधि-इ	सकर्मक	अधीयते	अध्यैयि	अध्येष्यते	कर्मवाच्य
भृ	,,	भ्रियते	अभारि	भरिष्यते	,,
जन्	अकर्मक	जायते, जन्यते	अजनि	जनिष्यते	भाववाच्य
मृष्	सकर्मक	मृष्यते	अमर्षि	मर्षिष्यते	कर्मवाच्य
हन्	सकर्मक	हन्यते	अघानि,अवधि	हनिष्यते	कर्मवाच्य
शक्	अकर्मक	शक्यते	अशाकि	शक्ष्यते	भाववाच्य
मृ	अकर्मक	म्रियते	अमारि	मरिष्यते	भाववाच्य
धृ	सकर्मक	ध्रियते, धार्यते	अधारि	धरिष्यते	कर्मवाच्य
मुच्	,,	मुच्यते	अमोचि	मोक्ष्यते	,,
भिद्	,,	भिद्यते	अभेदि	भेत्स्यते	,,
कृ	,,	क्रियते	अकारि	करिष्यते	,,
ग्रह्	,,	गृह्यते	अग्राहि	ग्रहीष्यते	,,

इनके अतिरिक्त णिजन्त, सन्नन्त और यङन्त से भी भाव और कर्म में प्रत्यय होते हैं—

णिजन्त से भाव में—भाव्यते। अभावि। भावयिष्यते।
णिजन्त से कर्म में—श्राव्यते। अश्रावि। श्रावयिष्यते।
सन्नन्त से भाव में—बुभूष्यते। अबुभूषि। बुभूषिष्यते।
सन्नन्त से कर्म में—शुश्रूष्यते। अशुश्रूषि। शुश्रूषिष्यते।
यङन्त से भाव में—बोभूय्यते। अबोभूयि। बोभूयिष्यते।
यङन्त से कर्म में—शोश्रूय्यते। अशोश्रूयि। शोश्रूयिष्यते।

भाव और कर्म में आत्मनेपद के इन ६ प्रत्ययों के सिवाय तव्य और क्त आदि और भी कई प्रत्यय होते हैं, जिनका वर्णन कृदन्त में आवेगा।

हिन्दी बनाओ

अनुभूयते धर्मात्मना शश्वदानन्दः। विरज्यता पुरुषेण सर्वस्वं पात्रेभ्यो दीयते। दुरात्मभिः श्रेयसः पथि न स्थीयते। पितुरादेशाद्रामेण वनमगामि। यैर्निष्कामो धर्मः सेव्यते तैरेव विमलं यशो लभ्यते। भूतिमिच्छद्भिः शिष्यैः गुरूणां वचनान्याद्रियन्ते। पुरुषार्थमन्तरा केनाप्यर्थं नावाप्यते। वेदार्थं जिज्ञासुभिः षडङ्गान्यधीयन्ते। साधुभिः खलानां दुर्वचनानि मृष्यन्ते। यैः ब्रह्मचर्यो धरिष्यते तैरेव शूरः पुत्रो जनिष्यते। कल्पादौ ब्रह्मणा सर्गः सृज्यते। क्षीणदोषाः सर्वपापेभ्यो मुच्यन्ते। मनुष्यस्योन्नतिः विद्ययैव सम्भाव्यते। उपदेशकेन श्रोतृभ्यो धर्मः श्राव्यते। सर्वैः सर्वावस्थासु बुभूष्यते। केनाऽपि स्वस्य प्रतिकूलानि न चिकीर्ष्यन्ते। संसारेऽस्मिन् जीवैः स्वकर्मभिर्जाजायते। भूतिकामेन गुरूणां हितवचनानि सास्मर्यन्ते।

संस्कृत बनाओ

हम से वहाँ जाया नहीं जाता। क्या किसी से बिना भूख के भी खाया जाता है। विद्या से सब कुछ जाना जाता है। खेत

पानी से सींचे जाते हैं। तुमसे वहाँ क्यों नहीं बैठा जाता? सज्जनों से दूसरों का दुःख हरा जाता है। आलसी से अपना बोझ भी नहीं उठाया जाता। ईश्वर से यह जगत् धारण और पालन किया जाता है। उससे वहाँ नहीं ठहरा गया।

(७) कर्मकर्तृप्रक्रिया

जिस कर्त्ता में कर्म के समान क्रिया उपलक्षित हो वह कर्मवत् माना जाता है और ऐसी क्रिया को (जिसमें कर्त्ता कर्मवत् माना जावे) कर्मकर्तृक्रिया कहते हैं। यथा—भिद्यते काष्ठम्। पच्यते ओदनः।

कर्मकर्तृप्रक्रिया में प्रायः सकर्मक धातु भी अकर्मक हो जाते हैं और उनसे कर्म में प्रत्यय न होकर भाव में होते हैं। यथा— पच्यते ओदनेन। भिद्यते काष्ठेन।

करण और अधिकरण में भी कहीं कहीं पर कर्तृव्यापार देखा जाता है। जैसे असिश्छिनत्ति, स्थाली पचति परन्तु इनका कर्त्ता कर्मवत् नहीं होता और इसलिए उससे भाव और कर्म में प्रत्यय भी नहीं होते।

कर्तृवाच्य क्रियाओं को कर्मवाच्य और भाववाच्य बनाने के लिए ही कर्मवत् अतिदेश किया गया है। जैसे—ओदनं पचति। काष्ठं भिनत्ति। इन वाक्यों में जो ओदन और काष्ठ कर्म थे, वे ओदनः ओदनेन वा पच्यते। काष्ठं काष्ठेन वा भिद्यते। इन वाक्यों में कर्त्ता हैं। बस कर्म का कर्तृत्वेन परिणाम होना ही इस प्रक्रिया का प्रयोजन है।

कर्मकर्तृवाच्य क्रियाओं के रूप वैसे ही होते हैं, जैसे कि भाववाच्य और कर्मवाच्य क्रियाओं के दिखलाये जाचुके हैं, अतः पृथक् उनके लिखने की आवश्यकता नहीं।

(८) आत्मनेपदप्रक्रिया

क्रियाओं के दो भेद हैं, एक आत्मनेपद और दूसरा परस्मैपद । पद नाम संज्ञा और क्रिया दोनों का है । जिस क्रिया का फल अपने में आवे, वह आत्मनेपद और जिसका फल दूसरे में जावे वह परस्मैपद है । जैसे – स्वर्गाय यजते = स्वर्ग के लिये यज्ञ करता है । भोजनाय पचते = खाने के लिये पकाता है । यहाँ यज्ञ करना और पकाना रूप क्रिया का फल कर्त्ता के अपने लिये होने से आत्मनेपद हुवा । याजकाः यजन्ति = याजक यज्ञ करते हैं । पाचकाः पचन्ति = पाचक पकाते हैं । यहाँ यज्ञ करना और पकाना रूप क्रियाओं का फल कर्त्ता के लिये न होने से किन्तु यजमान और स्वामी के लिये होने से परस्मैपद हुआ । यह सामान्य नियम है, अब विशेष नियम दिखलाते हैं –

अनुदात्तेत् और ङित् धातुओं से आत्मनेपद होता है । अनुदात्तेत् – आस् = आस्ते । वस् = वस्ते ॥ इत्यादि ङित् – शीङ् = शेते । सूङ् = सूते । इत्यादि ।

भाव और कर्म में भी धातुओं से आत्मनेपद होता है । भाव में – आस्यते त्वया । शय्यते मया । कर्म में – क्रियते पटः । नीयते भारः । इत्यादि ।

'नि' उपसर्गपूर्वक 'विश्' धातु से आत्मनेपद होता है । निविशते ।

परि, वि और अव उपसर्गपूर्वक 'क्री' धातु से भी आत्मनेपद होता है – परिक्रीणीते । विक्रीणीते । अवक्रीणीते ।

वि और परा उपसर्गपूर्वक 'जि' धातु से भी आत्मनेपद होता है – विजयते । पराजयते ।

'आ' उपसर्गपूर्वक 'दा' धातु से मुँह न चलाने के अर्थ में आत्मनेपद होता है – विद्यामादत्ते = विद्या को ग्रहण करता है,

मुंह चलाने के अर्थ में परस्मैपद होता है—मुखं व्याददाति= मुंह चलाता है।

'आ, अनु, सम् और परि उपसर्ग पूर्वक 'क्रीड' धातु से भी आत्मनेपद होता है—आक्रीडते। अनुक्रीडते। संक्रीडते। परिक्रीडते।

सम्, अव, प्र और वि उपसर्ग पूर्वक 'स्था' धातु से भी आत्मनेपद होता है—संतिष्ठते। अवतिष्ठते। प्रतिष्ठते। वितिष्ठते।

'उद्' उपसर्ग पूर्वक 'स्था' धातु से भी यदि उठना अर्थ न हो तो आत्मनेपद होता है—गेहे उत्तिष्ठते=घर में ठहरता है। उठने के अर्थ में परस्मैपद होगा—आसनादुत्तिष्ठति=आसन से उठता है।

उद् और वि उपसर्ग पूर्वक अकर्मक 'तप' धातु से आत्मनेपद होता है—ग्रीष्मे सूर्य उत्तपते, वितपते=ग्रीष्म में सूर्य तपता है। सकर्मक से परस्मैपद होगा—उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः= सुनार सोने को तपाता है। वितपति पृष्ठं सविता=सूर्य पीठ को तपाता है * ॥

'आ' उपसर्ग पूर्वक अकर्मक यम् और हन् धातु से भी आत्मनेपद होता है—आयच्छते। आहते। सकर्मक से नहीं होता। आयच्छति कूपाद्रज्जुम्=कूवे से रस्सी को खींचता है। आहन्ति सर्पं लगुडेन=सांप को लाठी से मारता है।

'सम्' उपसर्ग पूर्वक अकर्मक गम्, ऋच्छ्, प्रच्छ्, स्वृ, ऋ, श्रु, दृश् और विद् धातुओं से भी आत्मनेपद होता है। संगच्छते। समृच्छते। सम्पृच्छते। संस्वरते। समरते। संशृणुते। संपश्यते। संवित्ते।

---

* उपसर्गों के योग से प्रायः अकर्मक धातु सकर्मक और सकर्मक अकर्मक होजाते हैं।

नि, सम्, उप और वि उपसर्ग पूर्वक 'ह्वे' धातु से आत्मनेपद होता है। निह्वयते। संह्वयते। उपह्वयते। विह्वते। स्पर्द्धा (मुक़ाबले) के अर्थ में 'आ' उपसर्ग से भी आत्मनेपद होता है। मल्लो मल्लमाह्वयते=मल्ल मल्ल को चेलेंज देता है। स्पर्द्धा से अन्यत्र--गुरुः शिष्यमाह्वयति=गुरु शिष्य को बुलाता है।

मारण, अवक्षेपण, सेवन, साहसिक्य, प्रतियत्न, प्रकथन और उपयोग अर्थों में 'कृ' धातु से आत्मनेपद होता है। मारण—शत्रूनुत्कुरुते=शत्रुओं को निर्मूल करता है। अवक्षेपण—श्येनो वार्त्तिकामुदाकुरुते=बाज़ बत्तक को दबाता है। सेवन—पितरमुपकुरुते=पिता की सेवा करता है। साहसिक्य—परदारान् प्रकुरुते=पराई स्त्री को रखता है। प्रतियत्न-उदकस्योपस्कुरुते=जल का संस्कार करता है। प्रकथन—निन्दां प्रकुरुते=निन्दा करता है। उपयोग—धर्मार्थं शतं प्रकुरुते=धर्मार्थ सौ रुपये लगाता है।

विजय करने के अर्थ में 'अधि' पूर्वक 'कृ' धातु से भी आत्मनेपद होता है—शत्रुमधिकुरुते=शत्रु को वश में करता है। विजय से अन्यत्र परस्मैपद होगा—अर्थमधिकरोति=धन को अधिकार में लाता है।

शब्दकर्मक और अकर्मक 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से भी आत्मनेपद होता है। शब्दकर्मक—क्रोष्टा विकुरुते स्वरान्=शृगाल स्वरों को बिगाड़ता है। अकर्मक—अनुत्तीर्णाश्छात्रा विकुर्वते=अनुत्तीर्ण छात्र विकार को प्राप्त होते हैं।

सम्मानन, उत्क्षेपण, आचार्यकरण, ज्ञान, भृति, ऋणदान और व्यय इन अर्थों में 'नी' धातु से आत्मनेपद होता है। सम्मानन—शिष्यं शास्त्रे नयते=शिष्य को शास्त्र में लेजाता है। शास्त्र की प्राप्ति से शिष्य का सम्मान सूचित होता है। उत्क्षेपण—दण्डमुन्नयते=दण्ड को ऊपर फेंकता है। आचार्यकरण

माणवकमुपनयते = बालक को उपनीत करता है। ज्ञान—तत्त्वं नयते = तत्त्व का निश्चय करता है। भृति—भृत्यानुपनयते = भृत्यों को वेतन देता है। ऋणदान — करं विनयते = कर देता है। व्यय-शतं विनयते = सौ का ख़र्च करता है। इनसे अन्यत्र परस्मैपद होगा — अजां ग्रामं नयति = बकरी को गाँव में लेजाता है।

यदि कोई शरीर का अवयव 'नी' धातु का कर्म न हो तो भी उससे आत्मनेपद होता है — क्रोध कोर्ध विनयते = क्रोध को क्रोध ? दूर करता है। अन्यत्र — करंमुखे विनयति = हाथ को मुँह में लेजाता है।

अप्रतिबन्ध, उत्साह और विस्तार अर्थ में 'क्रम' धातु से आत्मनेपद होता है। अप्रतिबन्ध — शास्त्रेष्वस्य बुद्धिः क्रमते = शास्त्रों में इसकी बुद्धि चलती है अर्थात् रुकती नहीं। उत्साह अध्ययनाय क्रमते = पढ़ने के लिए उत्साह करता है। विस्तार-क्रमतेऽस्मिन् विद्या = इसमें विद्या फैलती है। परा उपसर्ग के योग में भी उक्त धातु से आत्मनेपद होता है — पराक्रमते। 'आ' उपसर्ग के योग में भी यदि नक्षत्रभ्रमण अर्थ हो तो आत्मनेपद होता है — आक्रमन्ते ज्योतींषि = नक्षत्र घूमते हैं। 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'क्रम' धातु से पादविक्षेप अर्थ में जो धातु का निज अर्थ है आत्मनेपद होता है—सुष्ठु विक्रमतेऽश्वः = घोड़ा अच्छा क़दम चलता है। प्र और उप उपसर्गों के योग में भी यदि आरम्भ अर्थ हो तो आत्मनेपद होता है प्रक्रमते भोक्तुम् = खाने को आरम्भ करता है। उपक्रमते गन्तुम् = जाने को आरम्भ करता है।

अकर्मक 'ज्ञा' धातु से भी आत्मनेपद होता है — सर्पिषो जानीते — घृत से प्रवृत्त होता है। यहाँ अज्ञानार्थक 'ज्ञा' धातु के होने से करण में षष्ठी हुई है। सकर्मक से परस्मैपद होता है। स्वरेण पुत्रं जानाति — आवाज़ से पुत्र को पहचानता है।

मनुष्यों के स्पष्ट और सम्यक् उच्चारण अर्थ में 'वद्' धातु से आत्मनेपद होता है। संप्रवदन्ते विद्वांसः = विद्वान् संवाद करते हैं। 'अनु' पूर्वक अकर्मक 'वद्' धातु से भी उक्त अर्थ में आत्मनेपद होता है—अनुवदते कठः कलापस्य = कठ कलाप के समान स्पष्ट बोलता है। विवाद अर्थ में उक्त धातु से आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों होते हैं—विप्रवदन्ते विप्रवदन्ति वा वैयाकरणाः = वैयाकरण विवाद करते हैं।

'अव' पूर्वक 'गॄ' धातु से आत्मनेपद होता है—अवगिरते = निगलता है। प्रतिज्ञान अर्थ में 'सम्' पूर्वक 'गॄ' धातु से भी आत्मनेपद होता है—शब्दं संगिरते = शब्द को जानता है। प्रतिज्ञान से अन्यत्र—संगिरति ग्रासम् = ग्रास को निगलता है।

'उद्' उपसर्ग पूर्वक सकर्मक 'चर्' धातु से आत्मनेपद होता है—धर्ममुच्चरते = धर्म का उल्लंघन करता है। अकर्मक से परस्मैपद होता है—बाष्पमुच्चरति = धुआँ ऊपर को जाता है। तृतीया विभक्ति के योग में 'सम्' पूर्वक 'चर्' धातु से भी आत्मनेपद होता है—अश्वेन सञ्चरते = घोड़े से विचरता है।

'सम्' पूर्वक 'दा' (यच्छ) धातु से तृतीया के योग में यदि वह तृतीया चतुर्थी के अर्थ में हो तो आत्मनेपद होता है। अशिष्ट (निन्दित) व्यवहार में तृतीया चतुर्थी के अर्थ में होती है—वेश्यया सम्प्रयच्छते कामुकः = कामी पुरुष वेश्या के लिये देता है। और जहाँ तृतीया चतुर्थी के अर्थ में न होगी वहाँ परस्मैपद होगा—पाणिना सम्प्रयच्छति = हाथ से देता है।

'उप' पूर्वक 'यम्' धातु से पाणिग्रहण अर्थ में आत्मनेपद होता है—भार्यामुपयच्छते = पत्नी को प्राप्त होता है। पाणिग्रहण से अन्यत्र—गणिकामुपयच्छति = वेश्या को प्राप्त होता है।

सन् प्रत्ययान्त ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् धातुओं से आत्मनेपद होता है—धर्मं जिज्ञासते = धर्म को जानना चाहता है। शास्त्रं

शुश्रूषते = शास्त्र को सुनना चाहता है । पठितं सुस्मूर्षते = पढ़े हुवे को स्मरण करना चाहता है । नृपं दिदृक्षते = राजा को देखना चाहता है । परन्तु 'अनु' उपसर्ग पूर्वक सन्नन्त 'ज्ञा' धातु से तथा प्रति और आ उपसर्गपूर्वक सन्नन्त 'श्रु' धातु से आत्मनेपद नहीं होता — मित्रमनुजिज्ञासति = मित्र को जानना चाहता है । धर्मस्य महिमानं प्रतिशुश्रूषति, आशुश्रूषति = धर्म के महिमा को सुनना चाहता है ।

'शद्' धातु से सार्वधातुक लकारों में अर्थात् लट्, लङ्, लोट् और विधिलिङ् में आत्मनेपद होता है, आर्धधातुकों में परस्मैपद — शीयते । अशीयत । शीयताम् । शीयेत ।

'मृ' धातु से उक्त ४ लकारों के सिवाय लुङ् और आशीर्लिङ् में भी आत्मनेपद होता है — म्रियते । अम्रियत । अमृत । म्रियताम् । म्रियेत । मृषीष्ट ।

जो धातु आत्मनेपदी हैं, उनमे 'सन्' प्रत्यय होकर भी आत्मनेपद ही होता है — जैसे आस् और शी धातु आत्मनेपदी हैं — आस्ते । शेते । इनसे सन्नन्त में भी — आसिसिषते । शिशयिषते । आत्मनेपद ही होगा ।

जिस धातु से 'आम्' प्रत्यय होता है, उस ही के समान अनुप्रयुक्त 'कृ' धातु से भी आत्मनेपद होता है — एधाञ्चक्रे । ईहाञ्चक्रे ।

प्र और उप उपसर्गपूर्वक 'युज्' धातु से यज्ञपात्रों का प्रयोग न हो तो आत्मनेपद होता है — शब्दान् प्रयुङ्क्ते = शब्दों का प्रयोग करता है । अर्थानुपयुङ्क्ते = अर्थों का उपयोग करता है । यज्ञपात्रों के प्रयोग में — यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति । परस्मैपद होगा । उद् और नि उपसर्ग के योग में भी 'युज्' धातु को आत्मनेपद ही होता है — उद्युङ्क्ते । नियुङ्क्ते ।

'सम्' पूर्वक 'क्ष्णु' धातु से भी आत्मनेपद होता है—संक्ष्णुते शस्त्रम्=शस्त्र को तीक्ष्ण करता है।

'भुज' धातु से भोजन अर्थ में आत्मनेपद और पालन अर्थ में परस्मैपद होता है—भोज्यं भुङ्क्ते=भोज्य को खाता है। महीं भुनक्ति=पृथिवी का पालन करता है।

यदि कर्तृवाच्य का कर्म हेतुवाच्य का कर्त्ता हो जावे तो हेतुवाच्य क्रिया से आत्मनेपद होता है—भृत्याः स्वामिनं पश्यन्ति=भृत्य स्वामी को देखते हैं। यहाँ भृत्य कर्त्ता और स्वामी कर्म है। स्वामी स्वात्मानं भृत्यान् दर्शयते=स्वामी अपने आपको भृत्यों को दिखलाता है। यहाँ स्वामी जो पूर्व वाक्य में कर्म था कर्त्ता हो गया, अतएव आत्मनेपद हुवा।

हेतुवाच्य भी और स्मि धातुओं से भी यदि हेतु से भय उपस्थित हो तो आत्मनेपद होता है—धूर्त्तो भीषयते=धूर्त्त डराता है। जटिलो विस्मापयते=जटावाला विस्मय दिलाता है। 'भी' को षुक् और 'स्मि' को पुक् का आगम हो जाता है।

गृध और वञ्च् धातु से प्रलम्भन (प्रतारण) अर्थ में आत्मनेपद होता है—साधुं गर्धयते=साधु को ठगाता है। बालं वञ्चयते=बालक को बहकाता है।

ण्यन्त 'कृ' धातु से यदि मिथ्या शब्द उपपद में हो तो आत्मनेपद होता है—पदं मिथ्या कारयते=पद को मिथ्या कराता है। अन्यत्र—पदं सुष्ठु कारयति=पद को शुद्ध कराता है।

णिजन्त धातुओं से भी यदि क्रियाफल कर्तृगामी हो तो आत्मनेपद होता है—कार्यं कारयते=कार्य कराता है। ओदनं पाचयते=चावल पकवाता है।

(८) परस्मैपदप्रक्रिया

जिन धातुओं से जिन अवस्थाओं में आत्मनेपद कहा गया है उनसे शेष धातुओं से तद्भिन्न अवस्थाओं में यदि कर्तृगामी

क्रियाफल हो तो परस्मैपद होता है—भवति । गच्छति । पठति । पिबति । याति । अस्ति । प्रविशति । इत्यादि ।

अनु और परा उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से भी परस्मैपद होता है—अनुकरोति । पराकरोति ।

अभि, प्रति और अति उपसर्ग पूर्वक क्षिप् धातु से भी परस्मैपद होता है—अभिक्षिपति । प्रतिक्षिपति । अतिक्षिपति । इनसे अन्यत्र—आक्षिपते ।

'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'वह्' धातु से भी परस्मैपद होता है—प्रवहति । अन्यत्र – आवहते ।

'परि' उपसर्गपूर्वक मृष् धातु से भी परस्मैपद होता है – परिमृष्यति । अन्यत्र – आमृष्यते ।

वि, आ, परि और उप उपसर्ग पूर्वक 'रम्' धातु से भी परस्मैपद होता है – विरमति । आरमति । परिरमति । उपरमति । इनसे अन्यत्र – अभिरमते । परन्तु 'उप' उपसर्ग पूर्वक अकर्मक 'रम्' धातु से परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होते हैं – भोजनादुपरमति, उपरमते वा = भोजन से निवृत्त होता है ।

णिजन्त बुध्, युध्, नश्, जन्, इ, प्रु, द्रु, और स्रु, धातुओं से कर्तृगामी क्रियाफल में परस्मैपद होता है – बोधयति । योधयति । नाशयति । जनयति । अध्यापयति । प्रावयति । द्रावयति । स्रावयति ।

भोजनार्थक और कम्पनार्थक णिजन्त धातुओं से भी परस्मैपद होता है । भोजनार्थक – आशयति । खादयति । आदयति । भोजयति । निगारयति । कम्पनार्थक – कम्पयति । वेपयति । धूनयति । चलयति ।

अकर्मक धातुओं से ण्यन्तावस्था में यदि चित्तवान् कर्ता हो तो परस्मैपद होता है । आसयति गुरुम् = गुरु को बिठलाता है । शाययति शिशुम् = बालक को सुलाता है । जहाँ चित्तवान् कर्ता

न हो वहाँ आत्मनेपद होगा । शोषयते व्रीहीनातपः=धूप धानों को सुखाती है ।

णिजन्त पा, दम्, आयम्, आयस्, परिमुह्, रुच्, नृत्, वद् और वस् धातुओं से कर्तृगामी क्रियाफल में परस्मैपद नहीं होता किन्तु आत्मनेपद होता है । पाययते । दमयते । आयामयते । आयासयते । परिमोहयते । रोचयते । नर्तयते । वादयते । वासयते । परन्तु कर्मगामी क्रियाफल में इनसे परस्मैपद होता है । पाययति शिशुं पयः=बच्चे को दूध पिलाता है ।

क्यष् प्रत्ययान्त धातुओं से परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होते हैं । लोहितायति । लोहितायते ।

द्युतादि गणपठित धातुओं से लुङ् लकार में परस्मैपद और आत्मनेपद होते हैं । अद्युतत् । अद्योतिष्ट । अवृतत् अवर्तिष्ट । अवृधत् । अवर्धिष्ट ।

वृत्, वृध्, शृध्, और स्यन्द् धातुओं से लृट, लृङ् और सन् प्रत्यय में भी उक्त दोनों होते हैं । वर्त्स्यति । वर्तिष्यते । अवर्त्स्यत् । अवर्तिष्यत । विवृत्सति । विवर्तिषते । इसी प्रकार वृध् आदि में भी समझो ।

कृप् धातु से उक्त अवस्थाओं के अतिरिक्त लुट् लकार में भी परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होते हैं—कल्प्तासि । कल्प्तासे । कल्प्स्यति । कल्पिष्यते । अकल्प्स्यत् । अकल्पिष्यत । चिक्लृप्सति । चिकल्पिषते ।

(१०) लकारार्थप्रक्रिया

किन्हीं विशेष दशाओं में लकारों के अर्थ और काल में जो परिवर्तन होता है, उसका संक्षेप से वर्णन इस प्रक्रिया में किया जावेगा ।

सामान्य भविष्य अर्थ में लृट् लकार कहा गया है, परन्तु जब कोई स्मरणार्थक पद क्रियासमीप में हो तो अनद्यतन भूत

में लट् हो जाता है—स्मरसि मित्र ! आग्रे वत्स्यामः = हे मित्र ! तुमको स्मरण है हम आगरे में बसे थे। उक्त वाक्य में यदि'यद्' सर्वनाम और मिला दिया जावे तो 'लट्' न होगा किन्तु 'लङ्' ही रहेगा—जानासि मित्र ! यदिन्द्रप्रस्थेऽवसाम = जानते हो मित्र ! कि जो हम दिल्ली में बसे थे।

परोक्षभूत में केवल लिट् लकार कहा गया है, परन्तु यदि ह और शश्वत् अव्ययों का योग हो तो इस अर्थ में लङ् भी होता है—इति ह चकार। इति हाकरोत् = ऐसा किया था। शश्वच्चकार। शश्वदकरोत् = बार बार किया था।

समीप काल में जो प्रश्न किया गया हो तो भी उक्तार्थ में लिट् और लङ् दोनों होते हैं—किं स जगाम ? किं सोऽगच्छत् ? = क्या वह गया ? यदि प्रश्न समीप काल का न हो तो केवल लिट् ही होगा—किं भीमः जरासन्धं जघान ? = क्या भीम ने जरासन्ध को मारा था ?

'स्म' अव्यय का योग होने पर परोक्षभूत में लट् होता है—यजति स्म युधिष्ठिरः = युधिष्ठिर ने यज्ञ किया था।

अपरोक्ष अनद्यतन भूत में भी 'स्म' का योग होने पर लट होता है—एवं ब्रवीतिस्मोऽपाध्यायः = उपाध्याय ने ऐसा कहा था।

'ननु' अव्यय का योग हो तो प्रश्न के उत्तर में भूतार्थ में लट् होता है—किमपठीस्त्वम् ? ननु पठामि भोः ! = क्या तूने पढ़ा था ? हाँ मैंने पढ़ा था।

'पुरा' अव्यय का योग हो तो परोक्षभूत में लट्, लिट्, लङ् और लुङ् चारों लकार होते हैं—वसन्तीह पुरा छात्राः। ऊषुरिह पुरा छात्राः। अवसन्निह पुरा छात्राः। अवात्सुरिह पुरा छात्राः = यहाँ पहिले छात्र बसते थे।

यावत् और पुरा अव्ययों के योग में भविष्यदर्थ में लट् लकार होता है—यावद्भुङ्क्ते=जब तक खायगा। पुरा भुङ्क्ते= पहिले खायगा।

कदा और कर्हि अव्ययों के योग में भविष्यार्थ में लट्, लुट् और लृट् तीनों लकार होते हैं—कदा, कर्हि वा भुङ्क्ते, भोक्ता, भोक्ष्यते वा=कब खावेगा?

लिप्सासूचक 'किम्' सर्वनाम का योग हो तो भी भविष्यदर्थ में लट्, लुट् और लृट् तीनों लकार होते हैं। कं भोजयसि, भोजयितासि, भोजयिष्यसि? किसको खिलावेगा?

जहाँ लिप्स्यमान (इच्छुक) से सिद्धि की आशा हो वहाँ भी उक्तार्थ में तीनों लकार होते हैं—यः दीनेभ्योऽन्नं ददाति, दाता, दास्यति वा स सुखं लभते, लब्धा, लप्स्यते वा=जो दीनों को अन्न देगा वह सुख पावेगा।

लोट् लकार के अर्थ में वर्त्तमान धातु से भविष्यत् काल में उक्त तीनों लकार होते है—उपाध्यायश्चेदागच्छति, आगन्ता, आगमिष्यति वा तर्हि त्वं व्याकरणमधीष्व=यदि उपाध्याय आवे तो तू व्याकरण पढ़।

यदि वर्त्तमान के समीप में भूत और भविष्य की क्रिया हों तो उनसे भी एक पक्ष में वर्त्तमान के सदृश लट् लकार हो जाता है। भूत में वर्त्तमान—कदाऽऽगतोऽसि=तू कब आया है? अयमागच्छाम्यागमं वा=यह आया हूँ। यहाँ आगमन क्रिया यद्यपि भूतकाल की है, तथापि वर्त्तमान के समीप होने से लट् का भी प्रयोग हो गया। भविष्यत् में वर्त्तमान—कदा गमिष्यसि?=कब जायगा? एष गच्छामि, गन्ता, गमिष्यामि वा=यह जाता हूँ। यहाँ गमन क्रिया भविष्य काल की है।

आशंसा (अप्राप्त प्रिय वस्तु की आशा) में भविष्य काल की क्रिया से भूत और वर्त्तमान के सदृश भी प्रत्यय होते हैं—

वृष्टिश्चेदभूत्, भवति, भविष्यति वा प्रभूतान्यन्नान्यलप्स्महि, लभामहे, लप्स्यामहे वा=वृष्टि होगी तो बहुत से अन्नों को पावेंगे ।

क्षिप्र और उसके पर्याय वाचक शब्दों का योग हो तो भविष्य काल में केवल लृट् लकार ही होता है—वृष्टिश्चेत्क्षिप्रं भविष्यति बीजानि शीघ्रं वप्स्यामः=यदि वृष्टि शीघ्र होगी तो बीज जल्दी बोवेंगे ।

यदि किसी कार्य की सम्भावना हो तो भविष्य काल में लिङ् लकार होता है—उपाध्यायश्चेदुपेयादाशंसेऽधीयीय= यदि उपाध्याय आवेगा तो सम्भावना करता हूँ कि पढ़ूँगा ।

समानार्थक उत और अपि अव्ययों के योग में भविष्य में लिङ् लकार होता है—उताधीयीत । अप्यधीयीत=सम्भव है कि पढ़ेगा । सम्भावन में ये दोनों समानार्थक होते हैं ।

अभिलाष के प्रकट करने में यदि कच्चित् शब्द का प्रयोग न हो तो भी धातु से लिङ् होता है—कामो मे भुञ्जीत भवान्= मेरी इच्छा है कि आप भोजन करें । कच्चित् के प्रयोग में लट् होगा—कच्चित् ते भुञ्जते=क्या वे खाते हैं ?

असम्भावित अर्थ के प्रकाश करने में भी लिङ् लकार होता है—अपि गिरिं शिरसा भिन्द्यात्=पर्वत को शिर से तोड़ देगा ।

सम्भावित अर्थ के प्रकाश करने में लिङ् और लृट् दोनों होते हैं—अपि सिंहं शस्त्रेण हन्यात्, हनिष्यति वा=सिंह को शस्त्र से मारेगा ।

हेतु और हेतुमान् (कारण और कार्य) की विवक्षा में लिङ् और लृङ् दोनों लकार होते हैं—धर्मं कुर्याच्चेत्सुखं यायात् । धर्ममकरिष्यच्चेत्सुखमयास्यत्=धर्म करेगा तो सुख पावेगा ।

विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, संप्रश्न और प्रार्थन इन ६ अर्थों में धातु से लिङ् और लोट् लकार होते हैं ।

विधि—स तत्र गच्छेत्, गच्छतु वा=वह वहाँ जावे । निमन्त्रण—इह भवान् भुञ्जीत भुङ्क्तां वा=आप यहाँ भोजन करें। आमन्त्रण—इह भवानासीत, आस्तां वा=आप यहाँ बैठें। अधीष्ट—माणवकमध्यापयेयुः, अध्यापयन्तु वा=बालक को पढ़ाओ। संप्रश्न—किमहं व्याकरणमधीयीय, अध्ययै वा=क्या मैं व्याकरण पढ़ूँ? प्रार्थन—मह्यं भोजनं दद्याः, देहि वा=मेरे लिये भोजन दो।

आशीर्वाद अर्थ में धातु से आशीर्लिङ् और लोट् लकार होते हैं—स्वस्ति ते भूयात् । स्वस्ति ते भवतात्=तेरे लिये सुख हो।

'मा' अव्यय के योग में धातु से लुङ् लकार होता है—मा कार्षीः=मत कर। यदि 'मा' से आगे 'स्म' अव्यय भी हो तो लङ् भी होता है—मास्मकरोः। मास्म कार्षीः=मत कर* ।

---

* मा के योग में 'अट्' का आगम नहीं होता।

कृदन्तप्रकरण ।

अब कृत् प्रत्ययों का निरूपण किया जाता है—

तिङ् प्रत्ययों के समान कृत् प्रत्यय भी धातु से ही होते हैं, धातु के अधिकार में तिङ् प्रत्ययों को छोड़कर शेष सब कृत् प्रत्यय कहलाते हैं।

प्रातिपदिकों के समान कृदन्त शब्द भी प्रथमादि सात विभक्तियों और पुंल्लिङ्गादि तीन लिङ्गों तथा वचनों में परिणत होते हैं।

कृत् प्रत्यय भी तिङ् प्रत्ययों के समान भाव, कर्म और कर्त्ता इन तीन अर्थों और भूतादि कालों में होते हैं।

यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि कृत् प्रत्ययों के आदि में यदि कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, लकार, शकार और षकार हों तो उन का लोप हो जाता है और अन्त्य के हल् का भी सर्वत्र लोप होता है।

यदि किसी प्रत्यय के अङ्ग यु और वु हों तो उनको क्रम से अन और अक आदेश हो जाते हैं।

यदि किसी प्रत्यय के आदि में ठ, फ, ढ, ख, छ, और घ ये वर्ण हों तो इनको क्रमशः इक, आयन्, एय्, ईन्, ईय् और इय् आदेश हो जाते हैं।

जिन प्रत्ययों के ञ्, ण् और क् का लोप हुवा हो उनके पूर्वपदस्थ शब्द का जो पहिला अच् है, उसको वृद्धि हो जाती है।

कृदन्त को पढ़नेवाले इन नियमों पर ध्यान रक्खें।

कृत् प्रत्ययों के ३ भेद हैं (१) भावकर्मवाचक (२) भाववाचक (३) कर्त्तृवाचक।

१—भावकर्मवाचक

सबसे पहिले हम भाव और कर्म में होनेवाले कृत्य, प्रत्ययों का वर्णन करते हैं।

तव्यत्, अनीयर्, यत्, क्यप्, ण्यत्, खल्, युच्, और क्त ये आठ प्रत्यय कृत्यसंज्ञक कहलाते हैं और भावकर्म दोनों में होते हैं। *

ये आठों प्रत्यय अकर्मक धातुओं से भाव में और सकर्मकों से कर्म में होते हैं।

तव्यत्—सब धातुओं से भाव और कर्म में "तव्यत्" प्रत्यय होता है।

अकर्मक से भाव में—स्था—स्थीयते यस्मिंस्तद्—स्थातव्यम्=जिसमें ठहरा जाय। आस्—आस्यते यस्मिंस्तद्—आसितव्यम्=जिसमें बैठा जाय। उदाहरण—

दुःसङ्गे हि त्वया वत्स! न स्थातव्यं कदाचन।
सत्सङ्ग एव नितरामासितव्यं सुखार्थिना॥

सकर्मक से कर्म में—अधि-इ-अधीयते यत्तद्=अध्येतव्यम्=जो पढ़ा जाय। नि-क्षिप्—निक्षिप्यते यत्तद्=निक्षेप्तव्यम्=जो रक्खा जाय। उदाहरण—

अध्येतव्यानि शास्त्राणि बुद्धिवैशद्यमिच्छता।
पात्रेष्वर्थानि धनिभिर्निक्षेप्तव्यानि सर्वतः॥

---

* भाव में सदा नपुंसकलिङ्ग और कर्म में विशेष्य के अनुसार लिङ्ग होता है।

अनीयर् – तव्यत् के समान ही सब धातुओं से भाव और कर्म में अनीयर् भी होता है ।

भाव में – रम् – रम्यते यस्मिंस्तद् – रमणीयम् = जिसमें रमण किया जाय । यत् – यत्यते यस्मिंस्तद् – यतनीयम् = जिसमें यत्न किया जाय ।

कर्म में–कृ–क्रियते यत्तद् – करणीयम् = जो किया जाय । आ-चर् – आचर्यते यत्तद् – आचरणीयम् = जो आचरण किया जाय । उदाहरण –

कर्तव्ये रमणीयं मा यतनीयं कदाप्यकर्तव्ये ।
करणीयञ्च शुभं तन्नाचरणीयं शुभेतरं यत्स्यात् ॥*

यत् – अजन्त, अकारोपध पवर्गान्त, शक्, सह्, चर और वह् आदि धातुओं से भाव और कर्म में 'यत्' प्रत्यय होता है ।

पा – पीयते यत्तद् – पेयम् = जो पीया जाय । दा – दीयते यत्तद् – देयम् = जो दिया जाय । आ–दा – आदेयम् । हा–हेयम् । चि – चेयम् । जि–जेयम् । नी–नेयम् । गै–गेयम् । शक्–शक्यम् । लभ–लभ्यम् । सह – सह्यम् । चर–चर्यम् । वह–वह्यते येन तद्–वह्यम् ।

उदाहरण—वस्त्रपूतं जलं पेयं देयम् दीनाय चेद्धनम् । आदेयं शास्त्रवचनं हेयं दुःखमनागतम् । चेयं धर्मफलं लोके जेयं तु बलवन्मनः । नेयं तदेव सन्मार्गे गेयं हरिकथामृतम् । शक्यं परोपकरणं लभ्यं वस्तुचतुष्टयम् । सह्यं सुखं च दुःखं च चर्यं सत्यव्रतं सदा । वहन्त्यनेन करणे वह्यं शकटमुच्यते ।

इन उदाहरणों में सब धातु सकर्मक हैं इसलिये सबसे कर्म में प्रत्यय हुआ है । 'स्था' धातु अकर्मक है, उससे भाव में प्रत्यय

---

*भाव कर्म के अतिरिक्त कहीं कहीं पर करण और संप्रदान में भी 'अनीयर्' प्रत्यय होता है । करण में—स्नान्त्यनेन स्नानीयं चूर्णम् । सम्प्रदान में-दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः ।

होगा। यथा—स्थीयते यस्मिंस्तद्=स्थेयम्=जिसमें ठहरा जाय। (वह्) धातु से भाव और कर्म में प्रत्यय नहीं होता; किन्तु करण कारक में यत् प्रत्यय होकर वह्यम् बनता है; जिसके द्वारा वहन किया जाय, शकटादि को वह्य कहते हैं।

क्यप्—इ, स्तु, शास्, वृ, दृ, जुष्, कृ और भृ आदि धातुओं से भाव और कर्म में (क्यप्) प्रत्यय होता है—ईयते, प्राप्यते यः स इत्यः प्राप्तव्यः=जो पाया जाय। स्तु—स्तुत्यः=स्तोतव्यः। शास्—शिष्यः=शिक्षणीयः। वृ—वृत्यः=वरणीयः। आ-दृ-आदृत्यः=आदरणीयः। जुष्-जुष्यः=सेवनीयः। कृ-कृत्यः=करणीयः। भृ-भृत्यः=भरणीयः।

उदाहरण—इत्यास्तु सज्जनः आर्याः स्तुत्यः सर्वेश्वरो नृभिः। आज्ञाकारी भवेत् शिष्यः वृत्यः कार्येषु कार्यवित्। आदृत्याः गुणवन्तो ये जुष्यो धर्मपथः सदा। कृत्यः स स्याद्य उचितः भृत्यो यो भ्रियते सदा।

ण्यत्—ऋकारान्त और हलन्त धातुओं से तथा आवश्यकार्थक उकारान्त धातुओं से भी भाव और कर्म में 'ण्यत्' होता है।

ऋकारान्त—कृ—क्रियते यत्तद्=कार्यम्=जो किया जाय। धृ—धार्यम्।

हलन्त—वच्-उच्यते यत्तद्-वाक्यम्=शब्दमयम्। अन्यत्र—वाच्यम्। भुज्-भुज्यते यत्तद्-भोज्यम्=भक्ष्यम्। अन्यत्र—भोग्यं धनादि। युज्-युज्यते प्रेर्यते यत्तद् योज्यम्=प्रेर्यम्। अन्यत्र—योग्यम्। पूपूयते यत्तद्, पाव्यम्। त्यज्—त्याज्यम्। वप-वाप्यम्। लू—लाव्यम्। भृ—भ्रियते या सा=भार्या।

उदाहरण—कार्यं वेदोदितं कर्म धार्यं धर्मं सदा नृभिः। वाक्यं तु शब्दसंज्ञायां वाच्यमन्यदुदीरितम्। भोज्यं भक्ष्ये भोग्यमन्यत् योज्यं प्रेरितमुच्यते। सुचरित्रैः कुलं पाव्यं त्याज्यं

दुष्कर्म मानवैः। क्षेत्रे बीजानि वाप्यानि लाव्यं कण्टकमादितः। म्रियते या तु संज्ञायां भर्त्रा भार्येति कथ्यते।

खल्—सुख दुःख वाचक सु और दुस् उपसर्ग उपपद में हों तो धातु से भाव और कर्म में 'खल्' प्रत्यय होता है।

सु—कृ—सुखेन क्रियते=सुकरः। दुस्—कृ—दुःखेन क्रियते=दुष्करः। सु-लभ्-सुखेन लभ्यते=सुलभः। दुर्—लभ—दुःखेन लभ्यते=दुर्लभः। इसी प्रकार सु—गम्=सुगमः। दुर्—गम्=दुर्गमः। सु—वच्=सुवचः। दुर्वच्=दुर्वचः। इत्यादि।

उदाहरण—यत्नेन दुष्करं कर्म सुकरं जायते खलु। सुलभोऽपि हि योऽर्थः स्यात्प्रमादेन स दुर्लभः। दुर्गमोऽपि हि यः पन्था गत्यैव सुगमो भवेत्। सुवचा नागरी भाषा यवनानी तु दुर्वचा।

युच्—आकारान्त धातुओं से उक्त दोनों उपसर्गों के उपपद होने में 'युच्' प्रत्यय होता है।

सु-पा-सुखेन पीयते=सुपानम्। दुस्-पा-दुःखेन पीयते=दुष्पानम्। सु-दा=सुदानम्। दुर्-दा=दुर्दानम्। इत्यादि

उदाहरण—सुपानं रुच्यते सर्वैर्दुष्पानं कष्टदं स्मृतम्। सुदानं सात्विकं ख्यातं दुर्दानं तामसं स्मृतम्।

क्त—सब धातुओं से भूतार्थ में 'क्त' प्रत्यय होता है—कृ—कृतम्=किया। पा-पीतम्=पिया। भुज्-भुक्तम्=खाया। विद्—विदितम्=जाना। मृष्—मर्षितम्=सहा।

उदाहरण—मया तत्र गमनं न कृतम्=मैंने वहाँ गमन नहीं किया। शिशुना पयः पीतम्=बालक ने दूध पीलिया। ब्राह्मणैस्तत्र भुक्तम्=ब्राह्मणों ने वहाँ खाया था। विदितं मया तव चेष्टितम्=मैंने तुम्हारा सङ्कल्प जाना। मर्षितं साधुना खलवाक्यम्=साधु ने खल के वाक्य को सहलिया।

कहीं २ वर्त्तमान अर्थ में भी 'क्त' प्रत्यय का प्रयोग किया गया जाता है। यथा—क्व गतश्छात्रः? स इदानीमेव सुप्तः=छात्र कहाँ गया? वह अभी सोया है। त्वयेदानीं किं क्रियते? पठनार्थमुद्यतोऽस्मि=तुझसे इस समय क्या किया जाता जाता है? पढ़ने के लिये तयार हूँ। यन्मयोक्तं तदेव तस्याऽपि मतम्=जो मैंने कहा वही उसका भी मत है। इन उदाहरणों के उत्तरवाक्यों में सर्वत्र वर्त्तमान में 'क्त' हुवा है।

भावकर्म के अतिरिक्त कहीं २ पर कर्त्ता में भी 'क्त' होता है। यथा—सतत्र गतः=वह वहाँ गया। अहमत्र स्थितः=मैं यहाँ ठहरा हूँ। त्वं वृक्षमारूढः=तू वृक्ष पर चढ़ा है।

यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि जहाँ भाव में 'क्त' होता है वहाँ सदा नपुंसकलिङ्ग होता है। यथा—मया शयितम्=मुझसे सोयागया। तेन हसितम्= उस से हँसा गया। जहाँ कर्त्ता और कर्म में होता है, वहाँ विशेष्य के अनुसार लिङ्ग होता है। कर्त्ता में—फलं पतितम्=फल गिरा। शिशुः सुप्तः=बालक सोया। लता विस्तृता=लता फैली। कर्म में—त्वया विद्या नाधिगता=तूने विद्या नहीं पढ़ी। मया धनं लब्धम्=मैंने धन पाया। तेन धर्मोपासितः=उसने धर्म की उपासना की इत्यादि।

२—भाववाची

अब केवल भाव में होनेवाले कृत् प्रत्ययों का निरूपण किया जाता है।

अच्, अप्, घञ्, घ, नङ्, कि, ल्युट्, क्त, क्तिन्, युच्, क्यप्, अ, अङ्, और श ये चौदह प्रत्यय सदा भाव में होते हैं।

भाववाचक शब्दों में अच्, अप्, घञ्, घ, नङ् और कि प्रत्ययान्त पुंल्लिङ्ग ल्युट् और क्त प्रत्ययान्त नपुंसकलिङ्ग और शेष स्त्रीलिङ्ग होते हैं।

अच्—इकारान्त धातुओं से भाव में अच् प्रत्यय होता है।

इ—ईयते प्राप्यते पृथिव्यामित्ययः=लोहः। चि—चीयतेऽस्मिन्निति चयः=राशिः। जि-जीयतेऽस्मिन्निति जयः=उत्कर्षः। क्षि-क्षीयते नश्यते वस्यते वाऽस्मिन्निति क्षयः=नाशः निवासो वा।

उदाहरण—तप्तः सन् प्रणमत्ययः=लोहा तपाया हुवा नचता है। गृहस्थेनावश्यकपदार्थानां सञ्चयः कार्यः=गृहस्थ को आवश्यक पदार्थों का सञ्चय करना चाहिये। यतो धर्मस्ततो जयः=जहाँ धर्म है वहाँ जय है। जिगीषुणा द्विषतां क्षयः कार्यः=जयाभिलाषी को शत्रुओं का नाश करना चाहिये। विषयेषु मनसः क्षयः क्षयाय भवति=विषयों में मन का वास नाश के लिये होता है।

अप्—उकारान्त, ऋकारान्त और किन्हीं २ हलन्तधातुओं से भी भाव में 'अप्' प्रत्यय होता है।

उकारान्त—भू—भूयतेऽस्मिन्निति भवः=संसारः उत्पत्तिर्वा। परिभू=परिभवः=तिरस्कारः। अनुभवः=साक्षात्कारः। प्र-सू—प्रसूयतेऽस्मिन्निति प्रसवः=उत्पत्तिः। सं स्तु-संस्तूयतेऽस्मिन्ननेन वा संस्तवः=परिचयः।

ऋकारान्त-कृ-क्रियतेऽनेनेति करः=हस्तः। शृ-शीर्यतेऽनेनेति शरः=बाणः। विस्तृ=विस्तरः

शब्दस्य चेत्। अन्यत्र=पटस्य विस्तारः। घञ् होगा।

हलन्त-आ-युध्-आयुध्यतेऽनेनेत्यायुधम्=शस्त्रम्। सम्-यम्—संयम्यतेऽस्मिन्ननेन वा मनः संयमः=मनोनिग्रहः। नि—यम्=नियमः। मद्—माद्यतेऽस्मिन्ननेन वा मदः=हर्ष अभिमानो वा। यदि 'मद्' धातु के पूर्व कोई उपसर्ग हो तो 'घञ्' प्रत्यय होता है। प्रमादः। उन्मादः। हन्—हन्यतेऽस्मिन्निति वधः=हिंसाकर्म। विग्रह्—विगृह्यतेऽस्मिन्निति विग्रहः। अवग्रहः। प्रग्रहः। निग्रहः। प्रतिग्रहः। संग्रहः। आग्रहः। प्र—क्रम् प्रक्रम्यतेऽस्मि-

अनेन वा=प्रक्रमः । उपक्रमः=प्रथमारम्भः । सम्-अज्=समजः=पशूनां समुदायः । उद्-अज्=उदजः=पशूनां प्रेरणम् ।

उदाहरण—रागिणो जनाः पुनः पुनर्भवाब्धौ निमज्जन्ति=रागीजन बारबार भवसागर में डूबते हैं । परिभवे पराक्रम एव भूषणम्=तिरस्कार में पराक्रम ही भूषण है । अनुभवेन विना विद्यापि फलं न प्रसूते=अनुभव के विना विद्या भी फल नहीं उत्पन्न करती । महात्मनां प्रसवो लोकाभ्युदयाय भवति=महात्माओं का जन्म संसार के कल्याण के लिये होता है । परिचयार्थं गुणानां संस्तवः क्रियते=परिचय के लिये गुणों का वर्णन किया जाता है । दानेन करः शोभते=दान से हाथ शोभा पाता है । धनुषि शरः सन्धीयते=धनुष में बाण जोड़ा जाता है । ज्ञातेऽर्थे वाचां विस्तरेण किम् ?=जाने हुवे विषय में वाणी के फैलाव से क्या ? अशिक्षिताय भीरवे चायुधं न दातव्यम्=अशिक्षित और डरपोक को शस्त्र नहीं देना चाहिये । सर्वार्थसिद्धौ मनसः संयम एव परं कारणम्=सब अर्थों की सिद्धि में मन का रोकना ही प्रधान कारण है । नियमं विना किमपि कार्यं न सिध्यति=नियम के विना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता । मदोन्मत्ताः कस्यापि कार्यस्य परिणामं नावेक्षन्ते=मदोन्मत्त किसी कार्य के परिणाम को नहीं देखते । मा कुर्याः प्राणिनां वधः=प्राणियों का वध मत कर । वैयाकरणेन पदानां विग्रहावग्रहौ क्रियेते=वैयाकरण से पदों के विस्तार और संक्षेप किये जाते हैं । केनापि समं विग्रहं न कुर्वीत=किसी के भी साथ विरोध मत करो । वृष्टेरवग्रहेण दुर्भिक्षो जायते=वृष्टि के रुकने से दुर्भिक्ष होता है । अपराधिनां प्रग्रहो भविष्यति=अपराधियों को जेल होगा । शत्रूणां निग्रहः कार्यः=शत्रुओं का निग्रह करना चाहिये । ब्राह्मणानां षट् कर्मसु प्रतिग्रह एवावरं कर्म=ब्राह्मणों के ६ कर्मों में प्रतिग्रह (दान लेना) ही नीच कर्म है । गृहस्थेन ताव-

नैव संग्रहः कार्यः यावान् योगक्षेमायालं स्यात् = गृहस्थ को उतना ही संग्रह करना चाहिये जितना योगक्षेम के लिये पर्याप्त हो। सर्वैः शुभकर्मस्वेवाग्रहो विधेयः = सबको शुभकर्मों में ही आग्रह करना चाहिये। कविना ग्रन्थस्य प्रक्रम उपक्रमो वा क्रियते = कवि से ग्रन्थ का आरम्भ किया जाता है। समाजेन पशवोऽपि शत्रून् निवारयन्ति = समुदाय से पशु भी शत्रुओं का निवारण करते हैं। गोपाला वनाय पशूनामुद्जं कुर्वन्ति = गोपाल वन के लिये पशुओं का प्रेरण करते हैं।

घञ्-प्रायः धातुओं से भाव में 'घञ्' प्रत्यय होता है।

भू-भूयतेऽस्मिन्निति = भावः। रञ्ज्-रज्यतेऽस्मिन्निति = रागः। पच् = पाकः। भज् = भागः। लभ् = लाभः। दा = दायः। अधि-इ = अध्यायः। आ-धृ = आधारः। प्र-स्तु = प्रस्तावः। उद्-गॄ = उद्गारः। वि—स्तॄ = विस्तारः। अव – तॄ = अवतारः। आ – लप् = आलापः। संलापः। विलापः। सम् – वद = संवादः। विवादः। परिवादः। अवग्राहः। परिभावः। समाजः।

उदाहरण – नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः = अभाव का भाव और भाव का अभाव नहीं होता। राग एव मनुष्याणां बन्धहेतुः = रागही मनुष्यों के बन्ध का कारण है। गृहस्थैः पाके सिद्धे सति दीनेभ्यो भागो देयः = गृहस्थों को पाक सिद्ध होने पर दीनों के लिये भाग देना चाहिये। को लाभो ? गुणिसङ्गमः = लाभ क्या है ? गुणियों का समागम। दायादाः दायभागनियमेन दायं प्राप्नुवन्ति = वारिस कानूनविरासत से हिस्से को पाते हैं। ग्रन्थाध्यायेषु किमधीयते भवद्भिः ? ग्रन्थ के अध्यायों में आप से क्या पढ़ा जाता है ? ह्यस्सभायामध्यक्षेण कः प्रस्तावः कृतः ? = कल सभा में सभापति ने क्या प्रस्ताव किया था ? हृदयस्योद्गाराः वाचा स्वयमेव निःसरन्ति = हृदय के उद्गार (भाव) वाणी से अपने आप निकलते हैं। तन्तूनां

विस्तारेण पटोऽऽयते = तन्तुओं के फैलाव से कपड़ा बनता है। सिद्धानामवतारोहि धर्मसंरक्षणाय भवति = सिद्धों का अवतार धर्म की रक्षा के लिये होता है। गायकेन स्वराणामालापः क्रियते = गवैये से स्वरों का आलाप किया जाता है। वाग्मिना सभायां संलापो विधीयते = वक्ता से सभा में सुभाषण किया जाता है। दुःखार्त्तेन भृशं विलापः क्रियते = दुःखार्त्त से बार बार विलाप किया जाता है। सर्वैः सह संवाद एव कार्यः = सबके साथ संवाद ही करना चाहिये। केनाऽपि सह विवादो न कर्त्तव्यः = किसी के भी साथ विवाद नहीं करना चाहिये। कस्यापि परिवादो न वक्तव्यो न श्रोतव्यश्च = किसी की भी निन्दा न कहनी और न सुननी चाहिये। वृष्टेरवग्राहो कदापि माभूयात् = वृष्टि का अवरोध कभी मत हो। तेजस्विनां परिभावः केनापि कर्त्तुं न शक्यते = तेजस्वियों का तिरस्कार किसी से नहीं किया जा सकता। विदुषां समाजे मूर्खाणां मौनमेव विभूषणम् = विद्वानों के समाज में मूर्खों का मौन ही भूषण है।

घ—किन्हीं किन्हीं धातुओं से भाववाचक संज्ञा में 'घ' प्रत्यय होता है।

गो—चर्—गाव इन्द्रियाणि चरन्त्यस्मिन्निति गोचरः = प्रत्यक्षः। सह चरन्त्यनेन सहचरः = मित्रम्। आ-पण-आपणन्तेऽस्मिन्निति आपणः = क्रयविक्रयस्थानम्। आ-कृ-आकुर्वन्त्यस्मिन्निति = आकरः = खानिः। आ—ली—आ समन्ताल्लीयतेऽस्मिन्निति = आलयः = मन्दिरम्।

उदाहरण—अगोचरोऽर्थो बुद्ध्या विमर्षणीयः = परोक्ष अर्थ बुद्धि से विचारणीय है। सहचरेष्वभिचारो नाचरणीयः = सहचरों में अभिचार (भेद) नहीं डालना चाहिए। आपणे गत्वा वस्त्राणि क्रीणीमहे = बाज़ार में जाकर कपड़े ख़रीदेंगे। आकरा-

खनेर्हिरण्यं प्रभवति = खान से सोना निकलता है। आलयादृते मनुष्यैः कुत्र स्थीयेत ? गृह के सिवाय मनुष्यों से कहाँ ठहरा जावे ?

नङ् — यज्, याच्, यत्, प्रच्छ् और स्वप् आदि धातुओं से भाव में नङ् प्रत्यय होता है।

यज् — इज्यतेऽस्मिन्ननेन वा = यज्ञः। याच् — याच्यतेऽनया = याच्ञा। यत् = यत्नः। प्रच्छ् = प्रश्नः। स्वप् = स्वप्नः।

उदाहरण — यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः = देवताओं ने यज्ञ से विष्णु का पूजन किया। याच्ञासमा नास्त्यपमानभूमिः = याचना के समान और कोई अपमान की भूमि नहीं है। यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः = यत्न करने पर यदि कार्य सिद्ध न हो तो क्या दोष है ? जिज्ञासुना विनीतभावेन प्रश्नः कर्त्तव्यः न तु मात्सर्येण = जिज्ञासु को नम्रभाव से प्रश्न करना चाहिए न कि मत्सरता से। स्वप्ने किमपि नानुभूयते = निद्रा में कुछ भी अनुभव नहीं किया जाता।

कि — उपसर्ग या कर्म उपपद हो तो धातु से भाव में ‘ कि ’ प्रत्यय होता है।

उपसर्गोपपद — वि — धा-विधीयन्तेऽस्मिन्नर्था इति विधिः = आज्ञा, प्रेरणा वा। नि-धी — निधीयन्तेऽस्मिन्नर्थानीति निधिः = कोषः।

कर्मोपद — जलं धीयतेऽस्मिन्निति जलधिः = समुद्रः। इषवो धीयन्तेस्मिन्निति इषुधिः = तर्कशः।

उदाहरण — कर्त्तव्याकर्त्तव्येषु शास्त्रेण विधिः क्रियते = कर्तव्याऽकर्त्तव्य में शास्त्र से आज्ञा की जाती है। राजपुरुषैः प्रजाभ्यः करमादाय निधौ निधीयते = प्रजाओं से कर लेकर राजपुरुषों से कोष में रक्खा जाता है। चतसृषु दिक्षु जलधिना वेष्टिता पृथिवी = चारों दिशाओं में पृथिवी समुद्र से वेष्टित

है। शरैः पूर्ण इषुधिः कटिना बध्यते=बाणों से भरा हुआ तर्कश कमर से बान्धा जाता है।

ल्युट्—सब धातुओं से भाव में 'ल्युट्' प्रत्यय होता है।

कृ—क्रियतेऽनेन=करणम्। जीव्=जीवनम्। मृ=मरणम्। श्रु-श्रूयतेऽनेन=श्रवणम्। गम्=गमनम्। शी=शयनम्। आस=आसनम्। स्था=स्थानम्। या=यानम्।

उदाहरण—करणं जीवनं प्रोक्तं मरणं तदभावता। शास्त्रस्य श्रवणं कार्यं गमनं साधुसङ्गतौ। दिवा न शयनं कार्यमासनञ्च गुरोरधि। स्थानयानेऽपि कर्तव्ये यथाऽवसरमात्मनः।

क्त—सब धातुओं से भूतकालिक भाव में 'क्त' प्रत्यय होता है।

कृ—अकारि यत्तत् कृतम्=किया गया। श्रु—अश्रावि यत्तत् श्रुतम्=सुना गया। भुज्=भुक्तम्। पा=पीतम्। गम्=गतम्। नी=नीतम्। आस्=आसितम्। शी=शयितम्। स्था=स्थितम्। या=यातम्। गै=गीतम्। जल्प्=जल्पितम्। भक्ष्=भक्षितम् इत्यादि।

उदाहरण—किन्त्वयाऽऽन्हिकं कृतम्? क्या तूने आन्हिक (दैनिक कर्म) कर लिया? मया तस्य व्याख्यानं श्रुतम्=मैंने उसका व्याख्यान सुना था। यज्ञावसाने ब्राह्मणैस्तत्र भुक्तम्=यज्ञ की समाप्ति पर ब्राह्मणों ने वहाँ खाया था। शिशुना पयः पीतम्=बालक ने दूध पीलिया। मया तत्र न गतम्=मुझसे वहाँ नहीं जाया गया। विषयेषु नीतं मनस्तापमुत्पादयति=विषयों में ले जाया गया मन जलन उत्पन्न करता है। दिवा मया यत्रासितं रात्रौ तत्रैव शयितम्=दिन में मुझसे जहाँ बैठा गया था रात को वहीं सोया गया। अत्रस्थितं तेन तत्र यातं मया=उससे यहाँ पर ठहरा गया और मुझसे वहां पर जाया गया। आदिकविना रामायणे रामचरितं गीतम्=वाल्मीकि से रामा-

थरण में रामचरित गाया गया। तेन तत्र किं जल्पितम्=उसने वहाँ क्या कहा था। मया तत्र न भक्षितम्=मैंने वहाँ पर नहीं खाया।

क्तिन्—सब धातुओं से भाव में 'क्तिन्' प्रत्यय होता है।

कृ-क्रियतेऽनया कृतिः=रचना। भृ—भृतिः=वेतनम्। धृ-धृतिः=धारणा। मन्-मन्यतेऽनया=मतिः। बुध्=बुद्धिः। गम् गतिः। नम्=नतिः। भज्=भक्तिः। यज्=इष्टिः। श्रु—श्रूयतेऽनया=श्रुतिः। स्तु=स्तुतिः। आप्=आप्तिः। ग्लै=ग्लानिः। हा=हानिः। इत्यादि।

उदाहरण—विचित्रा पाणिनेः कृतिः=पाणिनि की रचना विचित्र है। स्वामिना भृत्येभ्यो भृतिर्दीयते=स्वामी से भृत्यों के लिए वेतन दिया जाता है। धृतिरेव धर्मस्य प्रथमं लक्षणम्=धैर्य्य ही धर्म का पहिला लक्षण है। मतिरेव बलाद् गरीयसी=मति ही बल से बड़ी है। बुद्धिर्यस्य बलं तस्य=जिसमें बुद्धि है उसी में बल है। गहना कर्मणां गतिः=कर्मों की गति बड़ी गहन है। नतिरेवोन्नतेः कारणम्=नति ही उन्नति का कारण है। परमात्मनि सदा भक्तिः कार्या=परमात्मा में सदा भक्ति करनी चाहिये। स्वर्गकाम इष्टिना यजेत=स्वर्ग चाहने वाला इष्टि से यज्ञ करे। श्रुतिभिः श्रोतव्यो धर्मः=श्रुतियों से धर्म सुनना चाहिये। उपासकाः स्तोत्रैः स्तुतिं कुर्वन्ति=उपासक स्तोत्रों से स्तुति करते हैं। धर्मेणार्थस्याप्तिःकर्त्तव्या=धर्म से अर्थ की प्राप्ति करनी चाहिये। विषयासक्तौ शरीरस्य ग्लानिरर्थस्य हानिश्च जायते=विषयासक्ति में शरीर की ग्लानि और अर्थ की हानि होती है।

युच्—णिजन्त सब धातुओं से तथा अणिजन्त आस्, घट्, विद्, वन्द्, और अनिच्छार्थक इष् धातु से भाव में 'युच्' प्रत्यय होता है।

णिजन्त—भू-भावयतेऽनया = भावना । चित्-चेतयतेऽनया = चेतना । धृ-धारयतेऽनया = धारणा । वस् = वासना । कम् = कामना । युज् = योजना । स्था = स्थापना । वि-ज्ञा = विज्ञापना ।

अणिजन्त—आस्-आस्यतेऽनया = आसना । घट्यतेऽनया = घटना । विद्यतेऽनया = वेदना । वन्द्यतेऽनया = वन्दना । अन्विष्यतेऽनया = अन्वेषणा ।

उदाहरण—यादृशी भावना यस्य बुद्धिर्भवति तादृशी = जैसी जिसकी भावना होती है वैसी ही उसको बुद्धि होती है । शरीरे यावच्चेतना वर्त्तते तावदेव जीवनम् = शरीर में जब तक चेतनता है तभी तक जीवन है । चित्तस्य धारणामन्तरा समाधिर्न सेत्स्यति = चित्त की धारणा के बिना समाधि सिद्ध न होगी । वासनातन्तुभिबद्धो जीवो जगति जाजायते = वासना के तन्तुओं से बँधा हुआ जीव जगत् में बार बार जन्म लेता है । भोगैः कामनाया पूर्तिर्न भवति = भोगों से कामना की पूर्ति नहीं होती । कार्याक्षमे भृत्ये योजनया किं भविष्यति ? = भृत्य के कार्य में असमर्थ होने पर योजना से क्या होगा ? तेन तत्र पाठशालायाः स्थापना कृता = उसने वहाँ पर पाठशाला की स्थापना की । अद्यैव मया तस्य विज्ञापना श्रुता = अभी मैंने उसकी सूचना सुनी है । गुरूणामुपरिष्टादासना न कर्त्तव्या = गुरुओं के ऊपर आसना नहीं करनी चाहिये । ह्यस्तत्रैका महती घटना सञ्जाता = कल वहाँ पर एक बड़ी घटना हुई । नहि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम् = प्रसव की भारी वेदना को वन्ध्या नहीं जानती । सायं प्रातः सदेश्वरस्य वन्दना कार्या = सुबह शाम सदा ईश्वर की वन्दना करनी चाहिये । मुमुक्षुणात्मतत्त्वस्यान्वेषणा कर्त्तव्या = मुमुक्षु को आत्मतत्त्व की अन्वेषणा करनी चाहिये ।

क्यप – व्रज, यज, विद् और शी आदि धातुओं से भाव में 'क्यप्' प्रत्यय होता है।

व्रज्-व्रज्यतेऽनया = व्रज्या = यात्रा । यज्—इज्यतेऽनया = इज्या = इष्टिः । विद्-विद्यतेऽनया = विद्या । शी-शय्यतेऽनया = शय्या ।

उदाहरण—व्रज्या तीर्थेषु कर्तव्या इज्या पर्वणि पर्वणि । विद्या समधिगन्तव्या शय्या त्याज्याऽरुणोदये = तीर्थों में यात्रा करनी चाहिये, पर्व पर्व में इष्टि करनी चाहिये, विद्या प्राप्त करनी चाहिये और सूर्योदय होने पर शय्या छोड़ देनी चाहिये।

अ – सन् प्रत्ययान्त धातुओं से तथा हलन्त गुरुमान् धातुओं से भाव में 'अ' प्रत्यय होता है।

सन्नन्त – कृ–कर्तुमिच्छा = चिकीर्षा । गम् = जिगमिषा । वच्-वक्तु-मिच्छा = विवक्षा । पा = पिपासा । ज्ञा = जिज्ञासा । ग्रह्-ग्रहीतुमिच्छा = जिघृक्षा । हा = जिहासा । भुज् = बुभुक्षा । लभ्-लब्धुमिच्छा = लिप्सा । दा – दातुमिच्छा = दित्सा ।

हलन्त गुरुमान् – ईह्-ईहितुमिच्छा ईहा । ऊह्-ऊहितुमिच्छा = ऊहा । इत्यादि ।

उदाहरण – चिकीर्षां विना कार्ये प्रवृत्तिः कथं स्यात् ? = करने की इच्छा के विना कार्य में प्रवृत्ति कैसे हो ? भवतां तत्र जिगमिषा नास्ति किम् ? आपकी वहाँ जाने की इच्छा नहीं है क्या ? यस्य विवक्षैव नास्ति तस्य भाषणे कथं प्रवृत्तिः स्यात् = जिसको कहने की इच्छा ही नहीं है उसकी बोलने में प्रवृत्ति कैसे हो ? ग्रीष्मे पिपासा वर्द्धते = ग्रीष्म ऋतु में पिपासा बढ़ती है। जिज्ञासया सूक्ष्मोऽप्यर्थो ज्ञायते = जिज्ञासा से सूक्ष्म अर्थ भी जाना जाता है। यद्यप्यनुकूलेषु जिघृक्षा प्रतिकूलेषु जिहासा च प्राणिनां स्वाभाविकी तथाप्यविद्यया तैरादेयं हीयते हेयं च गृह्यते = यद्यपि अनुकूल में जिघृक्षा और प्रतिकूल में जिहासा

प्राणियों की स्वाभाविक है तथापि अविद्या से आदेय छोड़ा जाता है और हेय ग्रहण किया जाता है। दारिद्र्ये बुभुक्षा वरीवृध्यते=दरिद्रता में भूख बार बार बढ़ती है। मृतस्य लिप्सा कृपणस्य दित्सा श्रुता न केनाऽपि न चेह दृष्टा=मुर्दे में लेने की इच्छा और कंजूस में देने की इच्छा न किसी ने यहाँ सुनी और न देखी। यथा जङ्गमेष्वीहा तथैव विद्वत्सूहा विद्यते=जैसे जंगमों में चेष्टा वैसे ही विद्वानों में विचारणा रहती है।

अङ्—जॄ, त्रप्, क्षम्, लज्, दय्, चिन्त्, पूज्, कथ्, चर्च् और अर्च् धातुओं से तथा उपसर्गपूर्वक आकारान्त धातुओं से भी भाव में अङ् प्रत्यय होता है।

जॄ—जीर्यतेऽनयाऽस्यां वा=जरा। त्रप्=त्रपा। क्षम्=क्षमा। लज्=लज्जा। दय्=दया। चिन्त्=चिन्ता। पूज्=पूजा। कथ्=कथा। चर्च्=चर्चा। अर्च्=अर्चा। नि-स्था=निष्ठा। आ—स्था=आस्था। सम्—ख्या=संख्या। आ—ख्या=आख्या। सम्—ज्ञा=संज्ञा। श्रत् और अन्तर् अव्ययों के योग में भी 'अङ्' होता है। श्रत् धीयतेऽस्यां सा श्रद्धा। अन्तर्धीयतेऽस्यां सा अन्तर्धा।

उदाहरण—जरया जीर्यते कायस्त्रपया भूष्यते नरः=जरा से शरीर जीर्ण होता है, लज्जा से मनुष्य भूषित होता है। सर्वदा भूषणं पुंसां क्षमा लज्जेव योषिताम्=जैसे लज्जा सदा स्त्रियों का भूषण है वैसे ही क्षमा पुरुषों का भूषण है। दया दीनेषु कर्त्तव्या चिन्ता शास्त्रस्य सर्वदा=सदा दीनों पर दया और शास्त्र की चिन्ता करनी चाहिए। पूजा गुरूणां कर्तव्या कथा धर्मात्मनां सदा=गुरुओं की पूजा और धर्मात्माओं की कथा करनी चाहिये। चर्चा विधेया शास्त्राणामर्चा प्रेम्णा सतां सदा=सदा शास्त्रों की चर्चा और प्रेम से सत्पुरुषों की पूजा करनी चाहिये। निष्ठा धर्मे विधेया वै आस्था तु शुभकर्मसु=धर्म में निष्ठा और शुभ-

कर्मों में आस्था करनी चाहिये। अङ्कैस्तु संख्या कर्तव्या संज्ञयाख्या विधीयते = अङ्कों से संख्या करनी चाहिये, सञ्ज्ञा से आख्या की जाती है। श्रद्धा सत्यस्य जननी अन्तर्धा गोपनं स्मृतम् = श्रद्धा सत्य की माता है और अन्तर्धा छिपाने को कहते हैं।

श — कृ, इष्, परिचर्, परिसृ, जागृ और मृग् धातुओं से भाव में 'श' प्रत्यय होता है।

कृ — क्रियते ऽनया = क्रिया। इष् = इच्छा। परिचर्या। परिसर्या। जागर्या। मृगया।

उदाहरण — क्रिया या करणैर्जाता मनसेच्छा प्रजायते = क्रिया वह है जो करणों से उत्पन्न हो, मन से इच्छा उत्पन्न होती है। परिचर्या गुरोः कार्या परिसर्या च साधुषु = पूजा गुरु की करनी चाहिए और साधुओं के समीप में जाना चाहिए। जागर्या विषमे कार्या हिंस्रानां मृगया वने = विषमकाल में जागरण करना चाहिए और हिंस्र जन्तुओं का वन में शिकार करना चाहिये।

३—कर्त्तृवाचक

अब कर्ता में जो कृत् प्रत्यय होते हैं, उनका निरूपण किया जाता है।

कर्त्तृवाचक प्रत्यय दो प्रकार के हैं, एक सामान्य अर्थ में होनेवाले दूसरे ताच्छील्य अर्थ में होने वाले। जिनको सामान्य रीति पर कर्त्ता सम्पादन करे वे सामान्यार्थक और जिनके करने का कर्त्ता में शील अर्थात् स्वभाव हो वे ताच्छील्यार्थक कहलाते हैं।

अब हम विस्तरभय से सब प्रयोगों के उदाहरण न लिखेंगे किन्तु निदर्शनार्थ किन्हीं किन्हीं प्रयोगों के उदाहरण लिखेंगे।

सामान्यार्थक

ण्वुल् — सब धातुओं से कर्त्ता में 'ण्वुल्' प्रत्यय होता है।

कृ—करोतीति=कारकः। नी=नायकः। पू=पावकः। हन्=घातकः। दा=दायकः। जन्=जनकः। लभ्=लम्भकः। दृश्=दर्शकः। यज्=याजकः। अधीङ्=अध्यापकः। सिच्=सेचकः। भुज्=भोजकः। ज्ञा=ज्ञापकः। ग्रह्=ग्राहकः इत्यादि *

कारकः क्रियां सम्पादयति। नायकमन्वेति सेना। पावकेन वनं दह्यते। घातकं घातयति न्यायाध्यक्षः। दायकः धनं ददाति दीनेभ्यः। जनकमुपकुर्वन्त्यपत्यानि। लम्भकः स्वार्थं न जहाति। दर्शकेभ्यः शुल्कं ग्रह्णन्त्यभिनेतारः। याजकाय धनं दीयते यजमानेन। अध्यापकस्य सेवा क्रियते शिष्यैः। सेचकैः क्षेत्रं सिच्यते। भोजकाय भोजनं दीयते। ज्ञापकः विज्ञापयति अर्थम्। ग्राहकमभीप्सन्ति विक्रेतारः।

तृच्—कृ—करोतीति=कर्त्ता। भृ=भर्त्ता। नी=नेता। पा=पाता। दृश्=द्रष्टा। वच्=वक्ता। श्रु=श्रोता। हन्=हन्ता। जन्=जनिता। लभ्=लब्धा। यज्=यष्टा। अधीङ्=अध्येता। सिच्=सेक्ता। भुज्=भोक्ता। ज्ञा=ज्ञाता। सह्=सोढा। वह्=वोढा। ग्रह्=ग्रहीता। इत्यादि

उदाहरण—कर्त्ता कर्मफलेन युज्यते। नेतारमनुयान्त्यनुयायिनः। किं करिष्यन्ति वक्तारः श्रोता यत्र न विद्यते।

ल्यु—नन्दयतीति=नन्दनः। मदनः। दूषणः। साधनः। वर्द्धनः। शोभनः। रोचनः। सहनः। तपनः। दमनः। जल्पनः। रमणः। दर्पणः। यवनः। लवणः। जनार्दनः। मधुसूदनः। विभीषणः। इत्यादि। †

---

* ण्वुल् में ण् और ल् का लोप और 'वु' को 'अक' आदेश हो जाता है और उससे पूर्व 'ऋ' को 'आर' वृद्धि हो जाती है।

† 'ल्यु' में 'ल्' का लोप और 'यु' को 'अन' आदेश होता है।

उदाहरण—मदनः विषयासक्तान् मदयति । विद्यया मनुष्यः शोभनो जायते न तु भूषणैः ।

णिनि=गृह्णातीति=ग्राही । उत्साही । स्थायी । मन्त्री । विषयी । अपराधी । ब्रह्मवदतीति ब्रह्मवादी । मुनिः । ब्रह्मचारी=माणवकः । साधु करोति साधुकारी=सज्जनः । साधुदायी=पुण्यात्मा । अनु—पश्चात् यातीति अनुयायी=पुत्रः शिष्यो वा । उप—समीपे जीवति उपजीवी=आश्रितः । स्थण्डिले शेते—स्थण्डिलशायी=भिक्षुः । क्षीरं पिबति क्षीरपायी=शिशुः । आत्मानं पण्डितं मन्यते=पण्डितमानी । आत्मानमभि—समन्तान्मन्यते=अभिमानी । आत्मानं बहु मन्यते=बहुमानी । मित्रं हतवान्=मित्रघाती । सोमेनेष्टवान् सोमयाजी । अग्निष्टोमयाजी । *

उदा०—अनुयायिन अग्रेसरमनुयान्ति=अभिमानी अन्यानवमन्यते ।

इनि=मद्यं विक्रीतवान्=मद्यविक्रयी । रसविक्रयी ।

उदा०—मद्यविक्रयिणो लोके निन्दनीया भवन्ति ।

अच्=प्लवतीति प्लवः=जलयानम् । चोरः=तस्करः । श्वानं पचतीति श्वपचश्चाण्डालः । अंशं हरति=अंशहरो दायादः । भागहराः=भ्रातरः । पूजामर्हति पूजार्हः=विद्वान् । विद्यार्हः=छात्रः । दण्डार्हः=अपराधी । शंकरोतीति=शङ्कर ईश्वरः । शंवदः=ब्राह्मणः । खे शेते=खशयः=पक्षी । कूपशयः=मण्डूकः उदरेण शेते=उदरशयः सर्पः । गिरौशेते=गिरिशः शिवः । गृह्णन्ति धारयन्ति आकर्षणादिना सर्वान् पदार्थानिति ग्रहाः=सूर्यादयः ।

---

* 'णिनि' में 'ण' और 'न' का लोप होकर पूर्व अच् को वृद्धि हो जाती है ।

उदा० — प्लवेन जनाः नदीं तरन्ति । अंशहराः दायाद्यमनुहरन्ति । खशयैः नभस्युड्डीयते ।

ष्वुन् — नृत्यतीति = नर्त्तकः । खनतीति = खनकः । रञ्जतीति रजकः ।*

ण्युट् — थकन् — गायतीति = गायनः, गाथकः । †

उदा० — नर्त्तकेन नृत्तं गाथकेन गीतम् ।

क — क्षिपतीति = क्षिपः । लिखः । बुधः । कृशः । प्रीणातीति प्रियः । प्रकर्षेण जानाति = प्रज्ञः । विज्ञः । गाः ददाति = गोदः । धनदः । आ-समन्तात् ह्वयति = आह्वः । प्रह्वः। समे तिष्ठति = समस्थः । विषमस्थः । द्विस्तिष्ठति = द्विष्ठः । त्रिष्ठः । द्वाभ्यां पिबतीति = द्विपः = हस्ती । तुन्दं परिमार्ष्टि तुन्दपरिमृजः = अलसः । शोकम् अपनुदति = शोकापनुदः = सुहृद् । कौ पृथिव्यां मोदते = कुमुदः । महीं दधातीति = महीध्रः = पर्वतः । सर्वं प्रकर्षेण ददाति = सर्वप्रदः । पथिप्रज्ञः । गाः संचष्टे = गोसंख्यः = गोपालः । गृह्णाति धान्यादिकमिति = गृहम्

उदा०-कुमुदश्चन्द्रोदयमपेक्षते = महीध्राः पृथिवीं धारयन्ति ।

श — पिबतीति = पिबः । जिघ्रः । धमः । धयः । पश्यः । लिम्पतीति = लिम्पः । विन्दः । धारयतीति = धारयः । पारयः । वेदयः । उदेजयः । चेतयः । सातयः । साहयः । ददातीति = ददः दधातीति = दधः । गाः विन्दतीति = गोविन्दः । अरविन्दम् । इत्यादि

उदा० — पश्यः सर्वान् पश्यति । चेतयः सर्वान् चेतयति ।

ण = ज्वलतीति = ज्वालः । चालः । अवश्यायः । प्रतिश्यायः । ददातीति = दायः । धायः । विध्यतीति = व्याधः । आ-समन्तात्

---

* 'ष्वुन्' में 'ष्' और 'न्' का लोप होकर 'वु' को 'अक' आदेश हो जाता है । † 'ण्युट्' में 'ण्' और 'ट्' का लोप होकर 'यु' को 'अन' होता है ।

स्रवतीति = आस्रावः। संस्रावः। अति-एतीति = अत्यायः। अव-स्यतीति = अवसायः। अव-हरतीति = अवहारः। लिहतीति = लेहः। श्लिष्यतीति = श्लेषः। श्वसितीति = श्वासः। दुनोतीति = दावः। नयतीति = नायः। गृह्णातीति = ग्राहः = नक्रः।

उदा०—हेमन्तेऽतिश्यायेन पर्वता आच्छन्ना भवन्ति। व्याधः मृगानवरुध्य बाणेन विध्यति।

अण्—ग्रन्थं करोति = ग्रन्थकारः। वृत्तिकारः। भाष्यकारः। कुम्भकारः। स्वर्गं ह्वयतीति = स्वर्गह्वायः। तन्तून् वयति = तन्तुवायः। सस्यानि मातीति = सस्यमायः।

उदा०—भाष्यकारेण यदुक्तं वैयाकरणानां तदेव प्रमाणम्। तन्तुवायस्तन्तुभिः वस्त्राणि वयति।

ट—दिवा करोति दिवाकरः = सूर्यः। विभां करोति = विभाकरः। प्रभाकरः। भास्करः। अहस्करः। निशां करोति = निशाकरश्चन्द्रः। कर्मकरः = भृत्यः। निशायां चरति = निशाचरश्चौरः। वनेचरः सिंहः। पुरःसरति = पुरःसरः। पूर्वसरः। अग्रतः सरः। अग्रेसरः। दुःखं करोति दुःखकरः = व्याधिः। सुखकरमारोग्यम्। यशस्करी विद्या।

उदा०—भास्करः प्रभाते पूर्वस्यां दिश्युदेति। निशाचराः नक्तं चरन्ति। अग्रेसरः यूथस्याग्रतएव सरति।

टक्—छन्दांसि गायति = छन्दोगः। सामगः। क्षीरं पिबति क्षीरपः। मद्यपः। शत्रुं हन्ति = शत्रुघ्नः। कृतघ्नः। हस्तिनं हन्तुं शक्तः = हस्तिघ्नः सिंहः। कपाटघ्नश्चौरः।

उदा०—छन्दोगा एक श्रुत्या छन्दांसि गायन्ति। कृतघ्नस्य लोके निष्कृतिर्नास्ति।

ड—अध्वानं गच्छति। अध्वगः। पान्थः। दूरगः = अश्वः। पारगः = नाविकः। सर्वगः = ईश्वरः। उरसा गच्छति उरगः

सर्पः । पन्नं पतितं गच्छतीति पन्नगः = सर्पः । विहायसा गच्छति विहगः = पक्षी* ।

न — गच्छति = नगः पर्वतः । पङ्के जातम् = पङ्कजं कमलम् । सरसि जात सरोजं । मनसि जातः = मनोजः कामः । बुद्धेः जातः = बुद्धिजः = विवेकः । संस्कारजः विप्रः । आत्मनो जातः — आत्मजः = पुत्रः । अनु — पश्चाज्जातः = अनुजः = कनिष्ठभ्राता । अग्रे — जातः = अग्रजः = ज्येष्ठभ्राता । क्लेशं हन्ति = क्लेशापहः पुत्रः । तमोपहः = सूर्यः । न — जातः = अजः = आत्मा । द्विर्जातः द्विजः = त्रैवर्णिकः ।

उदाहरण — अस्तंगते रवावध्वगाः विश्रामालयमाश्रयन्ते । विषधरेणोरगेण दृष्टः सद्यएव म्रियते । यौवने मनोजः सर्वान् व्यथयति । क्लेशापहे पुत्रे जाते पित्रोः कामनासिद्धिर्जायते ।

डु — वि-विशेषेण भवति = विभुः व्यापकः । प्र — प्रकर्षेण भवति = प्रभुः स्वामी ।

उदा० — विभुना सर्वं व्याप्यते । प्रभुणा वशं नीयतेऽनुचरवर्गः ।

खश् — जनानेजयति = जनमेजयः = शूरः । अङ्गान्येजयति = अङ्गमेजयः = शीतः । प्रस्थं पचति = प्रस्थंपचः = कटाहः । मितं-पचा = स्थाली । विधुं तुदति = विधुन्तुदः = राहुः । अरुन्तुदः = व्याधिः † ।

उदा० — यथा जनमेजयः शत्रून् व्यथयति तथैवाङ्गमेजयः दीनान् पीडयति । विधुन्तुदः सूर्यचन्द्रावेव ग्रसति ।

खच् † — प्रियं वदति प्रियंवदा = भार्या । वशंवदः = पुत्रः । द्विषन्तं तापयति = द्विषन्तपः = क्षत्रियः । परान् तापयति = पर-

---

* 'विहायसा' को 'विह' आदेश होता है । † जिन शब्दों के योग में खश् और खच् प्रत्यय होते हैं, उनको 'मुम्' का आगम होजाता है — 'उम्' का लोप होकर 'म्' को अनुस्वार हो जाता है ।

न्तपः=शूरः । वाचं यच्छति=वाचंयमः मितभाषी । पुरं दार-यति=पुरंदरः=इन्द्रः । सर्वं सहति=सर्वंसहः=साधुः । मेघं करोति=मेघंकरः=वायुः । भयङ्करः=सिंहः । क्षेमं करम्= पुण्यम् । प्रियंकरः=पुत्रः । विश्वं बिभर्त्ति=विश्वम्भरः= ईश्वरः । रथन्तरम्=साम । पतिंवरा=कन्या । शत्रुञ्जयः= योद्धा । युगन्धरः=पर्वतः । मन्युंसहः=धीरः । शत्रुन्तपः= वीरः । अरिन्दमः=शूरः ।

उदा०—यस्य प्रियंवदा भार्या वशंवदश्च पुत्रस्तस्येहैव स्वर्गः । परन्तपएव वाचंयमो भवति । शूराः विवेकिनश्च मन्युंसहा भवन्ति ।

इन्—स्तम्बं स्तृणगुच्छं करोति=स्तम्बकरिः=व्रीहिः । शकृत् पुरीषं करोति=शकृत्करिः=वत्सः । दृतिं चर्मपात्रं हरति=दृतिहरिः=पशुः । नाथं नासा रज्जुं हरति=नाथ-हरिः=पशुः । फलानि गृह्णाति धारयतीति=फलेग्रहिः=फल-वान् वृक्षः । आत्मानं बिभर्त्ति=आत्मम्भरिः=कुक्षिम्भरिः= उदरम्भरिः=स्वोदरपूरकः ।

उदाहरण—शकृत्करिः मातरमनुधावति । फलेग्रहिर्वृक्षः जनैः संरक्ष्यते । आत्मम्भरिः स्वाश्रितान् नावेक्षते ।

क्विप्—वेदं वेत्ति=वेदवित्=ब्राह्मणः । मित्रं द्वेष्टि=मित्र-द्विट्=कृतघ्नः । वीरं सूते=वीरसूः=स्त्री । ब्रह्म हतवान्= ब्रह्महा=आततायी । भ्रूणहा=गर्भघातकः । वृत्रहा=मेघः । सुष्ठु कृतवान्=सुकृत्=सज्जनः । दिनकृत्=सूर्यः । मन्त्र-कृत्=ऋषिः । पापकृत्=पापात्मा । पुण्यकृत्=पुण्यात्मा । शास्त्रकृत् । भाष्यकृत् । ग्रन्थकृत् । अग्निं चितवान्=अग्नि-चित्=याज्ञिकः । सोमं सुतवान्=सोमसुत्=दीक्षितः । विशे-षेण राजति=विराट्=पुरुषः । सम्राट्=चक्रवर्ती । परिव्राट्= संन्यासी । प्र-अञ्चति=प्राङ्=प्राचीदिक् । प्रति—अञ्चति=

प्रत्यङ् = प्रतीचीदिक्। उत्—अञ्चति = उदङ् = उदीचीदिक्। प्रति—अन्तरे भवति = प्रतिभूः = मध्यस्थः।*

उदाहरण—वेदविदेव विप्रः कृत्स्नं कर्मकाण्डं जानाति। हे राजन्! तव पत्नी वीरसूः भूयात्। दिनकृतोदेत्यापहृतं नैशं तमः। अग्निचिता अग्निं सञ्चित्य यज्ञः समापितः।

क्विन्—मर्म स्पृशतीति = मर्मस्पृक् = शरः। ऋतौयजति = ऋत्विक् = होता। त पश्यति अनुकरोति = तादृक् = तैसा। यादृक् = जैसा। एतादृक्—ईदृक् = ऐसा। त्वामनुकरोति = त्वादृक् = तेरे जैसा। मादृक् = मेरे जैसा। भवादृक् = आप जैसा। अन्यादृक् = और जैसा †।

उदाहरण—मर्मस्पृशा वाक्शरेण कस्यापि हृदयं मा विध्येत्। यादृक् त्वं तादृगेवाहम्। भवादृशः सज्जनाः सर्वत्र न लभ्याः।

ण्वि—अंशं—भजति = अंशभाक्। पृतनां—सहते = पृतनाषाट्। हव्यं—वहति = हव्यवाट्।

ञ्युट्—कव्यं—वहति = कव्यवाहनः। पुरीषं—वहति = पुरीषवाहनः।

विट्—अप्सु—जायते = अब्जाः। नृषु—सनति = नृषाः। विसं—खनति = विसखाः। दधिं—क्रमति = दधिक्राः। अग्रे—गच्छति = अग्रगाः।

मनिन्—सुष्ठु—ददातीति = सुदामा। सुष्ठु—दधातीति = सुधीवा। सुष्ठु—पिबति, पातीति वा = सुपीवा। सुष्ठु—शृणातीति = सुशर्मा।

वनिप् = सुतमनेनेति = सुत्वा। इष्टमनेनेति = यज्वा।†

क्वनिप्—पारं दृष्टवान् = पारदृश्वा। मेरुदृश्वा। राजानं योधितवान् = राजयुध्वा। राजकृत्वा। सहयुध्वा। सहकृत्वा।†

---

* 'क्विप्' और 'क्विन्' दोनों प्रत्ययों का लोप हो जाता है।

† वनिप्, क्वनिप् और तवत् प्रत्यय भूतकाल में होते हैं। वनिप्, क्वनिप् का वा और 'तवत्' का वान् हो जाता है।

उदाहरण—यज्ञे देवानां हृव्यं करोति हृव्यवाट्। सरसि अब्जाः शोभन्ते। अस्माकमग्रजः शास्त्राणां पारदृश्वान। यः सम्यक् कामादीन्-शत्रून् शृणाति स एव सुशर्मा।

तवत्—कृ-कृतमनेन=कृतवान्। गम्—गतवान्। श्रु-श्रुतवान्। भुज्-भुक्तवान्। पा-पीतवान्। दृश्—दृष्टवान्। स्था—स्थितवान्। हन्-हतवान्। इत्यादि। *

उदाहरण—पुरा। पठनार्थमहं वाराणसीं गतवान्। भीमः जरासन्धं हतवान्।

क्वसु—कृ—चकारेति=चकृवान्। गम्—जग्मिवान्—जगन्वान्। श्रु—शुश्रुवान्। अद्—जक्षिवान्। पा—पपिवान्। दृश्—ददृशिवान्, ददृश्वान्। स्था—तस्थिवान्। हन्—जघ्निवान्, जघन्वान्। सद्—सेदिवान्। वच्—ऊचिवान्। वष्—ऊषिवान्। यज्—ईजिवान्। विश्—विविशवान्, विविश्वान्। विन्द्—विविदिवान्, विविद्वान्। स्तु—स्तुष्टवान्। सिच्—सिषिच्वान्। †

उदाहरण—चकृवान् विश्वमीश्वरः। जग्मिवान् जगन्वान् वा कृष्णः पाण्डवान्। भीष्ममुखात् धर्मं शुश्रुवतः युधिष्ठिरस्य वैराग्यं जातम्। द्वारिकायामूषिवता कृष्णेन किं कृतम्? राजसूयमीजिवति युधिष्ठिरे कः प्रत्यवायो जातः।

कानच्—कृ—चकारेति चक्राणः। धृ—दधानः। युध्—युयुधानः। व्यथ्—विव्यथानः। सह्—सेहानः। शिक्ष्—शिशिक्षाणः। स्तु—तुष्टुवानः। ब्रू—ऊचानः। मुच्—मुमुचानः। यज्—सन्—कानच्=यियक्षमाणः। †

---

* क्वनिप् और तवत् प्रत्यय भूतकाल में होते हैं।

† क्वसु और कानच् दोनों 'लिट्' लकार के स्थान में होते हैं। इनमें से क्वसु परस्मैपद और कानच् आत्मनेपद कहलाता है। 'क्वसु' को 'वान' और 'कानच' को 'आन' होकर दोनों के अभ्यास को द्वित्व और चर्त्व हो जाता है।

उदा०-युयुधानयोः कर्णार्जुनयोरर्जुनस्य जयो बभूव=विध्यमानोऽप्यभिमन्युः युद्धे पृष्ठं न ददौ। व्यथां सेहानोऽपि भीष्मः युधिष्ठिरं शिक्षितवान्। यियक्षमाणेनाहूतः पार्थेनाथ मुरं द्विषन्।

शतृ-भू-भवतीति भवन्। कृ-कुर्वन्। गम्-गच्छन्। श्रु-शृण्वन्। स्था-तिष्ठन्। पा-पिबन्। दृश्-पश्यन्। सद्-सीदन्। हन्-घ्नन्। अस्-सन्। इ-यन्। विद्-विद्वान्-विदन्। हु-जुह्वन्। भी-बिभ्यन्। हा-जहन्। दिव्-दीव्यन्। जॄ-जीर्यन्। व्यध-विध्यन्। *

उदाहरण-कार्यं कुर्वन् ग्रामं गच्छति। गच्छन्तं पश्यन् तिष्ठति। पङ्के सीदता हस्तिना चीत्कारितम्। घ्नते शत्रवे न कोऽपि क्षमां भजते। यतोऽश्वात् पतति। जुह्वतोऽपि होतुः स्पृष्टः सन् अग्निर्दहति। जीर्यति वयसि केयं विषयवासना।

शानच्-कृ-करोतीति कुर्वाणः। गम्-गम्यमानः। श्रु-शृण्वानः। स्था-स्थीयमानः। पा-पीयमानः।

दृश्-दृश्यमाणः। सद्-सद्यमानः। हन्-निघ्नानः-हन्यमानः। अस्-भूयमानः। इ-ईयमानः। विद्-विद्यमानः। हु-हूयमाणः। भी-भीषयमाणः-भीष्यमाणः। हा-हीयमानः। दिव्-दीव्यमानः। अस्-आसीनः। शी-शयानः। जॄ-जीर्यमाणः। व्यध्-विध्यमानः। *

कुर्वाणो गच्छति। गम्यमानं श्रावयति। दृश्यमाणेनाभिहितम्। आसद्यमानाय विप्राय ददाति। ईयमानाद्रथात् शस्त्रं प्रहिणोति। हीयमानस्यार्थस्य को विश्वासः। शयाने सति सर्वे मनोरथाः मनसि विलीयन्ते।

---

* शतृ और शानच् वर्तमान काल में होते हैं, इनमें से शतृ परस्मैपद और शानच् आत्मनेपद कहलाता है। 'शतृ' को 'अत्' और 'शानच्' को 'आन' होता है।

स्यतृ – कृ – करिष्यतीति = करिष्यन् । गम् – गमिष्यन् । श्रु – श्रोष्यन् । स्था – स्थास्यन् । पा – पास्यन् – दृश् – द्रक्ष्यन् । हन् – हनिष्यन् । इ – यास्यन् । विद् – वेत्स्यन् । भी – बिभेष्यन् । इत्यादि *

उदाहरण – करिष्यन् गमिष्यति । गमिष्यन् श्रोष्यति । स्थास्यन्तं दर्शयिष्यति । इत्यादि

स्यमान – कृ – करिष्यमाणः । गम् – गमिष्यमाणः । श्रु – श्रोष्यमाणः । स्था – स्थास्यमानः । पा – पास्यमानः । दृ – द्रक्ष्यमाणः । हन् – हनिष्यमाणः । इ – यास्यमानः । विद् – वेत्स्यमानः । भी – बिभेष्यमाणः ।

' उदाहरण स्यत्रन्त के समान जानो ।

तुमुन् – धातु के आगे 'तुमुन्' प्रत्यय लगा देने से निमित्त अर्थ का बोध होता है, परन्तु उसके साथ क्रियार्था क्रिया का प्रयोग अवश्य होना चहिए । भू – भवितुम् । गम् – गन्तुम् । श्रु – श्रोतुम् । वह् – वोढुम् । दृश् – द्रष्टुम् । भुज् – भोक्तुम् । हन् – हन्तुम् । वच् – वक्तुम् । कृ – कर्त्तुम् । ग्रह् – ग्रहीतुम् । चित् – चिन्तयितुम् । कृ – णिच् – तुमुन् = कारयितुम् । कृ = सन् – तुमुन् = चिकीर्षितुम् । इत्यादि

उदाहरण – सर्वे भवितुमिच्छन्ति । पान्थः गन्तुं यतते । श्रोता श्रोतुं वाञ्छति । भारवाहः वोढुं शक्नोति । चक्षुष्मान् द्रष्टुमीहते । बुभुक्षितः भोक्तुं प्रक्रमते । आततायिनं हन्तुमर्हति । वाग्मी वक्तुमारभते । उत्साही कार्यं कर्तुं शक्नोति । स कस्मादपि ग्रहीतुं नेच्छति । गतं चिन्तयितुं नार्हसि । स तैः कारयितुं शक्नोति । स कस्याप्यनिष्टं चिकीर्षितुं न शक्नोति ।

---

* स्यतृ और स्यमान दोनों भविष्यत् काल में होते हैं, इनमें से स्यतृ परस्मैपद और स्यमान आत्मनेपद कहलाता है ।

क्त्वा – जहाँ दो धातुओं का एक ही कर्त्ता हो वहाँ पूर्वकाल में विद्यमान धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होता है – कृ – कृत्वा। गम्– गत्वा। श्रु – श्रुत्वा। स्था – स्थित्वा। पा – पीत्वा। दृश् – दृष्ट्वा। स्ना – स्नात्वा। हन् – हत्वा। भुज् – भुक्त्वा। विद् – विदित्वा। वच् – उक्त्वा। वस् – उषित्वा।

उदाहरण – कार्यं कृत्वोपरमते। तत्र गत्वा तिष्ठति। स्नात्वा भुङ्क्ते। भुक्त्वा व्रजति। दृष्ट्वा स्मयते।

ल्यप् – समास में यदि 'नञ्' पूर्व न हो तो 'क्त्वा' को 'ल्यप्' आदेश हो जाता है – अधि – कृ – त्वा = अधिकृत्य। आ-गम् – त्वा = आगम्य – आगत्य। सम् – श्रु – त्वा = संश्रुत्य। अधि – इ – त्वा = अधीत्य। प्र – इ – त्वा = प्रेत्य। आ – दा – त्वा = आदाय। वि – धा – त्वा = विधाय। इत्यादि

उदाहरण – राजा प्रजास्वधिकृत्य वर्त्तते। शिशुः गृहमागम्य आगत्य वा शेते। अधीत्य गच्छति। प्रेत्य जायते। पुस्तकमादाय गतः। स्वकृत्यं विधाय सुप्तः।

णमुल् – 'क्त्वा' के अर्थ में ही 'णमुल्' प्रत्यय भी होता है – स्मृ – स्मारं स्मारम्। भुज् – भोजं भोजम्। कथम्। कृ = कथङ्कारम्। कन्या – दृश् = कन्यादर्शम्। यावत् – जीव् = यावज्जीवम्। उदर – पृ = उदरपूरम्। समूल – हन् = समूलघातम्। पाणि – ग्रह् = पाणिग्राहम्। चक्र – बन्ध् = चक्रबन्धम्। शय्या– उत्-स्था = शय्योत्थायम्। यष्टि-ग्रह् = यष्टिग्राहम्। इत्यादि

उदाहरण-स्मारं स्मारं पाठमधीते छात्रः। भोजं भोजं धावति शिशुः। यदि धनं नास्ति तर्हि कथङ्कारं निर्वाहो भविष्यति? कन्यादर्शं वरयति स्नातकः। यावज्जीवं परोपकुरुते साधुः। उदरपूरं भुङ्क्ते बुभुक्षितः। समूलघातं हन्ति राजा विद्रोहिणम्। पाणिग्राहं गृह्णाति। चक्रबन्धं बन्धनाति शत्रुम्। शय्योत्थायं धावति ताडितः। यष्टिग्राहं युध्यन्ते मल्लाः। इत्यादि

ताच्छील्यार्थक

अब ताच्छील्य अर्थ में जो कर्तृ प्रत्यय होते हैं, उनका निरूपण करते हैं ।

इष्णुच् — अलं करणं शीलमस्य = अलंकरिष्णुः । निराकरिष्णुः । प्रजनिष्णुः । उत्पचिष्णुः । उत्पतिष्णुः । उन्मदिष्णुः । रोचिष्णुः । अपत्रपिष्णुः । वर्त्तिष्णुः । वर्द्धिष्णुः । सहिष्णुः । चरिष्णुः । भविष्णुः ।

उदाहरण — वाचोऽलंकरिष्णवः कवयः । अपत्रपिष्णुः निन्दितं न समाचरति । सहिष्णुः जगति प्रतिष्ठां लभते ।

ग्स्नु — जेतुं शीलमस्य = जिष्णुः । ग्लास्नुः । स्थास्नुः । भूष्णुः ।

उदाहरण — जिष्णुः परकृतामवज्ञां न सहते । भूष्णुना कदाप्यधर्मो नाद्रियते ।

क्नु — त्रसितुं शीलमस्य = त्रस्नुः । गृध्नुः । धृष्णुः । क्षिप्नुः ।

उदाहरण — सेनापतिना त्रस्नवो युद्धे न प्रेष्यन्ते । धृष्णवो वर्जिता अपि धाष्टर्यं न जहति ।

घिनुण् — शमितुं शीलमस्य = शमी । दमी । श्रमी । जयी । क्षयी । अत्ययी । प्रसवी । संपर्की । अनुरोधी । आयामी । संसर्गी । परिवादी । अपराधी । दोषी । द्वेषी । द्रोही । योगी । विवेकी । त्यागी । रागी । भागी । विलासी । विकत्थी । विस्रम्भी । प्रलापी । प्रमाथी । प्रवादी । प्रवासी ।

उदाहरण — श्रमी सदा सुखमनुभवति । व्यायामी रोगैर्नाभिभूयते । संसर्गी दोषैर्लिप्यते । परद्रोही विनश्यति । विवेकिनोऽस्मिन् संसारे न रज्यन्ते । रागिणो जनाः भवाब्धौ निमज्जन्ति । ये विस्रम्भिभिःसह विश्वासघातं कुर्वन्ति तान् धिक् ।

वुञ् — निन्दितुं शीलमस्य = निन्दकः । हिंसकः । क्लेशकः । खादकः । विनाशकः । परिक्षेपकः । परिवादकः । असूयकः । परिदेवकः । आक्रोशकः । इत्यादि

उदाहरण—निन्दकैः परगुणेषु दोषारोपणं क्रियते। हिंसकाः हिंसाजन्यपापेन युज्यन्ते। परिदेवकैः परिदेवनं क्रियते।

युच्—चलितुं शीलमस्य=चलनः। शब्दनः। वर्द्धनः। जवनः। चङ्क्रमणः। दन्द्रमणः। सरणः। गर्द्धनः। ज्वलनः। लषणः। पतनः। क्रोधनः। रोषणः। मण्डनः। भूषणः।

उदा०—चलनः तृणानि नोन्मूलयति। जवनो मनः क्षणात् दूरमभ्युपैति। चङ्क्रमणोऽश्वः प्रशस्तो भवति। गर्द्धनो जनः लोके निन्दां लभते। ज्वलनः सर्वान् पदार्थान् भस्मसात् कुरुते। क्रोधन आश्वासितोऽपि शान्तिं न भजते।

उकञ्—अभिलषितुं शीलमस्य=अभिलाषुकः। प्रपातुकः। उपपादुकः। स्थायुकः। भावुकः। प्रवर्षुकः। आघातुकः। कामुकः। आगामुकः। शारुकः।

उदा०=विद्याभिलाषुकः श्रद्धया गुरुं सेवते। भावुको जनः सद्वृत्तमाश्रयते। कामुकस्य राज्येनाऽपि तुष्टिर्न भवति।

षाकन्—जल्पितुं शीलमस्य=जल्पाकः। भिक्षाकः। कुट्टाकः। वराकः।

उदा०—जल्पाको वाचं दुरुपयुङ्क्ते। भिक्षाकः सर्वेषामवज्ञाभाजनो भवति। वराकः स्वाहितैषिणमपि द्वेष्टि।

आलुच्—स्पर्द्धितुं शीलमस्य स्पृहयालुः। गृहयालुः। पतयालुः। दयालुः। निद्रालुः। तन्द्रालुः। श्रद्धालुः। शयालुः।

उदा०—स्पृहयालुः परोदयं न सहते। दयालुः दीनानुद्धरते। श्रद्धालुः विपद्गतोऽपि धर्मं नातिवर्त्तते।

रु—दातुं शीलमस्य=दारुः। धारुः। सेरुः। शद्रुः। सद्रुः।

उदा०—दारुः सदा पात्रमपेक्षते। सेरुः पशुर्बन्धनान्मुक्तोऽपि गृह एव प्रविशति। सद्रुराश्वासितोऽपि विषादं न जहाति।

क्मरच्–सर्तुं शीलमस्य=सृमरः । घस्मरः । अद्मरः ।

उदा०–सृमरो वायुः केनापि नावरुध्यते । अद्मरो मनुष्यः भक्ष्याभक्ष्यं नावेक्षते ।

घुरच्–भङ्क्तुं शीलमस्य=भंगुरः । भासुरः । मेदुरः ।

उदाहरण–भंगुरे देहे को विश्वासः ? भास्करस्य भासुरं ज्योतिः प्रकाशते ।

कुरच्–वेत्तुं शीलमस्य=विदुरः । भिदुरः । छिदुरः ।

उदाहरण–विदुरो बुद्धिबलेनानुक्रमनागतञ्चापि जानाति । कुठारेण भिदुरं काष्ठं भिद्यते । छिदुरया रज्वा कूपे छिद्राणि सम्पद्यन्ते ।

क्वरप्–एतुं शीलमस्य=इत्वरः । नश्वरः । जित्वरः । सृत्वरः । गत्वरः ।

उदाहरण—इत्वरोऽश्वः स्वामिनं दूरं गमयति । नश्वरेण देहेनाविनश्वरा कीर्त्तिरुपार्जनीया । जित्वरैः शूरैः आहवाग्नौ प्राणाहुतयो हूयन्ते । सृत्वरी लता पार्श्वस्थं वृक्षं परिवेष्टयति । गत्वरः पान्थः निर्दिष्टं देशं समधिगच्छति ।

ऊक–जागरितुं शीलमस्य=जागरूकः । पुनः पुनरतिशयेन वा यष्टुं शीलमस्य=यायजूकः । वावदूकः ।

उदाहरण–जागरूकेभ्यश्चौराः पलायन्ते । यायजूका इष्टिभिर्यजन्ते । वावदूकेन कदाचिदपि मौनं नाश्रीयते ।

र–नमितुं शीलमस्य–नम्रः । कम्प्रः । स्मेरः । कम्रः । हिंस्रः । दीप्रः ।

उदाहरण–महत्त्वं प्राप्य सज्जना नम्रा भवन्ति । कम्प्रा शाखा वायुना मुहुर्मुहुर्नमति । स्मेरमुखं सर्वदा शोभते । राज्ञा हिंस्रेभ्यो प्रजा रक्षणीया ।

उ–ये चिकीर्षितुं शीलमस्य=चिकीर्षुः । जिज्ञासुः । जिगमिषुः । पिपासुः । जिहासुः । जिघृक्षुः । बुभुक्षुः । दित्सुः । लिप्सुः ।

आशंसितुं शीलमस्य=आशंसुः। भिक्षुः। वेदितुं शीलमस्य= विन्दुः। एषितुं शीलमस्य=इच्छुः।

उदा०—ये लोकहितं चिकीर्षवस्त एव सज्जनाः। जिज्ञासुना प्रश्नावसरे मत्सरो न कार्यः। पिपासवे जलं दातव्यम्। जिघृक्षुणा प्रतिग्रहस्य फल्गुता न ज्ञायते। दित्सुः कदापि कार्पण्यं न भजते। भिक्षुः गृहस्थेभ्यो याचते। भूतिमिच्छवो धर्ममाचरन्ति।

नजिङ्—स्वप्तुं शीलमस्य=स्वप्नक्। तर्षितुं शीलमस्य= तृष्णक्। धृष्णक्।

उदाहरण—स्वप्नक् जागरितोऽपि शेते। तृष्णक् शान्तिं न लभते।

आरुः—शरितुं शरीतुं वा शीलमस्य=शरारुः। वन्दितुं शीलमस्य=वन्दारुः।

उदाहरण—शरारुर्निर्दयो भवति। वन्दारुर्वृद्धानभिवादयते।

क्रु—क्रुकन्—भेतुं शीलमस्य=भीरुः—भीरुकः।

उदाहरण—भीरुणा भीरुकेण वा संग्रामे न स्थीयते।

वरच्—स्थातुं शीलमस्य=स्थावरः। ईशितुं शीलमस्य= ईश्वरः। भासितुं शीलमस्य=भास्वरः। पुनः पुनरतिशयेन वा यातुं शीलमस्य=यायावरः।

उदाहरण—स्थावरः स्वस्थानान्न चलति। ईश्वरस्य सत्ता सर्वत्र वर्त्तते। यायावरः स्थावरान्नत्येति।

क्विप्—विभ्राजितुं शीलमस्य=विभ्राट्। विद्योतितुं शीलमस्याः=विद्युत्। वक्तुं शीलमस्याः=वाक्। अतिशयेन गन्तुं शीलमस्य=जगत्। ध्यातुं शीलमस्याः=धीः। श्रयितुं शीलमस्याः=श्रीः। भवितुं शीलमस्याः=भूः।

उदाहरण—घनेषु विद्योतते विद्युत्। परिवर्त्तिनि जगति कोऽपि स्थैर्यं न लभते। उद्योगिनं पुरुषं श्रीः समाश्रयते।

तद्धित-प्रकरण

परस्पर सापेक्ष शब्दों से किन्हीं विशेष अर्थों में जो प्रत्यय होते हैं, उनको तद्धित कहते हैं। यथा—उपगोरपत्यम् = औपगवः। उपगु का पुत्र औपगव कहलाता है।

अनपेक्ष पदों से तद्धित प्रत्यय नहीं होते। जैसे—कम्बल उपगोः, अपत्य वसिष्ठस्य = कम्बल उपगु का, पुत्र वसिष्ठ का। यहाँ 'उपगु' शब्द के साथ अपत्य शब्द की अपेक्षा नहीं है।

यह भी नियम है कि परस्पर सापेक्ष पदों में जो पहिला पद होता है उसी से तद्धित प्रत्यय होते हैं, अन्यों से नहीं, जैसे—अश्वपतेरपत्यम् = आश्वपतम्। यहाँ पर पूर्वपद 'अश्वपति' से ही तद्धित 'अण्' प्रत्यत होता है न कि उत्तरपद अपत्य से।

कृदन्त शब्दों के समान तद्धितान्त शब्द भी प्रथमादि सात विभक्तियों, एक वचनादि तीन वचनों और पुँल्लिङ्गादि तीन लिङ्गों में परिणत होते हैं।

तद्धित में जो प्रत्यय होते हैं, उनके आदि में यदि षकार, चवर्ग और टवर्ग हों तो उनका लोप हो जाता है और अन्त्य के हल् का भी सर्वत्र लोप होता है।

यदि किसी प्रत्यय के अङ्ग 'यु' और 'वु' हों तो उनको क्रम से 'अन' और 'अक' आदेश हो जाते हैं।

यदि किसी प्रत्यय के आदि में ठ, फ, ढ, ख, छ, और घ ये वर्ण हों तो उनको क्रमशः इक्, आयन्, एय्, ईन्, ईय्, और इय् आदेश हो जाते हैं।

जिन प्रत्ययों के ञ्, ण और क् का लोप हुवा हो उनके पूर्वपदस्थ शब्द का जो आदि अच् है उसको वृद्धि हो जाती है।

तद्धित प्रकरण के पढ़नेवाले उक्त नियमों पर ध्यान रक्खें।

तद्धित तीन प्रकार का है १ – सामान्य वृत्ति २ – भाववाचक ३ – अव्ययसंज्ञक।

सामान्यवृत्ति

सामान्यवृत्ति तद्धित के ६ विभाग हैं, जिनके नाम ये हैं –

(१) अपत्यार्थक (२) देवतार्थक (३) सामूहिक (४) अध्ययनार्थक (५) शैषिक (६) विकारावयवार्थक (७) अनेकार्थक (८) मतुबर्थक (६) स्वार्थिक। अब इनमें जिस जिस दशा में जो जो प्रत्यय होते हैं, उनको हम क्रमशः उदाहरणपूर्वक दिखलाते हैं।

१ – अपत्यार्थक

अपत्य के तीन भेद हैं (१) अपत्य (२) गोत्रापत्य (३) युवापत्य।

जो अपने से बिना व्यवधान के उत्पन्न हों, ऐसे पुत्रादि की अपत्य संज्ञा है। जो अपत्य से उत्पन्न हों, ऐसे पौत्रादि की गोत्रापत्य संज्ञा है और जो पिता आदि जीवित हों तो पौत्र के पुत्रादि की युवापत्य संज्ञा है। इन्हीं तीन अर्थों में अपत्यार्थक प्रत्यय होते हैं।

गोत्रापत्य में एक ही प्रत्यय होता है, अर्थात् पौत्र के पश्चात् फिर अपत्यार्थक प्रत्यय नहीं होता। जैसे – गर्ग शब्द से गोत्रापत्य में 'यञ्' होकर 'गार्ग्यः' बना, अब इससे फिर कोई अपत्यार्थक प्रत्यय न होगा, किन्तु गार्ग्य के पुत्र और पौत्र भी गार्ग्य ही कहलावेंगे।

युवापत्य में केवल गोत्रप्रत्ययान्त शब्द से ही प्रत्यय होता है, अन्य से नहीं, यथा – गार्ग्यस्य युवापत्यम् = गार्ग्यायणः। गर्ग शब्द से गोत्रापत्य में 'यञ्' प्रत्यय होकर 'गार्ग्यः' बना था, अब उससे युवापत्य में 'फक्' प्रत्यय होकर "गार्ग्यायणः" बन गया।

अब अपत्यार्थ में जिन जिन शब्दों से जो जो प्रत्यय होते हैं, उनको दिखलाते हैं –

अण्

शिवादिगणपठित शब्दों से अपत्यार्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है—शिवस्यापत्यम्=शैवः । काकुत्स्थः । हैहयः । वैश्रवणः । आर्ष्टिषेणः । गाङ्गः । यास्कः । भौमः । ऐलः । सापत्नः । इत्यादि । आदि के अच् को वृद्धि हो जाती है ।

अश्वपति आदि शब्दों से भी अपत्यार्थ में 'अण्' होता है—अश्वपतेरपत्यम्=आश्वपतम्=शातपतम् । गाणपतम् । कौलपतम् । पाशुपतम् । इत्यादि ।

जिनके अचों में वृद्धि न हुई हो ऐसे नदी और मानुषी के नामों से भी अपत्यार्थ में 'अण्' होता है । नदी—यमुनाया अपत्यम्=यामुनः । ऐरावतः । वैतस्तः । नार्मदः । मानुषी—शिक्षिताया अपत्यम्=शैक्षितः । चैन्तितः । इत्यादि

ऋषि, अन्धक, वृष्णि और कुरु इनके वाचक शब्दों से भी अपत्यार्थ में 'अण्' होता है । ऋषि—वसिष्ठस्यापत्यम्=वासिष्ठः । वैश्वामित्रः । अन्धक—श्वाफल्कः । वृष्णि—वासुदेवः । आनिरुद्धः । कुरु—नाकुलः । साहदेवः । ऋषि मन्त्रद्रष्टाओं का और अन्धक, वृष्णि और कुरु ये वंशों के नाम हैं ।*

---

* शब्द नित्य हैं ऐसा भाष्यकार का मत है, फिर अन्धक, वृष्णि और कुरु इन अनित्य वंशों का आश्रय लेकर क्यों उनका व्याख्यान किया गया? इसका उत्तर यह है कि वास्तव में शब्द नित्य और असंख्य हैं। यदि इन वंशादि वाच्यों के होने से पूर्व इनके वाचक शब्द न होते तो इनके ये नाम ही कैसे रक्खे जाते? जैसे अब कोई अपने पुत्र का वासुदेव नाम रक्खे तो क्या इससे यह सिद्ध हो सकता है कि उसने वासुदेव संज्ञा को बनाया? कदापि नहीं। किन्तु यही माना जायगा कि उसने बनी बनाई संज्ञा को लेकर अपना काम चलाया। ऐसे ही कुरु आदि शब्दों की व्यवस्था भी समझो, इससे इनमें अनित्यता का दोष नहीं आ सकता।

संख्यावाचक तथा सम् और भद्र शब्द पूर्व हों तो मातृ शब्द से भी अपत्यार्थ में 'अण्' होता है। द्विमात्रोरपत्यम् = द्वैमातुरः। षाण्मातुरः। सांमातुरः। भाद्रमातुरः।

कन्या शब्द से भी अपत्यार्थ में 'अण्' होता है और उसके योग से कन्या शब्द को 'कनीन' आदेश भी हो जाता है। कन्याया अपत्यम् = कानीनः। कन्या = अनूढ़ा से जो उत्पन्न हो वह कानीन कहलाता है।

ब्रह्मन् शब्द से अपत्यार्थ में यदि जाति अभिधेय हो तो 'अण्' प्रत्यय होता है। ब्रह्मणोऽपत्यं जातिश्चेत् = ब्राह्मणः। जाति से अन्यत्र ब्राह्मः होगा।

मनु शब्द से भी अपत्यार्थ में 'अण्' होता है मनोरपत्यम् = मानवः।*

जनपद (नगर) वाचक दो अच् वाले शब्द तथा मगध, कलिङ्ग और सूरमस् शब्दों से यदि वे क्षत्रिय के अभिधायक हों तो अपत्यार्थ में 'अण्' होता है अङ्गस्यापत्यम् = आङ्गः। वाङ्गः। पौण्ड्रः। मागधः। कालिङ्गः। सौरमसः। क्षत्रिय से अन्यत्र-आङ्गिः। वाङ्गिः। इत्यादि वक्ष्यमाण 'इञ्' होगा।

अञ्

उत्स आदि शब्दों से अपत्यार्थ में 'अञ्' होता है। उत्सस्यापत्यम् = औत्सः †। पार्थिवः। पाङ्क्तः। भारतः। औशीनरः। पैलः। बार्हतः। सात्वतः। कौरवः। पाञ्चालः † बिदादि शब्दों से गोत्रापत्य में (अञ्) होता है। बिदस्य गोत्रापत्यम् = बैदः।

* मनु शब्द से केवल अपत्यार्थ में 'अञ्' होता है, यदि जाति अभिधेय हो तो अञ् और यत् प्रत्यय होते हैं—मनोरपत्यं जातिश्चेत् = मानुषः। मनुष्यः। दोनों में षुक् का आगम हो जाता है।

† अण् और अञ् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप एक जैसे ही होते हैं केवल स्वर में कुछ भेद होता है।

काश्यपः । कौशिकः । भारद्वाजः । औपमन्यवः । वैश्वानरः । आर्ष्टिषेणः । शारद्वतः । शौनकः । पौनर्भवः । पौत्रः । दौहित्रः ।

जनपद [नगर] वाचक शब्दों से यदि वे क्षत्रिय के अभिधायक हों तो अपत्यार्थ में 'अञ्' होता है—पञ्चालस्यापत्यम्=पाञ्चालः । वैदेहः । गान्धारः । इत्यादि । दो अच् वाले शब्दों से 'अण्' विधान कर चुके हैं । क्षत्रिय से अन्यत्र—पाञ्चालिः । इत्यादि 'इञ्' होगा ।

कम्बोज, चोल, केरल, शक और यवन शब्दों से अपत्यार्थ में 'अञ्' होकर उसका लोप हो जाता है—कम्बोजस्यापत्यम्=कम्बोजः । चोलः । केरलः । शकः । यवनः ।

इञ्

अकारान्त शब्दों से अपत्यार्थ में 'इञ्' प्रत्यय होता है—दक्षस्यापत्यम्=दाक्षिः । दाशरथिः । द्रौणिः ।

बाहु आदि शब्दों से भी अपत्यार्थ में 'इञ्' होता है—बाहोरपत्यम्=बाहविः । बालाकिः । सौमित्रिः । कार्ष्णिः । यौधिष्ठिरिः । आर्जुनिः ।

सुधातु, व्यास, बरुड़, निषाद, चण्डाल और बिम्ब शब्दों से भी अपत्यार्थ में 'इञ्' और उससे पूर्व इन को 'अक' आदेश भी होता है । सुधातोरपत्यम्=सौधातकिः । वैयासकिः । बारुडकिः । नैषादकिः । चाण्डालकिः । वैम्बकिः ।

शिल्पवाचक, लक्षण और सेना शब्द जिनके अन्त में हों ऐसे शब्दों से भी अपत्यार्थ में 'इञ्' होता है—शिल्पवाचक कुम्भकारस्यापत्यम्=कौम्भकारिः । तान्तुवायिः । लक्षण—लाक्षणिः । सेनान्त—कारिषेणिः । शौरसेनिः ।

ण्य

शिल्प, लक्षण और सेना शब्दान्त से 'ण्य' प्रत्यय भी होता है कौम्भकार्यः । तान्तुवाय्यः । लाक्षण्यः । कारिषेण्यः । शौरसेन्यः ।

दिति, अदिति और पत्यन्त शब्दों से भी अपत्यार्थ में 'ण्य' प्रत्यय होता है—दितेरपत्यम्=दैत्यः। आदित्यः। प्राजापत्यः।

क्षत्रियवाचक कुरु और नकारादि शब्दों से भी अपत्यार्थ में 'ण्य' प्रत्यय होता है—कुरोरपत्यम्=कौरव्यः। नैषध्यः। नैपथ्यः। इत्यादि

यञ्

गर्गादि गणपठित शब्दों से गोत्रापत्य में 'यञ्' प्रत्यय होता है—गर्गस्य गोत्रापत्यम्=गार्ग्यः। वात्स्यः। अगस्त्यः। पौलस्त्यः। धौम्यः। बाभ्रव्यः। माण्डव्यः। काण्वः। शाकल्यः। कौण्डिन्यः। याज्ञवल्क्यः। शाण्डिल्यः। मौद्गल्यः। पाराशर्यः। जातूकर्ण्यः। आश्मरथ्यः। पैङ्गल्यः। दाल्भ्यः। जामदग्न्यः। इत्यादि

फक्—फञ्—फिञ्

नडादि शब्दों से गोत्रापत्य में फक् प्रत्यय होता है 'फ्' को 'आयन्' आदेश होकर—नडस्य गोत्रापत्यम्=नाडायनः। चारायणः। नारायणः।। मैत्रायणः। शाकटायनः। इत्यादि

यञन्त और इञन्त शब्दों से युवापत्य में 'फक्' प्रत्यय होता है। यञन्त—गार्ग्यस्य युवापत्यम्=गार्ग्यायणः। वात्स्यायनः। इत्यादि इञन्त—दाक्षेः युवापत्यम्=दाक्षायणः। प्लाक्षायणः। इत्यादि

द्रोण, पर्वत और जीवन्त शब्दों से गोत्रापत्य में विकल्प से 'फक्' होता है, पक्ष में इञ् होता है—द्रोणस्यापत्यम्= द्रोणायनः। द्रौणिः। पार्वतायनः। पार्वतिः। जैवन्तायनः। जैवन्तिः।

अश्वादि गणपठित शब्दों से गोत्रापत्य में 'फञ्' होता है—आश्वायनः। आश्मायनः। इत्यादि

तिकादि गणपठित शब्दों से अपत्यार्थ में 'फिञ्' प्रत्यय होता है—तिकस्यापत्यम्=तैकायनिः । कैतवायनिः ।

दो अच् वाले अणन्त से भी अपत्यार्थ में 'फिञ्' होता है कर्तुरपत्यम्=कार्त्रः । कार्त्रस्यापत्यम्=कार्त्रायणिः । हार्त्रायणिः । इत्यादि

तद् आदि सर्वनामों से भी अपत्यार्थ में 'फिञ्' होता है—तस्यापत्यम्=तादायनिः । यस्यापत्यम्=यादायनिः । इत्यादि

ढक्—ढञ्—ढ्रक्

स्त्रीप्रत्ययान्त आबन्त शब्दों के अपत्यार्थ में 'ढक्' प्रत्यय होता है—विनताया अपत्यम्=वैनतेयः । गाङ्गेयः । सारमेयः । मैत्रेयः । इत्यादि 'ढ' को 'एय्' आदेश होकर वृद्धि हो जाती है ।

दो अच् वाले पुंलिङ्ग इकारान्त शब्दों से भी यदि वे 'इञ्' प्रत्ययान्त न हों तो अपत्यार्थ में 'ढक्' होता है—अत्रेरपत्यम्=आत्रेयः । नैधेयः । इत्यादि

शुभ्रादि गणपठित शब्दों से भी अपत्यार्थ में 'ढक्' होता है—शुभ्रस्यापत्यम्=शौभ्रेयः । गौधेयः । काद्रवेयः । कौमारिकेयः । आम्बिकेयः । इत्यादि

विकर्ण और कुषीतक शब्दों से यदि ये दोनों कश्यप के अपत्यविशेष हों तो 'ढक्' होता है; अन्यथा इञ्—वैकर्णेयः । कौषीतकेयः । काश्यप से भिन्न—वैकर्णिः । कौषीतकिः ।

भ्रू शब्द से अपत्यार्थ में 'ढक्' प्रत्यय और 'वुक्' का आगम होता है । भ्रुवोरपत्यम्=भ्रौवेयः । कल्याणी आदि शब्दों से अपत्यार्थ में 'ढक्' प्रत्यय और 'इनङ्' आदेश होता है । कल्याण्या अपत्यम्=काल्याणिनेयः । सौभागिनेयः । दौर्भागिनेयः । पारस्त्रैणेयः ।

कुलटा शब्द से भी अपत्यार्थ में 'ढक्' होता है—कुलटाया अपत्यम्=कौलटेयः। किन्हीं के मत से 'इन्' आदेश होकर—कौलटिनेयः भी होता है।

अङ्गहीन और शीलहीन स्त्रीवाचक शब्दों से अपत्यार्थ में 'ढक्' और ढ्रक् दोनों प्रत्यय होते हैं। काण्या—अपत्यम्=काणेयः। काणेरः। दास्याअपत्यन्=दासेयः। दासेरः।

पितृष्वसृ और मातृष्वसृ शब्दों से भी अपत्यार्थ में 'ढक्' होता है—पितृष्वसुरपत्यम्=पैतृष्वसेयः। मातृष्वसेयः।

गृष्टयादि गणपठित शब्दों से अपत्यार्थ में 'ढञ्' प्रत्यय होता है—गृष्टेरपत्यम्=गार्ष्टेयः। हार्ष्टेयः। हालेयः। बालेयः। इ०

छ—छण्

स्वसृ और भ्रातृ शब्दों से अपत्यार्थ 'छ' प्रत्यय होता है—स्वसुरपत्यम्=स्वस्रीयः। भ्रात्रीयः। 'छ' को 'ईय्' आदेश हो जाता है। भ्रातृ शब्द से अपत्यार्थ में तथा अमित्रार्थ में 'व्यत्' प्रत्यय भी होता है—भ्रातुरपत्यं सपत्नं वा भ्रातृव्यः।

पितृष्वसृ और मातृष्वसृ शब्दों से अपत्यार्थ में 'छण्' भी होता है—पैतृष्वस्रीयः मातृष्वस्रीयः।

यत्

राजन् और श्वसुर शब्द से अपत्यार्थ में यत् प्रत्यय होता है—राज्ञोऽपत्यम्=राजन्यः। श्वशुर्यः *।

घ

'क्षत्र' शब्द से अपत्यार्थ में (घ) प्रत्यय होता है—क्षत्रस्यापत्यम्=क्षत्रियः। * 'घ' को (इय्) आदेश हो जाता है।

---

* राजन् और क्षत्र शब्द से क्रमशः यत् और घ प्रत्यय जाति के अभिधान में होते हैं। जाति से अन्यत्र राजन् से अण् और क्षत्र से इञ् प्रत्यय होंगे—राजनः। क्षात्रिः।

ख—खञ्

कुल शब्द जिसके अन्त में हो ऐसे पद से अपत्यार्थ में (ख) प्रत्यय होता है। (ख) को (ईन्) आदेश होकर—आढ्यकुलीनः। श्रोत्रियकुलीनः।

केवल कुल शब्द से अपत्यार्थ में खञ् यत् और ढकञ् तीन प्रत्यय होते हैं—कुलीनः। कुल्यः। कौलेयकः।

महाकुल शब्द से खञ् और अञ् तथा दुष्कुल शब्द से खञ् और ढक् प्रत्यय यथाक्रम होते हैं—महाकुलीनः। माहाकुलः। दुष्कुलीनः। दौष्कुलेयः।

ठक्—ण

रेवत्यादि गणपठित शब्दों से अपत्यार्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है। 'ठ' को 'इक्' होकर—रेवत्या अपत्यम्=रैवतिकः। आश्वपालिकः। इत्यादि

गोत्रवाचक स्त्रीलिंग शब्दों से अपत्यार्थ में निन्दा सूचित होती हो तो ठक् और ण प्रत्यय होते हैं। पिता का ज्ञान न होने पर माता के नाम से जो पुत्र का व्यपदेश किया जाता है वह पुत्र की एक प्रकार की निन्दा है—गार्ग्या अपत्यम्=गार्गिकः। गार्गः। जाबालिकः। जाबालः। इत्यादि

२—देवतार्थक

प्रथमान्त देवतावाचक शब्दों से षष्ठी के अर्थ हव्य और सूक्त के अभिधान में देवतार्थक प्रत्यय होते हैं।

अण्—इन्द्रादि शब्दों से देवतार्थक अण् प्रत्यय होता है—इन्द्रो देवताऽस्य=ऐन्द्रं हविः सूक्तं वा=इन्द्र देवता के उद्देश से जो हविस् दिया जाय वा सूक्त पढ़ा जाय उस हविस् वा सूक्त को 'ऐन्द्र' कहते हैं। ऐसे ही वारुणम्। बार्हस्पतम्। कः

प्रजापतिर्देवताऽस्य=कायं हविः सूक्तं वा। 'अण्' होकर 'क' को इकारादेश भी होता है।

घन्—शुक्रो देवताऽस्य=शुक्रियं हविः सूक्तं वा।

घन्, छ—शतं रुद्रा देवता अस्य=शतरुद्रियम्—शतरुद्रीयम्। अपोनप्त्रियम्—अपोनप्त्रीयम्—अपान्नप्त्रियम्—अपान्नप्त्रीयम्।

ट्यण्—सोमो देवताऽस्य=सौम्यम्।

अण्, घ, छ—महेन्द्रो देवताऽस्य=माहेन्द्रम्—महेन्द्रियम्—माहेन्द्रीयम्।

यत्—वायुर्देवताऽस्य=वायव्यम्। ऋतव्यम्। पित्र्यम्। उषस्यम्।

छ, यत्—द्यावापृथिव्यौ देवते अस्य=द्यावापृथिवीयम्—द्यावापृथिव्यम्। शुनासीरीयम्—शुनासीर्यम्। मरुत्वतीयम्—मरुत्वत्यम्। अग्नीषोमीयम्—अग्नीषोम्यम्। वास्तोष्पतीयम्—वास्तोष्पत्यम्। गृहमेधीयम्—गृहमेध्यम्।

ढक्—अग्निर्देवताऽस्य=आग्नेयम्।

ठञ्—महाराजो देवताऽस्य=माहाराजिकम्। प्रौष्ठपदिकम्।

पितृ और मातृ शब्दों से यदि उनके भ्राता अभिधेय हों तो क्रम से व्यत् और डुलच् प्रत्यय होते हैं और यदि उनके पिता अभिधेय हों तो डामहच् प्रत्यय होता है—पितुर्भ्राता पितृव्यः=चाचा वा ताऊ। मातुर्भ्राता मातुलः=मामा। पितुः पिता पितामहः=बाबा। मातुः पिता मातामहः=नाना।

३—सामूहिक

षष्ठ्यन्त शब्द से समूह (समुदाय) के अर्थ में सामूहिक प्रत्यय होते हैं।

अण्—काकानां समूहः=काकम्। बकानां समूहः=बाकम्। भिक्षाणां समूहः=भैक्षम्। गर्भिणीनां समूहः=गार्भिणम्। युवतीनां समूहः=यौवनं यौवतं वा। पदातीनां समूहः=पादातम्।

वुञ्—औपगवानां समूहः=औपगवकम्। उक्षाणां समूहः=औक्षकम्। औष्ट्रकम्। औरभ्रकम्। राजकम्। राजन्यकम्। राजपुत्रकम्। वात्सकम्। मानुष्यकम्। आजकम्। वार्द्धकम्। काठकम्। कालापकम् इत्यादि 'वु' को 'अक' आदेश होता है।

यञ्, वुञ्, ठञ्—केदाराणां समूहः=कैदार्यम्, कैदारकम्,

यञ्—गणिकानां समूहः=गाणिक्यम्।

यत्—य—ब्राह्मणानां समूहः=ब्राह्मण्यम्। माणव्यम्। पाशानां समूहः=पाश्या। तृण्या। वात्या। खल्या। गव्या। रथ्या।

ठञ्—कवचिनां समूहः=कावचिकम्।

ठक्—हस्तीनां समूहः=हास्तिकम्। धैनुकम्। आपूपिकम्। शाष्कुलिकम्।

तल्—ग्रामाणां समूहः=ग्रामता। जनता। बन्धुता। सहायता। गजता।

अञ्—कपोतानां समूहः=कापोतम्। मायूरम्। तैत्तिरम् खाण्डिकम्। वाडवम्। शौकम्। औलूकम्।

यञ्, ठक्—केशानां समूहः=कैश्यम्। कैशिकम्।

छ—अण्—अश्वानां समूहः=अश्वीयम्। आश्वम्।

४—अध्ययनार्थक

द्वितीयान्त शब्द से पढ़ने और जानने के अर्थ में अध्ययनार्थक प्रत्यय होते हैं।

अण्—व्याकरणमधीते, वेद वा=वैयाकरणः=जो व्याकरण पढता है वा जानता है उसको वैयाकरण कहते हैं ऐसे ही—नैरुक्तः। छान्दसः। इत्यादि

ठक्—यज्ञविशेषवाचक और उक्थादि गणपठित शब्दों से अध्ययनार्थक ठक् प्रत्यय होता है। यज्ञवाचक—अग्निष्टोममधीते, वेद वा=आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः।

उक्थादि—उक्थान्यधीते,वेद वा=औक्थिकः। नैयायिकः। लौकायतिकः। नैमित्तिः। याज्ञिकः। धार्मिकः। वार्त्तिकः। इत्यादि

विद्या, लक्षण और कल्प ये शब्द जिनके अन्त में हों, उनसे तथा इतिहास और पुराण शब्दों से भी उक्तार्थ में 'ठक्' होता है-नक्षत्रविद्यामधीते, वेद वा=नाक्षत्रविद्यिकः। सार्पविद्यिकः। आश्वलक्षणिकः। मातृकल्पिकः। ऐतिहासिकः। पौराणिकः।

वसन्तादि गणपठित शब्दों से भी उक्तार्थ में 'ठक' होता है—वसन्तविद्यामधीते, वेद वा=वासन्तिकः। ग्रैष्मिकः। वार्षिकः। शारदिकः। हैमन्तिकः। शैशिरिकः। प्राथमिकः। गौणिकः। आथर्वणिकः।

वुन्—क्रमादि गणपठित शब्दों से उक्तार्थ में 'वुन्' होता है—क्रममधीते, वेद वा=क्रमकः। पदकः। शिक्षकः। मीमांसकः। सामकः। इत्यादि।

लुक्—प्रोक्त प्रत्ययान्त शब्दों से अध्ययनार्थक प्रत्यय का लोप हो जाता है। पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयं तदधीते तद्वेद वा=पाणिनीयः। आपिशलः।

५—शैषिक

जिन अपत्यादि अर्थों में अब तक प्रत्यय कहे जा चुके हैं, उनसे जो शेष जातादि अर्थ हैं, उनको शैषिक कहते हैं। शैषिक

प्रत्यय जिन जिन अर्थों में कहे जावेंगे, उन सब अर्थों में समष्टि रूप से जो प्रत्यय होते हैं प्रथम उनको दिखलाते हैं ।

शैषिक प्रत्यय अनेक विभक्तियों से और अनेक अर्थों में होते हैं, यथा—स्रुघ्नादागतः, स्रुघ्नेजातः, स्रुघ्नः निवासोऽस्य = स्रौघ्नः = स्रुघ्न से आया, स्रुघ्न में उत्पन्न हुवा, स्रुघ्न जिसका निवास स्थान है, ये सब स्रौघ्न कहलावेंगे ।

घ—राष्ट्र शब्द से जातादि अर्थों में शैषिक 'घ' प्रत्यय होता है । राष्ट्रे जातः = राष्ट्रियः ।

य, खञ्—ग्राम शब्द से जातादि अर्थों में शैषिक य और खञ् प्रत्यय होते हैं । ग्रामे जातः, ग्रामः निवासोऽस्य वा = ग्राम्यः । ग्रामीणः ।

ढकञ्—कुल, कुक्षि और ग्रीवा शब्दों से यथाक्रम श्वा, खड्ग और अलङ्कार के अभिधान में शैषिक ढकञ् प्रत्यय होता है । कुले जातः कौलेयकः = श्वा । अन्यत्र कौलः । कौक्षेयकः = खड्गः । अन्यत्र कौक्षः । ग्रैवयको मणिः । अन्यत्र ग्रैवः ।

ढक्—नद्यादि गणपठित शब्दों से शैषिक (ढक्) प्रत्यय होता है नद्यां जातं नादेयं = जलम् । मह्यां जातं माहेयं = जतु । वने जातं वानेयं = काष्ठम् ।

त्यक्—दक्षिणा, पश्चात् और पुरस् शब्दों से शैषिक 'त्यक्' प्रत्यय होता है । दक्षिणस्यां जातः दाक्षिणात्यः । पाश्चात्यः । पौरस्त्यः ।

यत्—दिव्, प्राच्, अपाच्, प्रत्यच् और उदच् शब्दों से शैषिक 'यत्' प्रत्यय होता है दिवि जातं = दिव्यम् । प्राच्यम् । अपाच्यम् । प्रतीच्यम् । उदीच्यम् ।

त्यप्—अमा, इह, क्व, तसन्त और त्रान्त अव्ययों से शैषिक 'त्यप्' प्रत्यय होता है—अमा सह जातः = अमात्यः * । इह

* राजा का सहचर होने से अमात्य मन्त्री को कहते हैं ।

जातः=इहत्यः । क्वत्यः । इतस्त्यः । तत्रत्यः । अत्रत्यः । 'नि' अव्यय से ध्रुवार्थ में 'त्यप्' होता है नित्यं=ध्रुवम् ।

छ – जिसके आदि अच् को वृद्धि हुई हो, उसे शैषिक 'छ' प्रत्यय होता है – शालायां भवः=शालीयः । मालीयः ।

तद्, यद्, एतद्, युष्मद् और अस्मद् इन सर्वनामों से भी शैषिक 'छ' प्रत्यय होता है तस्मिन् वा तस्यां भवः=तदीयः । एतदीयः । युष्मदीयः – त्वदीयः । अस्मदीयः । मदीयः * ।

अण्, खञ्, छ – युष्मद् और अस्मद् सर्वनामों से 'छ' के अतिरिक्त और अण् और खञ् प्रत्यय भी होते हैं । परन्तु इन दोनों में दोनों को क्रम से युष्माक और अस्माक आदेश हो जाते हैं, केवल 'छ' में ये अपने स्वरूप से रहते हैं – युष्मासु – भवः= यौष्माकः, यौष्माकीणः, युष्मदीयः । अस्मासु – भवः=आस्माकः, आस्माकीनः, अस्मदीयः । एकवचन में तवक और ममक आदेश भी होते हैं । त्वयि भवः=तावकः – तावकीनः । मयि भवः= मामकः – मामकीनः ।

ठक्, छस् – त्यदादिगणीय भवत् सर्वनाम से ठक् और छस् प्रत्यय होते हैं – भवत्सु – भवः=भावत्कः – भवदीयः शत्रन्त भवत् शब्द से 'अण्' प्रत्यय होगा – भावतः ।

यत् – अर्द्ध शब्द से 'यत्' प्रत्यय होता है – अर्द्धेभवम्= अर्द्ध्यम् । परार्द्ध्यम् । अवरार्द्ध्यम् । यत्-ठञ्-दिक पूर्वपद अर्द्ध शब्द से शैषिक यत् और ठञ् प्रत्यय होते हैं । पूर्वार्द्धे भवम्=पूर्वार्द्ध्यम् । पौर्वार्द्धिकम् । दक्षिणार्द्ध्यम् । दाक्षिणा-र्द्धिकम् ।

म – आदि, मध्य, अवस् शब्दों से 'म' प्रत्यय होता है – आदौ भवः=आदिमः । मध्यमः । अवमः । अधमः । अवस् और अधस् के सकार का लोप हो जाता है ।

---

* युष्मद् और अस्मद् को एक पक्ष में त्वत् और मत् आदेश हो गये हैं ।

वुञ्—नगर शब्द से निन्दा और प्रवीणता में शैषिक 'वुञ्' होता है—नगरे—भवः=नागरकश्चौरः । नागरकः शिल्पी । अन्यत्र—नागरो ब्राह्मणः । अण् होगा । अरण्य शब्द से मनुष्य, मार्ग, अध्याय और हस्ती के अभिधान में 'वुञ्' प्रत्यय होता है । अरण्ये जातः=आरण्यको मनुष्यः, पन्थाः अध्यायः, हस्ती वा । इनसे अन्यत्र आरण्यः=पशुः । अण् होगा ।

छ—पर्वत शब्द से मनुष्य अभिधेय हो तो शैषिक 'छ' प्रत्यय होता है—पर्वते—भवः=पर्वतीयः पुरुषः । पर्वतीयो राजा । मनुष्य से भिन्न में भी होता है । पर्वतीयं पार्वतं वा फलम् ।

यञ्—द्वीप शब्द से यदि वह समुद्र के समीप हो तो शैषिक 'यण्' होता है—द्वीपे भवं द्वैप्यम् ।

ठञ्—कालविशेष वाचक शब्दों से शैषिक 'ठञ्' होता है—अह्नि कृतम्=आह्निकम् । मासिकम् । वार्षिकम् ।

शरद् शब्द से यदि श्राद्ध अभिधेय हो तो 'ठञ्' होता है—अन्यत्र अण्—शरदि भवं शारदिकं श्राद्धम् । अन्यत्र-शारदं नभः ।

ठञ्, अण्—रोग और आतप अभिधेय हों तो शरद् शब्द से ठञ् और अण् दोनों होते हैं—शारदिकः शारदो रोगः । शारदिकः शारद आतपः । निशा और प्रदोष शब्दों से भी ठञ् और अण् दोनों होते हैं—निशायां भवं=नैशिकं, नैशं वा तमः । प्रादोषिकं, प्रादोषम् ।

अण्—सन्ध्या ऋतु और नक्षत्र वाचक शब्दों से शैषिक 'अण्' होता है । सन्ध्यायां भवं=सान्ध्यम् । ऋतु—ग्रीष्मे भवं=ग्रैष्मम् । शैशिरम् । नक्षत्र—तिष्ये भवं तैषम् । पौषम् । *

एण्य, ठक्—प्रावृष् से 'एण्य' और वर्षा से 'ठक्' होता है—प्रावृषि भवः=प्रावृषेण्यः । वर्षासु भवः=वार्षिकः ।

---

* तिष्य और पुष्य शब्द के यकार का लोप होता है ।

तनस्—सायम्, चिरम् आदि अव्ययों से तनस् प्रत्यय होता है—सायं भवः=सायन्तनः । चिरन्तनः ।

तनस्, ठञ्—पूर्वाह्ण और अपराह्ण शब्दों से शैषिक तनस् और ठञ् प्रत्यय होते हैं । पूर्वाह्णे भवं=पूर्वाह्णेतनम् । पौर्वाह्णिकम् । अपराह्णेतनम् । आपराह्णिकम् ।

इम्—अग्र, पश्चात् और अन्त शब्दों से शैषिक 'इम्' प्रत्यय होता है—अग्रे भवम्=अग्रिमम् । पश्चिमम् । अन्तिमम् । पश्चात् को 'पश्च' आदेश भी हो जाता है ।

अब एक एक विभक्ति से एक एक अर्थ में जो शैषिक प्रत्यय होते हैं उनको व्यष्टि रूप से दिखलाते हैं—

१—जातार्थक*

जातार्थ से लेकर भवार्थ पर्यन्त सब प्रत्यय सप्तम्यन्त से होते हैं ।

अण्—स्रुघ्ने जातः=स्रौघ्नः । माथुरः । पाञ्चालः । सैन्धवः । रौहिणः । मार्गशीर्षः ।

ठप्—प्रावृषि जातः=प्रावृषिकः ।

वुञ्—शरद् शब्द से जात अर्थ में यदि संज्ञा बन जाती हो तो 'वुञ्' प्रत्यय होता है । शरदि जातं शारदकम्=सस्यम् ।

वुन्—पथि जातः=पन्थकः । पथिन् को पन्थ आदेश हो जाता है । पूर्वान्हेजातः=पूर्वान्हकः । अपरान्हकः । आर्द्रकः । मूलकः । प्रदोषकः । अवस्करकः ।

अण्, अ, वुन्—अमावस्यायां जातः=आमावास्यः, अमावस्यः, अमावास्यकः ।

अण्-कन्—सिन्धु शब्द से जातार्थ में अण् और कन् प्रत्यय होते हैं । सिन्धौजातः=सैन्धवः । सिन्धुकः ।

ढञ्—कोशे जातं कौशेयं वस्त्रम् ।

---

* जातार्थ से उत्पत्ति का ग्रहण करना चाहिये ।

२—उप्तार्थक

अण्—हेमन्ते उप्ताः हैमन्ताः=यवाः। ग्रैष्माः=व्रीहयः।

अण्-वुञ्—ग्रीष्मे उप्तानि ग्रैष्माणि ग्रैष्मकाणि=सस्यानि। वासन्ता वासन्तिका=इक्षवः।

वुञ्—आश्वयुज्यामुप्ता आश्वयुजका=माषाः,

(३) देयार्थक

ठञ्—मासे देयं=मासिकम् ऋणम्। वार्षिकम्।

ठञ्, वुञ्—संवत्सरे देयं=सांवत्सरिकम्, सांवत्सरकम्। आग्रहायणिकम्, आग्रहायणकम्।

(४) भवार्थक*

अण्—सुघ्ने भवं=स्रौघ्नम्।

यत्—दिगादि गणपठित शब्दों से भवार्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है। दिशिभवं दिश्यम्। वर्ग्यम्। गण्यम्। मेध्यम्। पथ्यम्। रहस्यम्। साक्ष्यम्। आद्यम्। अन्त्यम्। मुख्यम्। जघन्यम्। यूथ्यम्। न्याय्यम्। वंश्यम्। आप्यम्॥ इत्यादि। शरीरावयव वाचक शब्दों से भी भवार्थ में 'यत्' होता है—दन्तेभवं दन्त्यम्। कर्ण्यम्। कण्ठ्यम्। ओष्ठ्यम्। तालव्यम्। मूर्द्धन्यम्॥

ढञ्—दृतौ भवं=दार्तेयम्। कौक्षेयम्। आहेयम्। वास्तेयम्। आस्तेयम्।

अण्—ढञ्=ग्रीवायां भवं=ग्रैवं,ग्रैवेयम्।

ष्यञ्—गम्भीरे भवं गाम्भीर्यम्। बाह्यम्। दैव्यम्। पाञ्चजन्यम्। पारिमुख्यम्। आनुकूल्यम्।

ठञ्—अन्तर्वेश्मनि-भवम्=आन्तर्वेश्मिकम्। आन्तर्गेहिकम्। आध्यात्मिकम्। आधिदैविकम्। आधिभौतिकम्। और्ध्वदेहिकम्। ऐहलौकिकम्। पारलौकिकम्।

---

* भवार्थ से प्रसूत का ग्रहण करना चाहिये।

छ—जिह्वामूले भवं=जिह्वामूलीयम्। अंगुलीयम्। वर्गान्त अक्षर समूहवाचक शब्द से भी 'छ' प्रत्यय होता है—कवर्गीयम्। चवर्गीयम्।

ख, यत्, छ—वर्गान्त शब्द अक्षरसमूह से भिन्न किसी और समुदाय का वाचक हो तो ख, यत और छ प्रत्यय होते हैं, उच्च-वर्गे भवः=उच्चवर्गीणः उच्चवर्ग्यः, उच्चवर्गीयः।

कन्—कर्ण और ललाट शब्द से अलङ्कार के अभिधान में "कन्' प्रत्यय होता है। कर्णेभवा कर्णिका। ललाटिका ये भूषणों के नाम हैं।

५—व्याख्यानार्थक

षष्ठ्यन्त व्याख्यातव्य से व्याख्यान के अर्थ में व्याख्याना-र्थक प्रत्यय होते हैं।

अण्—सुपां व्याख्यानः=सौपः। तैङः। कार्त्तः। ऋगयनानां व्याख्यानः=आर्गयनः। पौनरुक्तः। नैगमः। वास्तुविद्यः। नैमित्तः। औपनिषदः। शैक्षः। इत्यादि

अण्, यत्—छन्दसां व्याख्यानः=छान्दसः, छन्दस्यः।

ठक्—इष्टीनां व्याख्यानः=ऐष्टिकः। चातुर्होतृकः। ब्राह्म-णिकः। आर्चिकः। प्राथमिकः। आध्वरिकः। पौरश्चरणिकः। नामिकः। आख्यातिकः।

ठञ्—अग्निष्टोमस्य व्याख्यानः=आग्निष्टोमिकः। वाजपे-यिकः। वसिष्ठस्य व्याख्यानः=वासिष्ठिकः। वैश्वामित्रिकः।

(६) आगतार्थक

पञ्चम्यन्त शब्द से आने के अर्थ में आगतार्थक प्रत्यय होते हैं।

अण्—स्रुघ्नादागतः=स्रौघ्नः। माथुरः। वाङ्गः। कालिङ्गः। शुण्डिकादागतः=शौण्डिकः। कार्पणः। स्थाण्डिलः। तैर्थः। इत्यादि।

ठक्—आकरादागतम् आकरिकं सुवर्णम्। आपणिकं वस्त्रम्।

वुञ्—विद्या और योनि सम्बन्धवाचक शब्दों से 'वुञ्' होता है। विद्यासम्बन्ध—उपाध्यायादागतः=औपाध्यायकः। आचार्यकः। योनिसम्बन्ध—पितामहादागतः=पैतामहकः—मातामहकः। इत्यादि

ठञ्—विद्या और योनि सम्बंध वाचक ऋकारान्त शब्दों से ठञ् होता है। विद्या—होतुरागतं=हौतृकम्। पौतृकम्। योनि—भ्रातृकम्। मातृकम्।

ठञ्, यत्—पितुरागतं=पैतृकं पित्र्यं वा।

(७) प्रभवार्थक*

पञ्चम्यन्त शब्द से उत्पन्न होने के अर्थ में प्रभवार्थक प्रत्यय होते हैं।

अण्—हिमवतः प्रभवति=हैमवती गङ्गा। समुद्रात् प्रभवति सामुद्रं रत्नम्।

ञ्य—विदूरात्प्रभवति=वैदूर्यो मणिः।

(८) प्रोक्तार्थक

तृतीयान्त शब्द से कहने के अर्थ में प्रोक्तार्थक प्रत्यय होते हैं।

अण्—ऋषिणा प्रोक्तम्=आर्षम्। मनुना प्रोक्तं=मानवम्। पातञ्जलम्। आपिशलम्। काशकृत्स्नम्। पाराशरम्।

छ—पाणिनिना प्रोक्तं=पाणिनीयम्। तैत्तिरीयम्। काश्यपीयम्। शौनकीयम्। पौरुषेयम्।

(९) कृतार्थक

तृतीयान्त शब्द से करने के अर्थ में कृतार्थक प्रत्यय होते हैं।

ठञ्—कायेन कृतं=कायिकम्। वाचिकम्। मानसिकम्।

अण्—मक्षिकाभिः कृतं=माक्षिकं मधु।

---

*प्रभव का अर्थ प्रकाश होता है।

वुञ्-कुलालेन कृतः=कौलालकोघटः। कार्मारकः। नैषादकः।
अञ्-क्षुद्रेण कृतं=क्षौद्रम्। भ्रामरम्। वाटरम्। पादपम्।

(१०) इदमर्थक*

षष्ठ्यन्त से प्रथमा के अर्थ में इदमर्थक प्रत्यय होते हैं।

यत्-रथस्येदं=रथ्यं चक्रं युगं वा=रथ्य चक्र वा युग को कहते हैं।

अञ्-वाहन वाचक तथा अध्वर्यु और परिषद् शब्दों से इदमर्थ में 'अञ्' होता है—अश्वस्येदम्=आश्वम्। सावहनम्। औष्ट्रम्। हास्तिनम्। आध्वर्यवम्। पारिषदम्।

ठक्-हलस्येदं हालिकम्। सैरिकम्।

वुञ्-गोत्रवाचक और चरणवाचक शब्दों से इदमर्थ में 'वुञ्' होता है। गोत्र-उपगोरिदम्=औपगवकम्।
चरण-कठस्येदं=काठकम्।

ञ्य-छन्दोगानामिदं=छान्दोग्यम्। औक्थिक्यम्। याज्ञिक्यम्।। बाह्वृच्यम्। नाट्यम्।

अण्-आथर्वणिक शब्द से उक्तार्थ में 'अण् और उसके अन्त्य 'इक्' का लोप होता है—आथर्वणिकस्यायम्=आथर्वणः।

६-विकारावयवार्थक

अब यहाँ से विकार और अवयव अर्थ में जो प्रत्यय होते हैं, उनका विधान करेंगे, परन्तु यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि प्राणी, ओषधि और वृक्ष वाचक शब्दों से तो उक्त दोनों अर्थों में प्रत्यय होते हैं और इनसे भिन्न द्रव्यों के वाचक शब्दों से केवल विकारार्थ में प्रत्यय होते हैं। ये प्रत्यय भी षष्ठ्यन्त से प्रथमा के अर्थ में होते हैं।

---

* जो जिसका अङ्ग हो उसको इदमर्थक कहते हैं, जैसे चक्र रथ का अंग है।

अण्—ओषधेरवयवो विकारो वा=औषधम् । आश्वत्थः । मृत्तिकाया विकारः मार्त्तिकः । अश्मनो विकार आश्मः । प्रत्यय के योग से अश्मन् शब्द के नकार का लोप हो जाता है । आश्मनः । बिल्वादि से बिल्वस्य विकारोऽवयवो वा=बैल्वः । ब्रैह्यः । मौद्गः । गौधूमः । पैक्षवः । वैणवः । कार्पासः । कोपध से—मण्डूकस्यावयवो विकारो वा=माण्डूकम् । माधूकम् । त्रपुणो विकारः=त्रापुषम् । जातुषम् । त्रपु और जतु शब्दों को 'षुक्' का आगम भी होता है ।

अण्, अञ्—पलाशस्य विकारोऽवयवो वा=पालाशम् । खादिरम् । शैंशपम् । कारीरम् । शैरीषम् । इत्यादि । रूप दोनों के एक से ही होते हैं, केवल स्वर में कुछ भेद होता है ।

अञ्—उकारान्त, प्राणिवाचक और रजत आदि शब्दों से उक्त दोनों अर्थों में 'अञ्' होता है—

उकारान्त—दारोर्विकारः=दारवम् । तारवम् ।

प्राणिवाचक—कपोतस्यावयवो विकारो वा=कापोतम् । मायूरम् । तैत्तिरम् ।

रजतादि—राजतम् । सैसम् । लौहम् । औदुम्बरम् ।

ष्लञ्—शम्या अवयवो विकारो वा=शामीलम् ।

मयट्—भक्ष्य और आच्छादन वाचक शब्दों को छोड़कर सब शब्दों से उक्त दोनों अर्थों में 'मयट्' प्रत्यय भी होता है—अश्मनो विकार आश्ममयम् । विल्वमयम् । त्रपुमयम् । पलाशमयम् । इत्यादि । भक्ष्य और आच्छादन में नहीं होता=मौद्गः सूपः । कार्पासमाच्छादनम् ।

वृद्धियुक्त शरादि और एकाच् शब्दों से नित्य ही 'मयट्' होता है—वृद्धियुक्त—आम्रमयम् । शालमयम् । शाकमयम् । शरादि—शरमयम् । दर्भमयम् । मृन्मयम् । तृणमयम् । एकाच्—त्वङ्मयम् । वाङ्मयम् । इत्यादि ।

'गो' शब्द से पुरीष अभिधेय हो तो 'मयट्' अन्यत्र 'यत्' प्रत्यय होता है—गोर्विकारोऽवयवो वा=गोमयं पुरीषम्। पुरीष से अन्यत्र—गव्यं घृतम्।

व्रीहि शब्द से पुरोडाश अभिधेय हो तो 'मयट्' होता है—व्रीहीणां विकारः=व्रीहिमयः पुरोडाशः। अन्यत्र-व्रैहम्। अण् होगा।

पिष्ट शब्द से असंज्ञा में 'मयट्' और संज्ञा में 'कन्' होता है। पिष्टमयं भस्म। पिष्टकः=भक्ष्यस्य संज्ञा।

तिल और यव शब्दों से संज्ञा से अन्यत्र 'मयट्' होता है—तिलमयं पात्रम्। यवमयं क्षेत्रम्। संज्ञा में तिल से 'अण्' और यव से 'कन्' होकर—तिलस्य विकारः तैलम्। यवस्य विकारः=यावकः। बनेंगे।

वुञ्—उष्ट्रस्यावयवो विकारो वा=औष्ट्रकः।

वुञ्—अण्—उमाया विकारः औमकम्, औमम्। और्णकम्, और्णम्।

ढञ्—एण्या अवयवो विकारो वा=ऐणेयं मांसम्। पुंलिङ्ग एण शब्द से अण् होकर—ऐणम् होगा।

यत्—गो, पयस् और द्रु शब्दों से 'यत्' प्रत्यय होता है—गव्यम्। पयस्यम्। द्रव्यम्।

लुक्—फल अभिधेय हो तो विकारावयवार्थक प्रत्यय का लोप हो जाता है—आमलक्याः फलम् आमलकम्। आम्रम्। बदरम्। नारिकेलम्। हरीतकी। कोशातकी=द्राक्षा।

जिनके फल पककर सूख जाते हैं, उनसे भी प्रकृत प्रत्यय का लोप हो जाता है—व्रीहीणां फलानि=व्रीहयः। यवाः। मुद्गाः। माषाः। तिलाः। पुष्प और मूल अभिधेय हों तो भी कहीं कहीं पर प्रत्यय का लोप हो जाता है—मल्लिकायाः पुष्पं मल्लिका। जातिः। कदम्बम्। अशोकम्। विदार्याः मूलं विदारी। अंशुमती। बृहती। इत्यादि

७—अनेकार्थक

अब जो भिन्न भिन्न विभक्तियों से भिन्न भिन्न अर्थों में प्रत्यय होते हैं उनको दिखाते हैं।

प्रथमान्त से

ठक्—प्रथमान्त से षष्ठी के अर्थ में प्रत्यय होते हैं। सुवर्णं पण्यमस्य=सौवर्णिकः। वास्त्रिकः। लावणिकः। मृदङ्गं शिल्पमस्य=मार्दङ्गिकः। पाणविकः। असिः प्रहरणमस्य=आसिकः। धानुष्कः। अस्तीति मतमस्य=आस्तिकः। नास्तिकः। दैष्टिकः।

ईकक्—शक्तिः प्रहरणमस्य=शाक्तीकः याष्टीकः।

ठञ्—समयः प्राप्तोऽस्य=सामयिकं कर्म। कालिकं वैरम्।

अण्—ऋतुः प्राप्तोऽस्य=आर्त्तवं पुष्पम्।

यत्—कालः प्राप्तोऽस्य=काल्यस्तापः। काल्यं शीतम्।

छ—अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य—अनुप्रवचनीयम्। उत्थापनीयम्। प्रवेशनीयम्। आरम्भणीयम्। आरोहणीयम्। छन्दः समापनीयम्।

यत्—स्वर्गः प्रयोजनमस्य=स्वर्ग्यम्। यशस्यम्। आयुष्यम्। काम्यम्। धन्यम्।

इतच्—तारकाः सञ्जाता अस्य—तारकितं नभः। पुष्पितो वृक्षः। पल्लविता लता।

कन्—द्वे परिमाणमस्य=द्विकम्। त्रिकम्। पञ्चकम्। अष्टकम्।

वतु—यत्परिमाणमस्य—यावान्—जितना। तावान्—उतना। एतावान्—इतना। किं परिमाणमस्य—कियान्* कितना। इदं परिमाणमस्य—इयान्*=इतना। किम् सर्वनाम से संख्या के

*किम् और इदम् सर्वनाम से परे वतु के वकार को घकार होकर घ को इय् होजाता है।

परिमाण में 'डति' प्रत्यय भी होता है। का संख्या परिमाणमेषां छात्राणाम्=कति छात्राः। कियन्तश्छात्राः।

तयप्—पञ्चावयवा अस्य=पञ्चतयम्। दशतयम्। चतुष्टयम्। द्वितयम्। त्रितयम्।

अयच्—द्वावयवावस्य=द्वयम्। त्रयम्। उभयम्।

द्वितीयान्त से

ठक्—समाजं रक्षति सामाजिकः। शब्दं करोति शाब्दिकः। प्रतीपं वर्तते प्रातीपिकः। अन्वीपं वर्तते आन्वीपिकः। प्रातिलोमिकः। आनुलोमिकः। प्रातिकूलिकः। आनुकूलिकः*। पक्षिणो हन्ति=पाक्षिकः। मात्स्यिकः। मैनिकः। मार्गिकः। धर्मं चरति धार्मिकः समुदायान् समवैति=सामुदायिकः। सामवायिकः। सामूहिकः। सामाजिकः। छेदमर्हति छैदिकः। भैदिकः। हलं वहति=हालिकः। सैरिकः।

ण्य—परिषदं समवैति=पारिषद्यः।

ण्य, ठक्—सेनां समवैति=सैन्यः।

यत्—रथं वहति=रथ्यम्। युग्यम्। शीर्षच्छेदमर्हति शीर्षच्छेद्यः।

य—दण्डमर्हति=दण्ड्यः। कश्यः। मेध्यः। अर्घ्यः। वध्यः।

यत्, ढक्-धुरं वहति=धुर्यः, धौरेयः।

अण्-शकटं वहति=शाकटः।

यत्,—घ—पात्रमर्हति=पात्र्यः, पात्रियः। दक्षिणामर्हति=दक्षिण्यः, दक्षिणीयः।

घ-यज्ञमर्हति=यज्ञियो ब्राह्मणः देशो वा।

खञ्—ऋत्विजमर्हति=आर्त्विजीनो यजमानः।

---

* ईप् और कूल शब्द प्रति के योग में प्रतिकूल और अनु के योग में अनुकूल अर्थ के वाचक हैं।

ठञ्—संशयं प्राप्तः = सांशयिकः। योजनं गच्छति = यौजनिकः।

ण, ष्कन्—पन्थानं गच्छति = पान्थः, पथिकः।

तृतीयान्त से

ठक्—अक्षैर्दीव्यति = आक्षिकः। कुद्दालेन खनति = कौद्दालिकः। दध्ना संस्कृतं दाधिकम्। दण्डेन चरति = दाण्डिकः। उडुपेन तरति = औडुपिकः। वेतनेन जीवति = वैतनिकः। धानुष्कः। औपस्थानिकः। ओजसा वर्तते औजसिकः शूरः। साहसिकश्चौरः। आम्भसिको मत्स्यः। अह्ना निर्वृत्तं, लभ्यं, कार्यं वा आह्निकम्। मासिकम्।

ठन्—नावा तरति = नाविकः। प्लविकः। घटिकः। बाहुकः। वस्नेन जीवति वस्निकः। क्रियकः। विक्रयिकः।

यत्—नावा तार्यं नाव्यम्। वयसा तुल्यम् = वयस्यम् = धर्मेण प्राप्यं धर्म्यम्। विषेण वध्यं विष्यम्। मूलेन समं मूल्यम्। सीतया समितं सीत्यम्। समितं तुल्यम्।

यत्, अण्—उरसा निर्मितः = उरस्यः, औरसः पुत्रः।

कन्—षष्टिरात्रेण पच्यन्ते षष्टिका धान्यविशेषाः। प्रत्यय के योग से रात्र शब्द का लोप हो जाता है।

चतुर्थ्यन्त से

यत्—दद्भ्यो हितं दन्त्यम्। नस्यम्। कण्ठ्यम्। शीर्षण्यम्।* खल्यम्। यव्यम्। माष्यम्। तिल्यम्। वृष्यम्। ब्रह्मण्यम्।

ख—आत्मने हितम् आत्मनीनम्। अध्वनीनम्। विश्वजनीनम्। पंचजनीनम्।

ख—ठञ्—सर्वजनेभ्यो हितं सर्वजनीनम्। सार्वजनिकम्।

ठञ्—महाजनाय हितं माहाजनिकम्। सन्तापाय प्रभवति = सान्तापिकः। सांग्रामिकः। सांपरायिकः। नैसर्गिकः।

ण, छ—सर्वेभ्यो हितं सार्वम्—सर्वीयम्।

---

*प्रत्यय के योग से शिरस शब्द को शीर्षन् आदेश हो जाता है।

ढञ् — पुरुषाय हितं पौरुषेयम् * ।

खञ् — माणवाय हितं माणवीनम् । चारकीणम् ।

यत्, ठञ्—योगाय प्रभवति—योग्यः यौगिकः ।

उकञ् — कर्मणे प्रभवति = कार्मुकं धनुः † ।

पंचम्यन्त से

यत् — धर्मादनपेतं धर्म्यम् । पथ्यम् । अर्घ्यम् । न्याय्यम् ।

षष्ठ्यन्त से

यत् — हृदयस्य प्रियः = हृद्यः । प्रत्यय के योग से हृदय को हृत् आदेश होजाता है ।

अण, अञ् — सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः । पृथिव्या ईश्वरः = पार्थिवः । तथा — सर्वभूमेरुत्पातः — सार्वभौमः । पृथिव्या उत्पातः — पार्थिवः ।

त्यकन् — उप और अधि उपसर्गों से यथाक्रम आसन्न और आरूढ़ अर्थ में त्यकन् प्रत्यय होता है । पर्वतस्यासन्नम् = उपत्यका । पर्वतस्यारूढम् = अधित्यका । पर्वत के अधोभागीय स्थल को उपत्यका और ऊर्ध्वभागीय स्थल को अधित्यका कहते हैं ।

डट् — एकादशानां पूरणः = एकादशः = ग्यारहवाँ । द्वादशः बारहवां ।

मट्—पञ्चानां पूरणः = पञ्चमः । सप्तमः । अष्टमः । नवमः । दशमः ।

थट् — षण्णां पूरणः षष्ठः । चतुर्थः । कतिथः ।

तिथट् — बहूनां पूरणः = बहुतिथः । पूगतिथः । गणतिथः । संघतिथः ।

इथट्—यावतां पूरणः = यावतिथः । तावतिथः । एतावतिथः ।

---

* पुरुष शब्द से वध समूह विकार और कृत अर्थ में ढञ् प्रत्यय होता है यह वृत्तिकार का मत है पौरुषेयो वधसमूहो विकारो ग्रन्थो वा ।

† केवल धनुष के ही अभिधान में यह प्रत्यय होता है ।

तीय—द्वयोः पूरणः=द्वितीयः। त्रयाणां पूरणः=तृतीयः। त्रि के 'र' को 'ऋ' सम्प्रसारण हुआ है।

छ, यत्—चतुर्णां पूरणः=तुरीयः, तुर्यः। आद्यक्षर का लोप होता है।

डट्, तमट्—विंशतेः पूरणः=विंशः=विंशतितमः। एकविंशः—एकविंशतितमः। २० से लेकर ९९ तक ये दोनों प्रत्यय होते हैं। शत १०० और उससे ऊपर फिर केवल 'तमट्' ही होता है—शततमः। सहस्रतमः। लक्षतमः। षष्टि ६० सप्तति ७० अशीति ८० और नवति ९० शब्दों से भी केवल (तमट्) ही होता है—षष्टितमः। सप्ततितमः। अशीतितमः। नवतितमः।

सप्तम्यन्त से

ठक्—आकरे नियुक्तः आकरिकः। आपणिकः। दौवारिकः। निकटे वसति नैकटिकः। आवसथिकः।

ठन्—देवागारे नियुक्तः=देवागारिकः। कोष्ठागारिकः।

ठञ्—गुडे साधुः गौडिक इक्षुः। साक्तुको यवः। लोके विदितः=लौकिकः। सार्वलौकिकः।

यत्—सामसु साधुः सामान्यः। कर्मण्यः। शरण्यः। समानतीर्थे वसति=सतीर्थ्यः। समानोदरे वसति सोदर्यः। समान शब्द को 'स' आदेश होता है। सतीर्थ्य को सहाध्यायी और सोदर्य सगे भाई को कहते हैं। खञ्—प्रतिजने साधुः प्रातिजनीनः। सांयुगीनः। सार्वजनीनः।

ण, ण्य—परिषदि साधुः=पारिषदः, पारिषद्यः।

ढञ्—पथि साधुः=पाथेयम्। आतिथेयम्। वासतेयम्। स्वापतेयम्।

य—सभायां साधुः=सभ्यः। वेद में ढञ् भी होता है—सभेयः।

अण, अञ्—सर्वभूमौ विदितः=सार्वभौमः। पृथिव्यां विदितः पार्थिवः।

८—मतुबर्थक

भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने। सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः। बाहुल्य, निन्दा, प्रशंसा, नित्ययोग, अत्युक्ति, सम्बन्ध और सत्ता (होने) के अर्थ में मतुप् आदि प्रत्यय होते हैं। बाहुल्य—धनवान्। निन्दा—वाचालः। प्रशंसा—गुणवान्। नित्ययोग—लोमशः। अत्युक्ति—अनुदरी। सम्बन्ध—दण्डी। छत्री। सत्ता—अस्तिमान्।

प्रथमान्त शब्द से षष्ठी और सप्तमी के अर्थ में मतुबर्थीय प्रत्यय होते हैं।

मतुप्—गावो यस्य सन्ति स गोमान् देवदत्तः। वृक्षा यस्मिन् सन्ति स वृक्षवान् पर्वतः। यवा यस्मिन् सन्ति तद्यवमत् क्षेत्रम्। शीलं यस्याः यस्यां वा अस्ति सा शीलवती कन्या। रसोऽस्मिन्नस्ति रसवानिक्षुः।*

रूपवान्। गन्धवान्। स्पर्शवान्, शब्दवान्। स्नेहवान्। गुणवान्। विद्युत्वान्, उदन्वान्।

लच्—मतुप्—चूड़ा अस्मिन्नस्ति=चूड़ालः, चूड़ावान्। सिध्मलः, सिध्मवान्। मांसलः, मांसवान्। शीतलः, शीतवान्। श्यामलः, श्यामवान्। पिंगलः, पिंगवान्। पृथुलः, पृथुमान्। मृदुलः, मृदुमान्। मंजुलः, मंजुमान्।

लच्—वत्स और अंश शब्दों से क्रमशः इच्छा और बल के अभिधान में 'लच्' होता है—वत्सलः=कामुकः अंसलः=बलवान्।

---

* यवादि शब्दों को छोड़कर मकारान्त, अकारान्त, मकारोपध और अकारोपध शब्दों से परे मतुप् के मकार को वकार आदेश होजाता है। मकारान्त—किंवान्। शंवान्। अकारान्त—ज्ञानवान्। विद्यावान्। मकारोपध—लक्ष्मीवान्। शमीवान्। अकारोपध-यशस्वान्। भास्वान्। इत्यादि

लच्, इलच्, मतुप्—फेना अस्मिन् सन्ति=फेनलः, फेनिलः, फेनवान्।

श, मतुप्—लोमानि अस्य सन्ति=लोमशः, लोमवान्। रोमशः, रोमवान्।

न, मतुप्—पामा अस्यास्ति=पामनः, पामवान्। वामनः, वामवान्। ऊष्मणः, ऊष्मवान्।

इलच्, मतुप्—पिच्छिलः, पिच्छवान्। उरसिलः, उरस्वान्। पङ्किलः, पङ्कवान्।

ण, मतुप्—प्रज्ञाअस्यास्मिन् वा अस्ति=प्राज्ञः, प्रज्ञावान्। श्राद्धः, श्रद्धावान्। आर्चः, अर्चावान्। वार्त्तः, वृत्तिवान्।

विन्, अण्—तपोऽस्यास्मिन् वा अस्ति=तपस्वी, तापसः।

इन्, अण्—सहस्राण्यस्य सन्ति=सहस्री, साहस्रः।

अण्—ज्योत्स्ना अस्मिन्नस्ति=ज्यौत्स्नः चन्द्रः पक्षो वा। तामिस्रः पक्षः। तामिस्री रात्रिः। सिकता अस्मिन्नस्ति=सैकतो घटः। शर्करा अस्मिन्नस्ति=शार्करं पयः।

इलच्, अण्, मतुप्—सिकता और शर्करा शब्दों से यदि देश अभिधेय हो तो तीनों प्रत्यय होते हैं—सिकता अस्मिन् विद्यते=सिकतिलः, सैकतः, सिकतावान् देशः। शर्करिलः, शार्करः, शर्करावान् देशः।

उरच्—दन्त शब्द से यदि वे बढ़े हुवे हों तो 'उरच्' प्रत्यय होता है—दन्ता उन्नता अस्य सन्ति=दन्तुरः।

र—ऊषोऽस्मिन्नस्ति=ऊषिरं क्षेत्रम्। सुषिरं काष्ठम्। मुष्करः पशुः। मधुरो गुडः। खरः। मुखरः। कुञ्जरः। नगरम्। पांसुरम्। पाण्डुरम्।

म—द्युरस्मिन्नस्तीति=द्युम आकाशः। द्रुमः वृक्षः।

व, इन, ठन्, मतुप्—केशा अस्य अस्मिन् वा सन्ति=केशवः, केशी, केशिकः, केशवान्।

ब—गाण्डी और अजग शब्दों से संज्ञा में 'ब' प्रत्यय होता है—गाण्डीवं धनुः। अजगवं पिनाकः।*

ईरन्—काण्डानि अस्य अस्मिन् वा सन्ति=काण्डीरस्तृणः ग्रन्थो वा।

इरच्—अण्डानि अस्य अस्मिन् वा सन्ति=आंडीरः पक्षी नीडो वा।

वलच्—रजोऽस्यां विद्यते=रजस्वला=स्त्री। कृषिरस्यास्तीति=कृषीवलः=कृषकः। दन्ता अस्य सन्ति दन्तावलः=हस्ती। शिखावलो मयूरः।†

इन्, ठन्—अकारान्त और व्रीह्यादि शब्दों से मतुबर्थीय इन् और ठन् प्रत्यय होते हैं।

अकारान्त—दण्डमस्यास्तीति=दण्डी, दण्डिकः। छत्री, छत्रिकः। व्रीह्यादि—व्रीहयोऽस्य सन्ति व्रीही, व्रीहिकः। मायी, मायिकः। शिखी, शिखिकः।

इन्, ठन्, इलच्—तुन्दमस्यास्तीति=तुन्दी, तुन्दिकः, तुन्दिलः। उदरी, उदरिकः, उदरिलः।

विन्—यशोऽस्यास्तीति=यशस्वी। पयस्वी। तपस्वी। मायावी। मेधावी। स्रग्वी।

युस्—ऊर्णा अस्य विद्यते=ऊर्णायुरविः।

ग्मिन्—वाचोऽस्य सन्ति=वाग्मी=भाषणेपटुः।

आलच्, आटच्—कुत्सितं बहुभाषते=वाचालः, वाचाटः।‡

आमिन्—स्वमैश्वर्यमस्यास्तीति स्वामी।

अच्—अर्शोऽस्यास्तीति अर्शसः। उरसः। चतुरः।

---

* गाण्डीव अर्जुन के और अजगव शिव के धनुष की संज्ञा है।

† दन्त और शिखा शब्द से 'वलच्' प्रत्यय केवल संज्ञा में होता है।

‡ आलच् और आटच् प्रत्यय निन्दा में होते हैं।

इन्—ज्वरोऽस्यास्तीति = ज्वरी । व्रणी । कुष्ठी । वातकी । अतीसारकी (१) । सुखी । दुःखी । द्विजधर्मी । आर्यशोकी । ब्राह्मणवर्णी । हस्तोऽस्यास्तीति = हस्ती । (२) हस्त नाम यहाँ शुण्ड का है और वह हाथ ही का काम करता भी है । वर्णी = ब्रह्मचारी । (३) पुष्करिणी । कुमुदिनी । पद्मिनी । मृणालिनी । (४)

इन्, मतुप्—बलमस्यास्तीति = बली-बलवान् । कुली, कुलवान् । उत्साही, उत्साहवान् । आरोही, आरोहवान् ।

ब, भ, युस्, ति, तु, त, यस्—कम् और शम् अव्ययों से मतुबर्थीय उक्त ७ प्रत्यय होते हैं—कमस्यास्तीति = कम्बः कम्भः, कंयुः, कन्तिः, कन्तुः, कन्तः, कंयः । शमस्यास्तीति = शम्बः, शम्भः, शंयुः, शन्तिः, शन्तुः, शन्तः, शंयः ।

युस्—अहम् और शुभम् अव्ययों से मतुबर्थ में 'युस्' प्रत्यय होता है—अहमस्यास्तीति = अहंयुः = अहंकारवान् । शुभमस्यास्तीति शुभंयुः = कल्याणवान् ।

८—स्वार्थिक

अब स्वार्थ में जो प्रत्यय होते हैं उनका निरूपण करते हैं ।

तमप्—इष्ठन्—अतिशायन (बढ़े हुवे) के अर्थ में जहाँ बहुतों में से एक का निर्धारण किया जाय वहाँ तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होते हैं । तमप्—अयमेषामतिशयेनाढ्यः = आढ्यतमः = यह इन सब में अत्यन्त धनवान् है । दर्शनीयतमः । सुकुमारतमः । इष्ठन्-अयमेषामतिशयेन पटुः = पटिष्ठः = यह इन सब में अत्यन्त चतुर है । लघुः, लघिष्ठः = छोटा । गुरुः, गरिष्ठः = बड़ा ।

---

१ वात और अतीसार शब्द को प्रत्यय के योग से 'कुक्' का आगम होता है । २ हस्त शब्द के जाति के अभिधान में 'इनि' प्रत्यय होता है । ३ वर्ण शब्द से ब्रह्मचारी के अभिधान में 'इनि' होता है । ४ पुष्करादि शब्दों से देश के अभिधान में 'इनि' होता है ।

तरप्, ईयस्—अतिशायन में ही जहाँ दो में से एक का निर्धारण किया जाय वहाँ तरप् और ईयस् प्रत्यय होते हैं। तरप्—अयमनयोरतिशयेनाढ्यः=आढ्यतरः=यह इन दोनों में अत्यन्त धनवान् है। दर्शनीयतरः। सुकुमारतरः। ईयस्—अयमनयोरतिशयेन पटुः=पटीयान्=यह दोनों में अत्यन्त चतुर है। लघुः, लघीयान्। गुरुः, गरीयान्। *

यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि इनमें से इष्ठन् और ईयस् प्रत्यय केवल गुणवाचक शब्दों से होते हैं। द्रव्यवाचक और क्रियावाचकों से तमप् और तरप् प्रत्यय होते हैं। गुणवाचक और द्रव्यवाचकों के उदाहरण दिखलाये जा चुके। क्रियावाचकों से—अतिशयेन पचति=पचतितमाम्, पचतितराम् इत्यादि †।

प्रशस्य शब्द को इष्ठन् और ईयस् प्रत्यय के योग में 'श्र' और 'ज्य' आदेश होजाते हैं—अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः=श्रेष्ठः, ज्येष्ठः=यह इन सब में अत्यन्त उत्तम है। अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः श्रेयान्, ज्यायान्‡=यह दोनों में अत्यन्त उत्तम है।

अन्तिक और बाढ़ शब्दों को उक्त दोनों प्रत्ययों के योग में क्रमशः नेद और साध आदेश होते हैं—अयमेषामतिशयेनान्तिकः नेदिष्ठः=यह इन सबमें अत्यन्त निकट है। अयमनयोरतिशयेनान्तिकः=नेदीयान्=यह इन दोनों में अत्यन्त निकट है। अयमेषामतिशयेन बाढः=साधिष्ठः=यह इन सबमें अत्यन्त श्रेष्ठ है। अयमनयोरतिशयेन बाढः=साधीयान्।

---

* इष्ठन् और ईयस् प्रत्ययों के योग में पूर्व शब्द के अन्त्य अच् का लोप हो जाता है।

† तिङन्त के योग में तरप् और तमप् प्रत्ययों को आम् का आगम हो जाता है।

‡ 'ज्य' को ईयस् के योग में आकारादेश होजाता है।

युव और अल्प शब्दों को उक्त दोनों प्रत्ययों के योग में पाक्षिक 'कन्' आदेश होता है—अयमेषामतिशयेन युवा=कनिष्ठः, यविष्ठः। अयमनयोरतिशयेन युवा=कनीयान्, यवीयान्। ऐसे ही कनिष्ठः, अल्पिष्ठः। कनीयान्, अल्पीयान्।

विन् और मतुप् प्रत्ययों का उक्त दोनों प्रत्ययों के योग में लोप होजाता है-अयमेषामतिशयेन स्रग्वी=स्रजिष्ठः, स्रजीयान्। अयमेषामतिशयेन त्वग्वान्=त्वचिष्ठः, त्वचीयान्।

स्थूल, दूर, युव, ह्रस्व, क्षिप्र और क्षुद्र इन शब्दों को उक्त दोनों प्रत्ययों के योग में बीच के यण् अर्थात् य्, व्, र्, ल्, का लोप और पूर्व को गुण होकर—अयमेषामतिशयेन स्थूलः=स्थविष्ठः। स्थवीयान्। दविष्ठः। दवीयान्। यविष्ठः। यवीयान्। ह्रसिष्ठः। ह्रसीयान्। क्षेपिष्ठः। क्षेपीयान्। क्षोदिष्ठः। क्षोदीयान्।

इन्हीं दोनों प्रत्ययों के योग में प्रिय को प्र, स्थिर को स्थ, स्फिर को स्फ, ऊरु को वर्, बहुल को बंहि, गुरु को गर्, वृद्ध को वर्षि, तृप्र को त्रप्, दीर्घ को द्राघि और वृन्दारक को वृन्द आदेश हो जाते हैं—अयमेषामतिशयेन प्रियः=प्रेष्ठः। प्रेयान्। स्थेष्ठः। स्थेयान्। स्फेष्ठः। स्फेयान्। वरिष्ठः। वरीयान्। बंहिष्ठः। बंहीयान्। गरिष्ठः। गरीयान्। वर्षिष्ठः। वर्षीयान्। त्रपिष्ठः। त्रपीयान्। द्राघिष्ठः। द्राघीयान्। वृन्दिष्ठः। वृन्दीयान्।

'बहु' शब्द को उक्त दोनों प्रत्ययों के योग में 'भू' आदेश होकर अयमेषामतिशयेन बहुः=भूयिष्ठः, भूयान्।

डतरच्, डतमच्—किम्, यद् और तद् शब्दों से जहाँ दो में से एक का निर्धारण हो वहाँ डतरच् और जहाँ बहुतों में से एक का निर्धारण हो वहाँ डतमच् प्रत्यय होता है—भवतोः कठः कतरः=तुम दोनों में से कठ कौनसा है? यतरो भवतोर्देवदत्तः ततर आगच्छतु=तुम दोनों में से जौनसा देवदत्त है वह आवे। कतमो भवतां कठः=तुम सबमें से कठ कौनसा है? यतमो

भवतां यज्ञदत्तस्ततम आगच्छतु=तुम सब में से जौनसा यज्ञदत्त हो वह आवे।

छ—जाति और स्थान शब्द जिसके अन्त में हों ऐसे पद से 'छ' प्रत्यय होता है, यदि जातिमान् और स्थान अभिधेय हों तो। ब्राह्मणजातीयो ब्रह्मदत्तः=ब्रह्मदत्त ब्राह्मण जातिवाला है। पितृस्थानीयः सोमदत्तः=सोमदत्त पिता का स्थानापन्न है।

कृत्वस्—सङ्ख्या शब्दों से क्रिया की अभ्यावृत्ति [गणना] में 'कृत्वस्' प्रत्यय होता है—पञ्चकृत्वोऽधीते=पांचवार पढ़ता है।

सुच्—द्वि, त्रि और चतुर् शब्दों से उक्तार्थ में 'सुच्' प्रत्यय होता है—द्विर्भुङ्क्ते=दोबार खाता है। त्रिर्वा चतुरधीते=तीन वा चार वार पढ़ता है। 'एक' शब्द को 'सकृत्' आदेश होता है—सकृद्भुङ्क्ते=एक वार खाता है।

धा, कृत्वस्—बहुधाऽधीते। बहुकृत्वोऽधीते=बहुत वार पढ़ता है।

मयट्—बहुतायत से प्रस्तुत होने के अर्थ में मयट् होता है—अन्नं बाहुल्येन प्रस्तुतम्=अन्नमयम्=अन्न बहुतायत से प्रस्तुत है। लवणमयम्।

कन्—निन्दा, संज्ञा, अल्प और ह्रस्व अर्थ के द्योतन करने में कन् प्रत्यय होता है। निन्दा-कुत्सितोऽश्वः=अश्वकः=बुरा घोड़ा। संज्ञा—वंशकः। वेणुकः। अल्प—अल्पं तैलं तैलकम्। लवणकम्। ह्रस्व—ह्रस्वो वृक्षो वृक्षकः। वत्सकः। शावकः। बालकः।

तरप्—वत्स, उक्ष, अश्व और ऋषभ शब्दों से युवा अर्थ में 'तरप्' प्रत्यय होता है—युवा वत्सः वत्सतरः=जवान बछड़ा। उक्षतरः। अश्वतरः। ऋषभतरः।

ष्यञ्—अनन्त, आवसथ, इतिह और भेषज शब्दों से स्वार्थ में 'ष्य' प्रत्यय होता है—अनन्तएव आनन्त्यम्। आवसथ्यम्। ऐतिह्यम्। भैषज्यम्।

यत्—चतुर्थ्यन्त देवता, पाद और अर्घ शब्दों से तादर्थ्य में 'यत्' प्रत्यय होता है । अग्निदेवतायै इदम्=अग्निदैवत्यम् । पितृदैवत्यम् । पद्भ्यामिदं पाद्यम् । अर्घायेदम् अर्घ्यम् ।

ञ्य—चतुर्थ्यन्त अतिथि शब्द से तादर्थ्य में 'ञ्य' प्रत्यय होता है । अतिथये इदम्=आतिथ्यम् ।

धेयस्—भागएव=भागधेयम् । रूपधेयम् । नामधेयम् ।

तल्—देव शब्द से स्वार्थ में 'तल्' प्रत्यय होता है—देव एव देवता ।

कन्—पुत्र शब्द से कृत्रिम और स्नात शब्द से वेदसमाप्ति अभिधेय हो तो स्वार्थ में 'कन्' होता है । पुत्र एव पुत्रकः= कृत्रिमः । स्नातकः=ब्रह्मचारी ।

ठक्—संदेश में वर्तमान वाक् शब्द से स्वार्थ में 'ठक्' प्रत्यय होता है—वाचिकं कथयति=संदेश को कहता है ।

अण्—निम्नलिखित शब्दों से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है—प्रज्ञएव प्राज्ञः । मन एव मानसः । चौरः । मारुतः । क्रौञ्चः । सात्वतः । दाशार्हः । वायसः । आसुरः । राक्षसः । पैशाचः । दैवतः । बान्धवः । औषधम् ।

तिकन्—मृद् शब्द से स्वार्थ में 'तिकन्' प्रत्यय होता है—मृदेव=मृत्तिका । प्रशंसा में मृद् शब्द से स्न और स्ना प्रत्यय होते हैं—प्रशस्ता मृद्=मृत्स्ना, मृत्स्ना ।

शस्—बहु और अल्प शब्द तथा इनके पर्यायवाचक शब्द से कारकों के प्रयोग में एवं संख्या और एकवचन से वीप्सा (द्विर्वचन) में शस् प्रत्यय होता है—बहूनि, बहुभिः, बहुभ्यः, बहुषु वा ददाति=बहुशो ददाति । अल्पशः । भूरिशः । स्तोकशः । द्वौ द्वौ ददाति=द्विशः । त्रिशः । पञ्चशः । कणंकणं ददाति=कणशः । क्रमशः ।

तस्—कर्मप्रवचनीय प्रति के योग में जो पञ्चमी विधान की गई है तदन्त से स्वार्थ में 'तस्' प्रत्यय होता है—प्रद्युम्नः कृष्णतः प्रति=प्रद्युम्न कृष्ण की ओर से प्रतिनिधि हैं। तिलान् यच्छ माषतः प्रति=उड़दों के बदले में तिलों को दे।

आद्यादि शब्दों से अधिकरण कारक में तस् प्रत्यय होता है—आदितः=आदि में। मध्यतः=मध्य में। अन्ततः=अन्त में। पृष्ठतः। पार्श्वतः।

करण कारक में भी कहीं कहीं पर 'तस्' प्रत्यय होता है—स्वरेण स्वरतः। वर्णेन=वर्णतः। दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह=दुष्ट शब्द जो स्वर से और वर्ण से मिथ्या प्रयोग किया गया है, वह उस अर्थ को नहीं कहता, जिसके लिये प्रयुक्त हुआ है। वृत्तेन=वृत्ततः। वित्तेन=वित्ततः। अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतोहतः=जो धन से हीन है वह हीन नहीं पर जो चरित से गया वह गया।

हा और रुह् धातु की क्रिया को छोड़ कर अपादान कारक में भी 'तस्' होता है—गृहतो गच्छति=घर से जाता है। ग्रामत आगच्छति=गाँव से आता है। स्वर्गाद्धीयते=स्वर्ग से भ्रष्ट होता है। पर्वतादवरोहति=पर्वत से उतरता है। यहाँ न होगा।

जहाँ किसी पक्ष का आश्रय लिया गया हो वहाँ षष्ठ्यन्त से भी 'तस्' प्रत्यय होता है—भीष्मद्रोणशल्याः कौरवतोऽभवन्=भीष्म द्रोण शल्य कौरवों की ओर हुवे। कृष्णः पाण्डवतोऽभवत्=कृष्ण पाण्डवों को ओर हुवा।

च्वि—अभूततद्भाव (न होकर होने के) अर्थ में कृ, भू और अस्ति धातुओं का योग होने पर 'च्वि' प्रत्यय होता है। मलिनं वस्त्रं शुक्लीकरोति रजकः=धोबी मलिन वस्त्र को सफ़ेद करता है। वर्षासु मलिनीभवति जलम्=वर्षा ऋतु में जल मलिन होता है।

सात्—जिस दशा में 'च्वि' प्रत्यय कहा गया है, उसी दशा में (सात्) प्रत्यय भी होता है यदि क्रिया के फल में सम्पूर्णता वा अधीनता विवक्षित हो । सम्पूर्णता—अग्निसात् भवति लौहम्=लोहा सम्पूर्ण अग्नि के समान हो जाता है । जलसात् भवति लवणम्=सारा लवण जल के समान हो जाता है । भस्मसात् भवतीन्धनम्=इन्धन समस्त भस्म के समान हो जाता है । अधीनता—राजसात् भवति प्रजाधनम् । प्रजा का धन राजा का होता है । आत्मसात् कुरुते राजा विद्रोहिणां सर्वस्वम्=राजा द्रोहियों के सर्वस्व को अपना कर लेता है ।

डाच्—जहाँ अव्यक्त का अनुकरण हो वहाँ कृ आदि के योग में 'डाच्' प्रत्यय होता है—पटपटाकरोति=पटत् इस शब्द का अनुकरण करता है । इसके सिवाय अन्य अर्थों में भी 'डाच्' होता है । समयाकरोति=समय को यापन करता है । सुखाकरोति मित्रम्=मित्र को सुख देता है । दुःखाकरोति शत्रुम्=शत्रु को दुःख देता है ।

२—भाववाचक

अब भाववाचक तद्धित प्रत्ययों का निरूपण किया जाता है । षष्ठ्यन्त शब्द से भावार्थ में भाववाचक प्रत्यय होते हैं ।

त्व, तल्—अश्वस्य भावः=अश्वत्वम्, अश्वता । वृक्षत्वम्, वृक्षता । इत्यादि *

भावाधिकार में त्व और तल् प्रत्यय सब ही शब्दों से होते हैं, इसलिये अब आगे इनको छोड़कर और जो प्रत्यय होते हैं उनको दिखलाते हैं ।

नञ्, स्नञ्—स्त्रियाः भावः=स्त्रैणम् । पुंसो भावः=पौंस्नम् ।

* भाववाचक प्रत्ययों में तल् और इमनिच् प्रत्ययों को छोड़कर शेष सब नपुंसकलिङ्ग होते हैं । तलन्त स्त्रीलिङ्ग और इमनन्त पुंल्लिंग होते हैं ।

इमन्, अण्—पृथोर्भावः = प्रथिमा। पार्थवम्। म्रदिमा, मार्दवम्। पटिमा, पाटवम्। तनिमा, तानवम्। लघिमा, लाघवम्। गरिमा, गौरवम्। अणिमा, आणवम्।

इमन्, ष्यञ्—शुक्लस्य भावः = शुक्लिमा, शौक्ल्यम्। कृष्णिमा, कार्ष्ण्यम्। दृढस्य भावः = द्रढिमा, दार्ढ्यम्। कृशिमा, कार्श्यम्। लवणिमा, लावण्यम्। मधुरिमा, माधुर्यम्।

ष्यञ्—गुणवाचक तथा ब्राह्मणादि शब्दों से भाव और कर्म दोनों में 'ष्यञ्' होता है। गुणवाचक—जडस्य भावः कर्म वा = जाड्यम्। मौढ्यम्। चातुर्यम्। पाण्डित्यम्। सौख्यम्। सौजन्यम्। ब्राह्मणादि—ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा = ब्राह्मण्यम्। माणव्यम्। ऐश्वर्यम्। कौशल्यम्। चापल्यम्। नैपुण्यम्। पैशुन्यम्। बालिश्यम्। आलस्यम्। राज्यम्। आधिपत्यम्। दायाद्यम्। वैषम्यम्।

किन्हीं किन्हीं शब्दों से स्वार्थ में भी 'ष्यञ्' होता है। चत्वारो वर्णाश्चातुर्वर्ण्यम्। चातुराश्रम्यम्। त्रैस्वर्यम्। षाड्गुण्यम्। सैन्यम्। सामीप्यम्। औपम्यम्। त्रैलोक्यम्।

यत्—स्तेनस्य भावः कर्म वा = स्तेयम्। प्रत्यय के योग से नकार का लोप हो जाता है।

य—सख्युर्भावः कर्म वा = सख्यम्। दूत्यम्।

ढक्—कपेर्भावः कर्म वा = कापेयम्। ज्ञातेयम्।

यक्—पत्यन्त और पुरोहित आदि शब्दों से भाव और कर्म में यक् प्रत्यय होता है। पत्यन्त—सेनापतेर्भावः कर्म वा = सैनापत्यम्। गार्हपत्यम्। प्राजापत्यम्।

पुरोहितादि—पुरोहितस्य भावः कर्म वा = पौरोहित्यम्। राज्यम्। बाल्यम्। मान्द्यम्। धार्मिक्यम्। आधिक्यम्। सारथ्यम्। आस्तिक्यम्। नास्तिक्यम्।

अञ्—प्राणभृज्जातिवाचक, वयोवाचक और उद्गात्र आदि शब्दों से उक्त दोनों अर्थों में 'अञ्' प्रत्यय होता है। प्राणभृज्जातिवाचक—मनुष्यस्य भावः कर्म वा=मानुषम्। आश्वम्। औष्ट्रम्। सैंहम्। वयोवाचक—कुमारस्य भावः कर्म वा=कौमारम्। कैशोरम्। उद्गात्रादि—उद्गातुर्भावः कर्म वा=औद्गात्रम्। औन्नेत्रम्। हौत्रम्। पौत्रम्। सौष्ठवम्। आध्वर्यवम्।

अण्—हायनान्त और युव आदि शब्दों से तथा इकारान्त और उकारान्त शब्दों से भी उक्त दोनों अर्थों में अण् होता है। हायनान्त—द्विहायनोर्भावः कर्म वा=द्वैहायनम्। त्रैहायनम्। युवादि—यूनो भावः कर्म वा=यौवनम्। स्थाविरम्। पौरुषम्। कौतुकम्। सौहृदयम्। सौहृदम्। दौर्हृदयम्। दौर्हृदम्। कौशलम्। चापलम्। कौतूहलम्। श्रोत्रियस्य भावः कर्म वा=श्रौत्रम्। प्रत्यय के योग से यकार का लोप हो जाता है। इकारान्त—शुचेर्भावः कर्म वा=शौचम्। मुनेर्भावः कर्म वा=मौनम्। उकारान्त—पटोर्भावः कर्म वा=पाटवम्। लाघवम्। गौरवम्।

छ—ऋत्विग्विशेषवाचक शब्दों से उक्त दोनों अर्थों में 'छ' प्रत्यय होता है। होतुर्भावः कर्म वा=होत्रीयम्। पोत्रीयम्। आग्नीध्रम्। परन्तु ऋत्विग्विशेष 'ब्रह्मन्' शब्द से भाव और कर्म में 'त्व' प्रत्यय होता है। ब्रह्मणो भावः कर्म वा=ब्रह्मत्वम्।

३—अव्ययसंज्ञक

अब अव्ययसंज्ञक तद्धित प्रत्ययों का (जिनके योग से प्रातिपदिक भी अव्यय हो जाते हैं) निरूपण किया जाता है।

तसिल्—सर्वनामों से पञ्चमी के अर्थ में तसिल् प्रत्यय होता है। कस्मात्=कुतः *। यस्मात्=यतः। तस्मात्=ततः। अस्मात्=अतः। सर्वस्मात्=सर्वतः। उभाभ्याम्=उभयतः।

* 'किम्' शब्द को 'कु' और 'इदम्' शब्द को 'अ' आदेश होता है।

परि और अभि उपसर्गों से भी 'तसिल्' होता है—परितः। अभितः।

त्रल्—सप्तमी के अर्थ में सर्वनामों से 'त्रल्' प्रत्यय होता है। कस्मिन्=कुत्र*। यस्मिन्=यत्र। तस्मिन्=तत्र। अस्मिन्=अत्र सर्वस्मिन्=सर्वत्र। अन्यस्मिन्=अन्यत्र।

ह—'इदम्' शब्द को सप्तमी के अर्थ में 'ह' प्रत्यय और 'इ' आदेश भी होता है—अस्मिन्=इह।

अत्, ह—'किम्' शब्द को सप्तमी के अर्थ में अत् और ह प्रत्यय तथा क और कु आदेश भी होते हैं—कस्मिन्=क्व, कुह।

दा—सर्व, एक, अन्य, किम्, यद् और तद् सर्वनामों से काल की विवक्षा में 'दा' प्रत्यय होता है—सर्वस्मिन् काले=सर्वदा, सदा=सब काल में। एकस्मिन् काले=एकदा=एक काल में। अन्यस्मिन् काले=अन्यदा=अन्यकाल में। कस्मिन् काले=कदा=कब। यस्मिन् काले=यदा=जब। तस्मिन् काले=तदा=तब।

र्हिल्, धुना, दानीम्—सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से काल की विवक्षा में उक्त तीनों प्रत्यय होते हैं। इन तीनों के योग में 'इदम्' शब्द को क्रम से एत, अ और इ आदेश होते हैं—अस्मिन्काले=एतर्हि, अधुना, इदानीम्=अब।

दा, दानीम्—सप्तम्यन्त 'तद्' शब्द से काल की विवक्षा में उक्त दोनों प्रत्यय होते हैं—तस्मिन् काले=तदा, तदानीम्=तब

द्य—वर्तमानकाल वा दिन अभिधेय हो तो 'समान, को 'स' और 'इदम्' को 'अ' आदेश होकर इनसे 'द्य' प्रत्यय होता है। समानेऽहनि=सद्यः=आज का दिन। अस्मिन्नहनि=अद्य=आज।

---

* 'किम्' शब्द को 'कु' और 'इदम्' शब्द को 'अ' आदेश होता है।

उत्, आरि—पूर्व और पूर्वतर वत्सर अभिधेय हों तो इन दोनों को पर आदेश और यथाक्रम उत् और आरि प्रत्यय होते हैं । पूर्वस्मिन् वत्सरे=परुत्=पहिले वर्ष में । पूर्वतरस्मिन् वत्सरे=परारि=उससे पहिले वर्ष में ।

समण्—वर्तमान संवत्सर अभिधेय हो तो 'इदम्' को ' इ ' आदेश और ' समण् ' प्रत्यय होता है । अस्मिन् संवत्सरे=ऐषमः=इस वर्ष में ।

एद्युस्—पूर्व, उत्तर, अधर, अपर, इतर, अन्य, अन्यतर और उभय शब्दों से दिवस अभिधेय हो तो 'एद्युस्' प्रत्यय होता है । पूर्वस्मिन्नहनि=पूर्वेद्युः=पहिले दिन में । उत्तरेद्युः=पिछले दिन में । अधरेद्युः=नीचे के दिन में । अपरेद्युः, इतरेद्युः, अन्येद्युः=और दिन में । अन्यतरेद्युः=और से और दिन में । उभयेद्युः=दोनों दिन में ।

एद्यवि—पर शब्द से दिवसाभिधान में 'एद्यवि' प्रत्यय होता है । परस्मिन्नहनि=परेद्यवि=परले दिन में ।

थाल्—सर्वनाम शब्दों से प्रकार की विवक्षा में ' थाल् ' प्रत्यय होता है । तेन प्रकारेण=तथा=तैसे । येन प्रकारेण=यथा=जैसे । सर्वप्रकारेण=सर्वथा=सब प्रकार से । अन्य प्रकारेण=अन्यथा=अन्य प्रकार से ।

थम्—इदम् और किम् सर्वनामों को प्रकार की विवक्षा में क्रमसे इत् और क आदेश होकर ' थम् ' प्रत्यय होता है । अनेन प्रकारेण=इत्थम्=इस प्रकार । केन प्रकारेण=कथम्=किस प्रकार ।

अस्, अस्तात्—पूर्व, अधर, और अवर इन दिक्, देश और कालवाचक शब्दों को सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमाविभक्ति के अर्थ में पुर्, अध् और अव् आदेश होकर अस् और अस्तात् प्रत्यय होते हैं ।

सप्तमी—पूर्वस्यां दिशि वसति = पुरः-पुरस्तात् वा वसति = पूर्व दिशा में रहता है । पञ्चमी—पूर्वस्माद्देशादागतः = पुरः पुरस्ताद्वाऽऽगतः = पूर्व देश से आया । प्रथमा—पूर्वो रमणीयः = पुरः पुरस्ताद्वा रमणीयः = पूर्व काल रमणीय था । इसी प्रकार—अधः, अधस्तात् और अवः, अवस्तात् को भी समझो ।

अतस्—उक्त विशेषणविशिष्ट दक्षिण और उत्तर शब्दों से उक्त तीनों अर्थों में 'अतस्' प्रत्यय होता है । दक्षिणस्यां, दक्षिणस्याः, दक्षिणा वा दिक् = दक्षिणतः । उत्तरतः ।

अतस्, अस्तात्—उक्तार्थ में ही पर और अवर शब्दों से ये दोनों प्रत्यय होते हैं परतः—परस्तात् । अवरतः, अवरस्तात् ।

रि, रिष्टात्—ऊर्ध्व शब्द को उक्तार्थ में 'उप' आदेश और उक्त दोनों प्रत्यय होते हैं । उपरि, उपरिष्टात् ।

आत्—अपर शब्द को 'पश्च' आदेश और 'आत्' प्रत्यय होता है—पश्चात् ।

आत्, एनप्—उत्तर, अधर और दक्षिण शब्दों से उक्तार्थ में आत् और एनप् प्रत्यय होते हैं । उत्तरात्, उत्तरेण । अधरात्-अधरेण । दक्षिणात्, दक्षिणेन ।

धा—संख्यावाचक शब्दों से प्रकार अर्थ में 'धा' प्रत्यय होता है । पञ्चधा । बहुधा । इत्यादि ।

धा, ध्यमुञ्—एक शब्द से प्रकार अर्थ में दोनों प्रत्यय होते हैं एकधा, ऐकध्यम् ।

धा, धमुञ्, एधाच्—द्वि और त्रि शब्दों से प्रकार अर्थ में तीनों प्रत्यय होते हैं । द्विधा, द्वैधम्, द्वेधा । त्रिधा, त्रैधम्, त्रेधा ।

इति

उपनिषदों का हिन्दी में अनुवाद

संस्कृत-साहित्य में उपनिषदों का जैसा मान और गौरव है वह किसी से छिपा नहीं। अपनी वस्तु की तो सभी प्रशंसा करते हैं, परन्तु इनकी पवित्र शिक्षा के आगे विदेशियों ने भी अपना माथा झुकाया है। यद्यपि उपनिषदों के हिन्दी में भी कई अनुवाद हो चुके, तथापि एक ऐसे अनुवाद की, जो सरल और सुस्पष्ट होने के अतिरिक्त मूल के आशय को भली भाँति व्यक्त करता हो, अत्यन्त आवश्यकता थी। इस आवश्यकता को इस अनुवाद ने भले प्रकार पूरा कर दिया है। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक और माण्डूक्य छहों एक जिल्द में। मूल्य १)

शब्दरूपावलि

मूल्य ⅛)

इस पुस्तक का पहला संस्करण हाथों हाथ बिक गया। हमें हेडपंडितों और विद्यार्थियों ने बहुत पसंद किया है। उपयोगी परिवर्तन और संशोधन करके यह दूसरा संस्करण तैयार हो गया। इस पुस्तक में संस्कृत के तीनों लिङ्गों में स्वरान्त और व्यञ्जनान्त कोई १५० के लगभग शब्दों के सातों विभक्तियों में पूरे रूप लिखे गये हैं। इस पुस्तक को याद करके कोई विद्यार्थी इस विषय में फेल नहीं हो सकता। अङ्गरेज़ी के साथ दूसरी भाषा संस्कृत पढ़ने वालों के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है।

पुस्तक मिलने पता—

१—मैनेजर, हिन्दी प्रेस, प्रयाग।

२—पं० बदरीदत्त शर्म्मा,

C/o द्वादशश्रेणी प्रेस, अलीगढ़।